श्रीभागवत-दर्शन

भागवती कथा

(षोडश खण्ड)

व्यासशास्त्रोपवनतः सुमनांसि विचिन्वता
कृता वै प्रभुदत्तेन माला 'भागवती कथा'

—•••—

लेखक
श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी

———

प्रकाशक
सङ्कीर्तन भवन
प्रतिष्ठानपुर झूसी, (प्रयाग)

—:※:—संशोधित मूल्य २ ० रुपया

[तृतीय संस्करण] चैत्र, सं० २०२१ वि० [मू० १.२५ न० पै०

॥ श्रीहरिः ॥

[ब्रजभाषा में भक्तिभाव पूर्ण, नित्य पाठके योग्य अनुपम महाकाव्य]

श्रीभागवतचरित

(तृतीय संस्करण)

(रचयिता—श्री प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी)

श्रीमद्भागवत, गीता और रामायण ये सनातन वैदिक धर्मावलम्बी हिन्दुओं के नित्य पाठके अनुपम ग्रंथ हैं। हिन्दी भाषामें रामायण तो गोस्वामी तुलसीदासजी कृत नित्य पाठके लिये थी किन्तु भागवत नहीं थी, जिसका संस्कृत न जानने वाले भागवत प्रेमी नित्य पाठ कर सकें। इस कमी को "भागवत चरित" ने पूरा कर दिया। यह अनुपम ग्रन्थ ब्रजभाषा की छप्पय छन्दोंमें लिखा गया है। बीच-बीच में दोहा, सोरठा, छन्द, लावनी तथा सरस भजन भी हैं। सप्ताह क्रमसे सात भागोंमें विभक्त हैं, पाक्षिक तथा मासिक पाठ के भी स्थलों का संकेत है। श्रीमद्भागवत की समस्त कथाओंकी सरल, सरस तथा प्राजल छंदोंमें गायागया है। सैकड़ों नरनारी इसका नित्यनियमसे पाठ करते हैं,बहुतसे कथावाचक पंडित हारमोनियम तबले पर गाकर इसकी कथा करते हैं। और इसका पंडित इसीके आधारसे भागवत सप्ताह बाँचते हैं। अब इसका तीसरा ५ हजारका संस्करण अभी छपाया है। लगभग सवा नौ सौ पृष्ठकी पुस्तक सुन्दर चिकने २८ पौंड सफेद कागद पर छपी है। सैकड़ों सादे एकरंगे चित्र तथा ५-६ बहुरंगे चित्र हैं। कपडे की टिकाऊ बढ़िया जिल्द और उसपर रङ्गीन कवर पृष्ठ हैं। बाजारमें ऐसी पुस्तक १०) में भी न मिलेगी। आज ही एक पुस्तक मँगाकर अपने लोक-परलोक को सुधार लें। न्योछावर केवल ५.७५ न०पै० डाकव्यय पृथक्।

पता—संकीर्तन भवन, प्रतिष्ठानपुर झूसी (प्रयाग)

विषय-सूची

सं०	विषय	पृष्ठांक
	भागवती कथा की वर्ष गाँठ (भूमिका)	५
८—	यमदूतों का और विष्णु-पार्षदों का सम्वाद	१५
९—	भगवन्नाम ही समस्त पापों का पूर्ण प्रायश्चित्त है	२५
०—	हरिनाम से ही पापोंकी आत्यन्तिक निवृत्ति होती है	३४
६१—	हँसी विनोद में भी भगवन्नाम श्रेयस्कर है ...	४०
६२—	हरि उच्चारण मात्र से ही पापों को हरते हैं ...	५२
६३—	नामोच्चारण का फल अमोघ है ...	६५
६४—	अजामिल को पश्चात्ताप ...	७९
६५—	अजामिल को भगवत् पार्षद् पद की प्राप्ति ..	८५
६६—	रिक्तहस्त यमदूतों का यमराज से निवेदन ...	९४
६७—	यमराज द्वारा अपने दूतों के प्रश्नों का उत्तर ...	१०३
६८—	यमदूत किनके पास जायँ किनके पास न जायँ ...	११२
६९—	भगवन्नाम माहात्म्य	११९
७०—	प्रेचताओं के पुत्र दक्ष का प्रजावृद्धि के लिये तप ...	१३४
७१—	प्रजापति दक्ष को भगवद् दर्शन ...	१४२
७२—	मैथुन धर्म से दक्ष के हर्यश्व नामक पुत्रों की उत्पत्ति	१५१
७३—	नारदजी के हर्यश्वों से दश गूढ़ प्रश्न ...	१५९
७४—	हर्यश्वों का नारद जी के कूट वचनों पर विमर्श ...	१६९
७५—	पुत्रवियोग से दुःखित दक्ष द्वारा पुत्रों की उत्पत्ति	१७६
७६—	शबलाश्वों को भी शिष्य बनाने पर दक्ष का नारदजी का शाप	१८२
७७—	दक्ष की साठ कन्यायें ...	१८४
७८—	दक्ष की कन्याओं के वंश का वर्णन ..	२००
७९—	तार्क्ष्य गरुड़ और अरुण	२०६

चित्र-सूची

भागवती कथा की वर्षगाँठ

(भूमिका)

सूत सूत महाभाग वद नो वदतांवर ।
कथां भागवतीं पुण्यां यदाह भगवाञ्छुकः ॥६॥

(श्रीभा० १ स्क० ४ अ० ७ श्लो०)

छप्पय

अजर अमर हरिकथा जनम अरु नाश न जामैं ।
तबहीं जानो जनम जनहिँ जाकूँ नर पामैं ॥
जा दिन होवै प्रकट पुण्य तैं कथा पुरानी ।
हृदय पटल पै जनम भयो नूतन पुनि मानी ॥
गंगाजल, पय, सिता मिलि, लस्सी बनि प्रकटे यथा ।
त्यों गुरुपूनो कूँ मधुर, प्रकटी 'भागवती कथा' ॥

विक्रमी सम्वत् २००७ की गुरुपूर्णिमा से यहाँ प्रतिष्ठानपुर में मैंने अष्टादश पुराण सत्र की दीक्षा ग्रहण की थी। तब 'भागवती कथा' ने मेरे मनमें प्रवेश किया। जन्माष्टमी के दिन उसका एक छप्पय लिखकर आरम्भ किया और फिर कार्तिक शुक्ला अष्टमी से नियमानुसार एक अध्याय लिखना आरम्भ

---

* शौनकजी सूतजी से उत्सुकता के साथ कह रहे हैं—"सूतजी! सूतजी!! हे महाभाग! आप सब वक्ताओं में श्रेष्ठ हैं। अत महानुभाव! आप हम उस परम पुण्यमयी भागवती कथा को सुनावें, जिसे भगवान् शुकदेव ने महाराज परीक्षित् को सुनाया था।"

किया। कार्तिक से आषाढ़ तक आश्रम की परिधि के गर्भ में रही। सम्वत् २००३ को गुरुपूर्णिमा मध्यान्होत्तर इसका खण्ड सबके सम्मुख आया, अतः इसकी वार्षिक जन्म तिथि हम लोग गुरुपूर्णिमा के ही दिन मानते हैं। इसकी द्वितीय वर्षगाँठ गत गुरुपूर्णिमा को पूज्यपाद श्रीहरि बाबा जी की सन्निधि में हम सब ने उत्साह के साथ मनाई।

नियमानुसार अब तक इसके २४ खण्ड प्रकाशित हो जाने चाहिये थे, किन्तु कागद की कठिनाई से, प्रेस की पिच-पिच से, तथा अन्यान्य कई कारणों से इसके अब तक १६ ही खण्ड प्रकाशित हुए। अपनी चेष्टा तो ऐसी है, महीने में एक नहीं दो खण्ड प्रकाशित हों, किन्तु अपनी इच्छा से सभी काम होते तो सभी लखपती होते, कोई भी रोगी न होता, किसी को भी दुःख न होता। जीव का अधिकार कर्म करने में है, फल की कुञ्जी तो किसी कारे वर्ण वाले व्यक्ति ने अपने कमनीय करों में ले रखी है। वे जिससे जब जो चाहते हैं कराते हैं। उसमें किसी का हस्तक्षेप नहीं, वश नहीं, अधिकार नहीं। सब नाक में नकेल पड़े पशु के समान उनके संकेत पर नाच रहे हैं।

हाँ, तो अब दो वर्ष का सिंहावलोकन करें। क्षण-क्षण में परिवर्तनशील इस ससार में तो इन दो वर्षों में आश्चर्यजनक परिवर्तन हुए ही हैं, मेरी कुटी में ही महान् परिवर्तन हो गया है। ऋषियों का मत है, जो पिंड में है वही ब्रह्माण्ड में है। जैसा अपना मन है वैसा ही जगत् का मन है। व्यष्टि के यथार्थ ज्ञान से समष्टि का भी ज्ञान होता है। अपनी उन्नति से जगत् की उन्नति होती है, अपनी मुक्ति से विश्वब्रह्माण्ड की मुक्ति होती है। अतः बाहर न देखकर भीतर ही देखो। दूसरों की अवनति-उन्नति की ओर न देखकर अपने भीतर ही

टटोलो। दूसरों मे परिवर्तन देखकर न हँसो, अपने आप मे ही देखो। तीन वर्ष पूर्व जिस कुटी मे नाममात्र की कोई एकाध वृक्ष होगा, आज इसमें सैकड़ो हरे भरे वृक्ष लहलहा रहे हैं। बहुत-सी ललित-लतायें झुक कर झूम कर भूमि को चूम रही हैं, बहुत से पुष्प खिल खिलाकर हँस रहे हैं। बहुत से फल हिल-हिल कर श्रावण का-सा झूला झूल रहे हैं। जितने वृक्ष हैं, सबका अपना पृथक् पृथक् इतिहास है। पाठकों से उन सब का पृथक्-पृथक् परिचय कराऊँ, तो एक पृथक् पुस्तक बन जायगी। 'भागवती कथा' मे कमी हो जायगी। अतः विस्तार न करूँगा, किन्तु कुछ तो सुनाऊँगा ही। क्यों सुनाओगे जी ? पेड़-पत्तियों की बातों मे व्यर्थ समय क्यो बिताते हो, भगवान् की चर्चा क्यो नहीं करते ?"

भगवान् की ही तो चर्चा कर रहा हूँ। भोर में कोई चतुर चितेरा आकर मेरे इन पोधो के साथ खिलवाड कर जाता है, उसे मैंने कभी देखा नहीं, उसके खेल को देखा है, उसकी अद्भुत रचना का दिग्दर्शन किया है। जो जिस वस्तु से प्यार करता है, उसकी चर्चा मे भी उसे सुख मिलता है। अतः चितेरे की चित्रकला के सम्बन्ध की चर्चा उसे भली लगेगी। फिर लेखक का भी इनमे ममत्व तो है ही, उसका भी तो इन फूल-पत्तियो और लताओ से मनोरंजन होता है। अतः आज वार्षिक पर्व पर इनकी चर्चा अनुपयुक्त न होगी।

जिस स्थान पर यह भागवती कथा लिखी जा रही है। पुराणो मे इसका नाम यज्ञतीर्थ मिलता है। पहिले लेखक हंसतीर्थ मे रहता था, अब यज्ञतीर्थ मे। जिस कुटी में यह लिखी जा रही है वह बहुत ऊँचे पर है, एक टीला-सा है। भगवती भागीरथी के तटपर ही नहीं कगार पर है। आजकल वर्षा में तीन

ओरसे गंगाजी से घिरकर यह एक टापू-सा बन जाता है। नीचे एक मधु (महुए) का सुन्दर हरा भरा वृक्ष है मिट्टी का च- तरा बना है। वर्षात मे गंगाजी के बढने पर इसकी जडें जल डूब जाती हैं। इसे भूलोक कहिये। इससे ऊँचे स्थान पर तीन ईंटोंकी पक्की परिधि है। पश्चिमकी ओर गंगाजी के सन्मुख पा की जाफरी बनाकर घेर दिया गया है। बीच मे पक्की कुटी भी है गगाजी की ओर एक सुन्दर सहन है जिसमे बडे-बडे चार बा हैं। दो दक्षिण ओर दो उत्तर की ओर तथा एक पूर्व की ओर है परिधि के चारो ओर खुला स्थान है उसमें वृक्ष, पौधे तथ लतायें लगी हैं। दक्षिण ओर केवल ४-५ हाथ चौडा स्थान है पश्चिम ओर १५, १६ हाथ, उत्तर की ओर १०-१२ हाथ पूर्व की ओर ५-६ हाथ होगा। पश्चिम ओर वृत्ताकर गोल है पश्चिम में तो गगाजी की धारा ही हिलोरें मार रही हैं। दक्षिण की ओर एक बडा नाला है, जिसमे वर्षा के दिनों दूर तक गंग जी भर जाती हैं। उत्तर को गगाजी से प्रतिष्ठानपुर (झूसी नगर में जाने की सडक है। इसके बाद अब वृक्षो की कथ सुनिये। किसी ने कहा—अमुक के यहाँ मालती (चमेली) की बडं सुन्दर लता है, उसमे से तीन वर्ष पूर्व कुछ डाले तोड लाये थे, तीन स्थानों में लगा दीं। दक्षिण की ओर वही लता ऊपर चढ गई है। गत वर्ष स्वतन्त्रता दिवस के उपलक्ष्य मे एक नन्हे से पारिजात-हारश्रृङ्गार के वृक्षको मैंने यह सोचकर दक्षिण की ओर लगाया था कि देखें हमारी स्वतन्त्रता हरी-भरी रहेगी या कुम्हिला जायगी। आज यह वृक्ष बडा हो गया है, अनेकों उसमे से शाखा फूट निकली है। बडे-बडे पत्तो वाला वह वृक्ष आशा से भी अधिक बढ़ गया है, एक वर्ष मे ही ४ शाखायें तथा लगभग एक शत उप शाखायें हो गई हैं। उसका विस्तार भी बढ गया है।

मेरे गृह के सम्मुख ही वह स्वतंत्रता पादप लहरा रहा है। उससे आगे माधवी की लता मेरे दरवाजे मे बन्दनवार-सी बँधी लहरा रही है, नन्हे से पौधे से तीन वर्ष में ही यह लता कितनी फैल गई। पश्चिम की ओर दो बड़ी-बड़ी क्यारियों में तुलसी का वन है। एक राधा वन दूसरा कृष्ण वन, एक लगावें तो कहीं झगड़ा न हो जाय, इसलिये सबके हमने जोड़े-जोड़े लगाये हैं। उसके बीच में खम्भे लगाकर यूथिका (जूही) की लतायें चढ़ाई हैं। यह यूथिका वितान बड़ा ही सघन और मनोरम है, उसमे विष्णु कान्ता की लता स्वतः ही चढ़ गई है। यूथिका और विष्णुकान्ता की शाखायें परस्पर मे फँस गई हैं। यूथिका की सुन्दर स्वच्छ सुगन्धि युक्त छोटी-छोटी कलियाँ सब विष्णु कान्ता की बड़ी-बड़ी नीली और अम्बरी रंग की कलियो मे मिलकर खिलकर हिलने लगती हैं, तो ऐसी लगती हैं मानो गंगा यमुना की सखियाँ श्वेत और नीली साड़ी पहिनकर क्रीड़ा कर रही हों। इस ओर दोनो तुलसी क्यारियो मे स्वर्ण मल्लिका (पीली चमेली) के सामने वृक्ष हैं, ये बड़ी दूर मिलावली से आये हैं। बाईं ओर गंधराज का वृक्ष है तो उसके सामने दाईं ओर केवड़ा है। बेला के वृक्ष तो असंख्य है। वे जब सब फूलते हैं तो ऐसे लगते हैं मानो नभ में तारे खिल रहे हों। किनार-किनारे पंक्तिबद्ध अमृत फल अमरूद के वृक्ष हैं। वे संख्या मे सब १३ हैं, गत वर्ष कइयो पर फल भी आ गये थे। अब के तो सभी सम्भवतया फल जावँगे। फूल आ गये हैं। माधवी की लतायें आशा से अधिक चढ़ गई हैं। कुटी के चारों कोनों पर चारों चढ़ गई हैं। पाँचवी नीम की ओर है। उत्तर ओर दो प्राचीन नीम के वृक्ष हैं। उन पर गुरच-गिलोय चढ़ गई है। पारसाल विधारा की भी एक बेल लगाई थी, अब उसमे से अनेकों शाखा-प्रशाखायें निकल

कर नीम की ओर मुँह बाये रस्सी के सहारे चढ़ रही हैं। गत वर्ष जो दो चंपा के वृक्ष लगे थे, वे सूख गये। छोटे थे, अब केवड़ा लगाया गया है। (यूथिका) के तीन विस्तृत वितान हैं। पूर्व की ओर की दिवाल पर तो यूथिका की कई बेलें चढ़ रही हैं। सब का सरस इतिहास है। सबका इतिहास बता नहीं सकता सब के नाम लिखे देता हूँ, नहीं मुझसे अप्रसन्न हो जायँगे हमारा नाम छापेमें क्यों नहीं छपाया। पहिले लताओं के ही नाम बताता हूँ मल्लिका, माधवी, विधारा, विष्णुकान्ता, द्राक्षा, गुरूच और लौकी, तुरई, निबुआ, रमास की तो क्षणिक हैं वर्षा के दिनों में लगती हैं। गर्मियों में सूख जाती हैं। वैसे तो सभी क्षणिक हैं। पुष्पों वाले वृक्षों के नामों में से वृक्ष यूथिका, बेला, पाटल (गुलाब) रजनीगन्धा, इन्द्रजौ, गन्धराज, निवार, कुंद, केवड़ा, बकुल, स्वर्णमालती, कर्णिकार ये ही विशेष उल्लेखनीय हैं। फल वाले वृक्षों में अमरूद, अनार, आम, पपीता, फालसे, सीताफल ये ही है। सो, इनके दो-दो तीन-तीन वृक्ष होंगे। बाहर के अहाते में अमरूद, नीबू, बेल आदि के वृक्ष लगाये हैं और दो कमल कुंड भी, जिनमें नीले-बैजनी कमल खिलते रहते हैं। पहिले पढ़ा करते थे—

तुलसीकानन यत्र यत्र पद्मवनानि च।
पुराणपठन यत्र तत्र सन्निहितो हरिः॥

जहाँ तुलसी का कानन हो, पद्मों का वन हो, नित्य पुराण पाठ होता हो वहाँ श्रीहरि निवास करते हैं। यह भी पढ़ा था मद्-भक्ताः यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद' जहाँ मेरे भक्त मिलकर नाम गुणगान करते हैं वहाँ मैं खड़ा नहीं रहता बैठ जाता हूँ। यही सोचकर अपनी कुटिया में तुलसी के दो कानन लगाये, दो मलक

कुंड बन गये। नित्य ही नियम से सदा पुराण मंडप में पुराणों का पाठ और प्रवचन होता है। उदयास्त सदा अखण्ड कीर्तन होता रहता है, फिर भी श्रीहरि दीखते नहीं। अब यह तो कैसे कहें शास्त्रों के वचन मिथ्या हैं-श्रीहरि आते होंगे रहते होंगे, किन्तु वे चतुर्भुज रूप, मुरलीधर रूप में दिखाई नहीं देते, सन्त रूप में तो रहते ही हैं, दर्शन देते है। किन्तु उनमें निष्ठा नहीं। जिन वृक्ष और लताओं का मैंने अत्यत प्रेमपूर्वक पाठको को परिचय कराया है आजकल मेरे वे ही सखा हैं, सुहृद् है, मित्र, हैं, साथी हैं। उन्हीं के साथ रहता हूँ, उन्हीं के साथ खेलता हूँ, उन्हे ही पुचकारता हूँ, उन्हीं से बातें करता हूँ, उन्हे ही देखकर प्रसन्न होता हूँ। ये सब नित्य बढते हैं, नित्य उन्नति करते है, नित्य फलते फूलते हैं, किन्तु मैं वहाँ का वहीं हूँ। इनमें कितनी सहनशीलता है। कोई काटो, कोई मारो, जो जल दे जाता है उसी का पी लेते हैं। न मिलने पर माँगते नहीं, कुवाच्य कहने पर उलटकर उत्तर नहीं देते। धूप, गर्मी, वर्षा सभी को सिर से सहन करते हैं। जो चाहो फल फूल तोड ले जाओ, किसी को मना नहीं करते, देने को उत्सुक नहीं होते, कोई न तोडे पृथ्वी पर फेंक देते हैं। निरन्तर सुगन्धि फैलाते रहते हैं। दुर्गन्धयुक्त भी वस्तु इनके जडों मे डाल दो, तो उनसे भी सुगधि ही ग्रहण करते हैं। कितने गुण हैं मेरे इन मूक सखाओं मे, किन्तु मुझमे ये सब नहीं हैं। मैं अवगुणों से भरा हूँ, फिर भी ये मुझे अपनाये हुए हैं। यही आशा लगाये बैठा हूँ कि जिसने इन्हे बनाया है, उनमें जब इतनी अपनाने की क्षमता है, तो इनके रचयिता तो पापियों को भी अपना लेते होंगे। तीन वर्षों मे क्या से क्या हो गया, किन्तु मुझे पूर्ण प्रभु-प्रेम प्राप्त न हो सका। वही काली कलम और

चही कागदी या काम "कागद लिखे सो कागदी के व्योहारी जीव" में कागदी व्यवहारी दोनों ही हूँ। कब अपनाओगे नाथ ! कब इस व्योहार से पृथक् करोगे हरे ? कब सर्वात्मभाव से अपने चरणों की शरण दोगे अशरणशरण ? कुटिल पर कब कृपा करोगे कृपासिन्धो ! कब अपने प्रेम का प्याला पिलाओगे प्रेमास्पद ?

'भागवती कथा' की वर्षगाँठ के उपलक्ष में समस्त कथा के पाठकों के प्रति मैं आभार प्रदर्शन करता हूँ और प्रार्थना करता हूँ, इन कथाओं के प्रचार और प्रसार में वे भी प्रयत्न करके पुण्य के भागी हों।

एक बात और, मैं 'भागवती कथा' के साथ जो रत्नों में काँच के टुकड़े मिला देता हूँ, भगवान् और भक्तों की कथा के साथ अपनी राम कहानी भी जो कह देता हूँ, अपनी बात को चक कर जो १०।१५ पृष्ठ कागद व्यय कर देता हूँ यह है तो अनुचित ही, किन्तु इससे पाठक ऊबते तो नहीं ? यह तो नहीं सोचते 'गंगाजी की गैल में ये मदार के गीत क्यों गाये जा रहे हैं ?' क्यों एक ही बात बार-बार दुहराई जा रही है ? क्यों भक्त और भगवान् के सम्बन्ध की बातें छोड़कर अपनी कहानी कही जा रही है ? इसे न कहकर एक अध्याय 'भागवती कथा' कभी और कह दी जाय, तो वह शीघ्र समाप्त हो। मैं भी कभी कभी अनुभव करता हूँ और कई खण्डों में लिखता भी नहीं। आज मैं इसका निर्णय पाठकों पर ही छोड़ता हूँ। अगले दोनों खण्डों में मैं प्राकथन न लिखूँगा। 'भागवती कथा' के जितने पाठक हैं सभी मेरे निमित्त दो पैसे का व्यय करें। इसे पढ़कर सभी मुझे सूचित करें, प्राकथन लिखना सदा के लिये बन्द कर दूँ या कभी-कभी मन में आ जाय तो लिख दिया करूँ। क्योंकि इस कथन में अपने रोने के अतिरिक्त परमार्थ चर्चा कम

रहती है। यह निर्णय पाठकों के ही ऊपर है। सभी की सम्मति मानकर ही उसके अनुसार निर्णय होगा। समस्त पाठकों को इस विषय पर सम्मति देनी ही चाहिये। परन्तु इसका अर्थ यदि अपनी प्रशंसा सुनना हो तो भी पाठक उदारता पूर्वक वैसा अर्थ न लगावे। 'भागवती कथा' की प्रशंसा को यदि मैं अपनी प्रशंसा समझता हूँ तो पाप करता हूँ। प्राक्कथन के सम्बन्ध में मुझे वास्तव में दुविधा है। निज कवित्त तो सभी को नीका लगता है, मननशील पाठक ही इसके बलाबल को समझकर निर्णय दें। समस्त पाठकों से ही उत्तर की आशा रखता हूँ। अब के बहुत ग्राहक नहीं रहे। इसका भी कारण कुछ समझ में नहीं आया। भागवती कथायें तो अमर कथायें हैं, इनसे स्वार्थ परमार्थ दोनों ही सधते है, इहलोक परलोक दोनों ही बनते हैं, मनोरञ्जन धर्मोपार्जन साथ ही होते हैं। इस सुलभ अमृत का भी जो पान नहीं करना चाहे तो उनके सम्बन्ध मे अब हम क्या कहें! भक्तभावन भगवान् के पादपद्मों में प्रार्थना है, कि वे अपने गुण श्रवण में सभी को अनुराग प्रदान करें।

झूसी सङ्कीर्तन भवन, प्रतिष्ठानपुर
(प्रयाग)
श्रावण कृष्ण चतुर्दशी २००५

पाठकों की कृपा का इच्छुक.

प्रभुदत्त

द्वितीय संस्करण की भूमिका

सब अनित्य है,सब नाशवान् है,सब क्षणिक है, सब अस्थाई है, जो दीखता है, वह नष्ट हो जाता है, बदल जाता है,परिवर्तित हो जाता है, सब परिणामी है। आजसे पाँच वर्ष पूर्व जिन वृक्षों का उल्लेख किया था, उनमे से कुछ की मृत्यु हो गई, कोई अपनी युवावस्था को पार करके मरणासन्न हैं। मृत्यु रूपी सरिता के कगारे पर बैठे हुए हैं, न जाने कब कगारा खसक जाय धँस जाय और कब टूट कर गिर पड़ें। इन सब अनित्य पदार्थों में श्यामसुन्दर ही नित्य हैं, वे ही सत्य और शाश्वत हैं, वे ही अपरिवर्तनशील हैं, वे वृद्ध भी नहीं होते, युवक भी नहीं होते नित्य किशोर ही बने रहते हैं, उनकी जोरी भी ऐसी ही है। ये भी कभी बूढ़ी नहीं होतीं, उनकी उदरवृद्धि भी नहीं होती, सदा कृशोदरी और और नित्यकिशोरी बनी रहती हैं। जो आम इतना बढ़कर सूख सकता है, जो गंधराज इतना सींचा जाने पर भी नहीं पनपा उनकी व्यर्थ कथा क्या कहूँ। क्या उसमें संशोधन करूँ। अब तो पाठक ऐसा आशीर्वाद दें कि नित्यकिशोर की मनोहर मूर्ति सदा हृदय कमल मे बसी रहे नयनों के सम्मुख नृत्य करती रहे। यह जीवन सफेद कागदों को स्याह करने में ही लगा रहा। तो इसका दुरुपयोग ही है, जो भूल हो गई वह होती ही न रहे। इतना ही पर्याप्त है।

अ० वै० कृ० ८ २०१० वि०
त्रिवेणी जी
प्रभुदत्त

यमदूतों का और विष्णु-पार्षदों का सम्वाद

(३५८)

यूयं वै धर्मराजस्य यदि निर्देशकारिणः ।
ब्रूतधर्मस्य नस्तत्त्वं यच्च धर्मस्य लक्षणम् ॥
वेदप्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्ययः ।
वेदो नारायणः साक्षात्स्वयंभूरिति शुश्रुम ॥❀

(श्रीभा० ६ स्क० १ अ० ३८, ४० श्लो०)

छप्पय

सुनि नारायण नाम विष्णु पार्षद तहँ आये ।
यमदूतनिकूँ पकरि गदातें मारि गिराये ॥
डरिकें पूछें दूत—कौन तुम हम भगाओ ।
मोल भाव बिनु किये तड़ातड़ मार लगाओ ॥
धर्मराज के दूत हम, पापीकूँ लैजात हैं ।
करयो न हम अपराध कछु, काहे आपु रिस्यात हैं ॥

जब दो राजाओं के कर्मचारी मिलते हैं, तो जो बड़े राजा के चली और प्रभावशाली कर्मचारी होते हैं, वे छोटे मंडलीक राजा

❀ श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! विष्णुदूतों ने यमदूतों से पूछा-तुम लोग यदि यथार्थ में धर्मराज के निर्देश के अनुसार कार्य-करने वाले हो, तो तुम बताओ धर्म किसे कहते हैं ? धर्म का तत्व क्या है ?" इस पर यमदूत बोले—"अजी, वेद में जो कर्तव्य बताया है वही

के कर्मचारियों को उसी प्रकार डॉटते डपटते हैं, जिस प्रकार स्वामी अपने सेवकों को डॉटता डपटता है। वास्तव मे सेवक वही है, जो असमर्थ हो और स्वामी वही है जो समर्थ हो। जो प्रभावशाली नहीं उसे अपने प्रभावशाली पुरुषों के सम्मुख नवना ही पड़ता है।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन ! जब भगवान् के चार पार्षदों ने आकर उन तीन यम के दूतों को बिना मोल भाव किये मनमानी मरम्मत की, तब वे तेजहीन से हुए उलटे मुँह गिर पड़े। अब तक वे अपने को सबसे अधिक बलवान् समझकर पापियों के सामने बहुत अकड़ा करते थे, बहुत गर्जन-तर्जन कर के उसे डराते धमकाते थे, आज सब गर्जन-तर्जन भूल गये। बड़ी दीनता से गिड़गिड़ाकर बोले—"आप महानुभाव इतने तेजस्वी कान्तिवान् कौन हैं ? आज तक तो हमने यह देखा नहीं कि किसी ने धर्मराज की आज्ञा टाली हो। आज हम यह नई बात देख रहे हैं। आप लोग निर्भीक होकर धर्मराज की आज्ञा की अवहेलना कर रहे हैं। आप किसके दूत हैं ? आपके स्वामी का नाम क्या है। क्या आपके स्वामी यम धर्मराज से भी बढ़कर हैं ? आप इस समय कहाँ से पधारे हैं ? हम इस पापी को ले जा रहे थे, आपका कुछ बिगाड़ नहीं रहे थे, आपने हमारी अकारण क्यों मरम्मत की ? आप कोई देवता हैं या यक्ष, गंधर्व किंपुरुष, सिद्ध, चारण हैं ? देखने मे तो आप लोग सबके सब बड़े सुन्दर लगते हैं। आप सबके बड़े-बड़े

धर्म है, जिसका वेद मे निषेध किया गया है वह अधर्म है। हमने ऐसा सुना है कि वेद नारायण का स्वरूप है और नारायण स्वयभू हैं, वे किसी अन्य से उत्पन्न नहीं हुए।"

विशाल नेत्र खिले हुए कमल के समान सरस और कमनीय हैं। सबके शरीर पर सुन्दर सुवर्ण वर्ण का चमकीला पीताम्बर फहरा रहा है, माथे पर मनोहर मुकुट, कानों में कनक के कुंडल और गले में कमनीय कमलकुसुमों की मनमोहक मालायें हैं। सभी युवावस्थापन्न हैं, सभी के आजानुपर्यन्त लम्बे-लम्बे चार-चार हाथ हैं। सभी शंख, चक्र, गदा, पद्म, तथा धनुष-बाण, खड्ग और तरकस धारण किये हुए हैं। आप तो इस अंधकार पूर्ण गृह को अपने प्रकाश से प्रकाशित कर रहे हैं। आपके पधारने से तो दशों दिशायें देदीप्यमान हो उठी हैं। आप हमें अपना परिचय दीजिये और किस अधिकार से किस कारण से आप धर्मराज के कार्य में हस्तक्षेप कर रहे हैं? कृपा करके हमारे इन सभी प्रश्नों का उत्तर दीजिये।"

यमदूतों के इतने प्रश्नों को एक साथ सुनकर भगवान के प्रिय पार्षद ठहाकामार कर हँस पड़े और बोले—"हम तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर तो पीछे देंगे। पहिले यह बताओ, तुम इस आदमी को ले जाने वाले होते कौन हो?"

उन्होंने आश्चर्य के साथ कहा—"अजी, हम तो रात्रि-दिन यही काम करते हैं। हमारा काम ही यह है कि हम पापियों को धर्मराज की आज्ञा से उनके समीप ले जायँ?"

इसपर विष्णु पार्षदों ने पूछा—"क्या तुम्हारे [illegible] जिसे बुला लेते हैं, या किसी नियम से किसी [illegible] में किसी को बुलाते हैं?"

यमदूतों ने कहा—"हमारे स्वामी ने [illegible] जिसका जब मरने का समय होता है, उसे बुलाते हैं, पापियों को दण्ड देने के लिये हमारे द्वारा मँगाते हैं। वे [illegible] निश्चित नहीं होते, इसीलिये उनका नाम [illegible] है। हम उन [illegible]

के आज्ञाकारी दूत हैं। उनकी आज्ञा हुई, हम इसे लेने आये। हमने तो कोई अपराध किया नहीं, आपने बिना बात हमारा कचूमर निकाल दिया, हमें अधमरा बना दिया।"

यह सुनकर अधिकार के स्वर मे विष्णुपार्षदों ने पूछा—"अच्छा! तुम धर्मराज के नौकर हो, तो बताओ, धर्म किसे कहते हैं?"

प्रतीत होता है, ये दूत अभी नये ही परीक्षा देकर अपने पदपर प्रतिष्ठित हुए थे। इसीलिये परीक्षा का प्रश्न सुनते ही वे शीघ्रतासे अपनी योग्यता दिखाने को बोल उठे—"वेद मे जो विहित कर्म बताये गये हैं, उसे धर्म कहते हैं, इसके विपरीत जो अविहित कर्म हैं, जिनका निषेध किया गया है, उसे अधर्म कहते हैं।"

विष्णुपार्षदों ने पूछा—"वेद क्या है?"

यमदूतों ने कहा—"भगवान् श्रीमन्नारायण के निःश्वास से जो स्वयं प्रकट हुआ है। वही वेद है। वह भगवान् से भिन्न नहीं, उनका स्वरूप है। जो स्वयं साक्षात् श्रीमन्नारायण हैं, वही वेद है। ये समस्त प्राणी भगवान् में ही अवस्थित हैं या सबके अन्तःकरण मे वे ही हरि जीव रूप से विराज रहे हैं।"

पार्षदों ने पूछा—"फिर प्राणियों में यह इतनी विभिन्नता किस कारण से है?"

यमदूतों ने कहा—"देखिये, महानुभाव! भगवान् के स्वरूप मे स्थित हुए इन सत्व, रज और तमोमय प्राणियों को प्रभु अपने वेद रूप ज्ञान से उनके गुण, कर्म तथा नाम रूपादि के अनुसार जैसा जिसका कर्म है उसी के अनुरूप यथायोग्य विभाग कर दिया करते हैं। इसमें भगवान् का न कोई पक्षपात है न किसी के प्रति अन्याय है।"

इस पर विष्णुदूतों ने कहा—"अच्छा यह बताओ कि यह ज्ञान कैसे होगा, कि इस जीव ने शुभ कर्म किया है, इसने अशुभ कर्म किया है। इसे दण्ड देना चाहिये, इसे पारतोषिक मिलना चाहिये, इसे स्वर्ग भेजना चाहिये, इसे नरक पठाना चाहिये ?"

इस पर यमदूतों ने उत्तर दिया—'महाराज, इसके तो बहुत से साक्षी हैं। भगवान् ने जीवों के शुभाशुभ देखने के लिए इतने गुप्तचरों को नियुक्त कर रखा है कि उनसे छिपाकर कोई पाप कर ही नहीं सकता।"

पार्षदों ने पूछा—"वे दूत कौन कौन हैं, उनके नाम निर्देश तो कीजिये।"

यम के दूतों ने कहा—"सर्वप्रथम तो सभी प्राणियोंके शुभाशुभ कर्मों के साक्षी भगवान् सूर्यनारायण हैं। इसीलिये कोई भी शुभ काम करते हैं तो उसके पीछे सूर्य को अर्घ्य देते हैं और यह प्रार्थना करते हैं—हे विवस्वान्! हे ब्रह्मन्! हे प्रकाशवान, हे विष्णु तेज से युक्त देव! हे जगत सविता! हे परम पवित्र! हे प्राणियों के समस्त कर्मों के साक्षी देव! आपको नमस्कार है। आप हमारे शुभकर्म के साक्षी हैं।" जब प्राणी मरता है तो सूर्य जाकर साक्षी देते हैं कि इसने यह कार्य किया था। अग्निदेव भी सब कर्मों के साक्षी हैं। अग्नि भीतर जठराग्नि रूप में बाहर प्रत्यक्ष अग्नि रूप में अवस्थित है। अग्नि से छिपाकर कोई कुछ कर ही नहीं सकता। आकाश भी भगवान् के गुप्तचर हैं जो प्राणी पाप पुण्य करेगा आकाश के भीतर ही करेगा। आकाश के बाहर तो कोई कुछ कर ही नहीं सकता। वायु भी कर्मों का स्मरण रखते हैं। वायु के बिना कोई प्राणी जीवित ही नहीं रह सकता। सब इन्द्रियों के अभि-

मानो देवता भी कर्मों के साक्षी हैं। चन्द्रमा, सन्ध्या, रात्रि, दिन. दशों दिशायें, जल, पृथ्वी, काल, तथा धर्म ये सबके सब जीवों के समस्त शुभाशुभ कर्मों के साक्षी होते हैं। धर्मराज इन सबसे पूछ लेते हैं। जिसे दण्ड योग्य समझते हैं, उसे हमारे द्वारा बुलवा कर दण्ड देते हैं, जिन्हें स्वर्ग योग्य समझते हैं,उन्हें सोम्य रूप से सत्कारपूर्वक स्वर्ग पठा देते हैं। प्राणी अपने अपने कर्मों के अनुसार स्वर्ग नरक मे सुख दुख भोगते हैं।"

विष्णु-पार्षदो ने पूछा—"तो क्या तुम्हारे स्वामी सभी को दंड देते हैं, कोइ कर्म न कर तो ?"

यमदूतों ने कहा—"महाराज यह कैसे हो सकता है। जिसने शरीर धारण किया है, वह तो कोई भी प्राणी क्यों न हो, विना कुछ न कुछ किये रह ही नहीं सकता। क्योंकि शरीर तो बिना तीनों गुणो में आवद्ध हुए प्राप्त ही नहीं हो सकता। जो सत्व रज और तम इन गुणों मे बँधा है उससे शुभ अशुभ कर्म अवश्य होंगे ही। जिससे इस लोक में जैसा शुभ अशुभ, धर्म अधर्म, पाप पुण्य बनता है उसे परलोक में वैसा ही सुख दुःख भोगना पडता है।"

विष्णु पार्षदों ने कहा—"तब भाई! यह बताओ यह कैसे पता चले कि यह पापी है, इसने पूर्व जन्म में पाप किया है, इसे आगे के जन्म में पापयोनि भोगनी पड़ेगी। भूत और भविष्य तो अदृश्य है।"

यह सुनकर यमदूत बोले—"हाँ महाराज! यह तो ठीक है भूत और भविष्य के कर्म अदृश्य हैं, किन्तु वर्तमान के तो प्रत्यक्ष दीख रहे हैं। देखिये, हमें यहाँ तीन प्रकार के ही लोग दिखाई देते हैं। उत्तम, मध्यम, अधम। सुखी, दुखी, साधारण। पुण्यात्मा, पापात्मा, मध्यम श्रेणी के। सात्विक, राजस, तामस।

जिसे हम सुखी देखते हैं, पुण्य कर्म करते देखते हैं, अनुमान लगा लेते हैं, इसने पिछले जन्मों मे शुभ कर्म किये होंगे, इसी लिये इस जन्म म इसका ऐसी बुद्धि हुई कि अब शुभ कर्मों मे प्रवृत्त है। अब शुभकर्म करेगा तो आगे भी इसे शुभ लोको की प्राप्ति होगी। इसी प्रकार अधम के विषय मे भी इसी न्याय से अनुमान लगाया जा सकता है। इससे तीन जन्मों का तो प्रत्यक्ष ही वर्तमान कर्मों को देखकर ज्ञान हो जाता है।

विष्णुपार्षदो ने कहा—'अनुमान सदा सत्य ही हो, यह बात तो नहीं। कभी कभी अनुमान मिथ्या भी हो जाता है। यमराज अनुमान के ही सहारे दण्ड देते है या और भी कोइ उनके समीप पाप पुण्य जानने का साधन है?"

इस पर यमदूतो ने कहा—"नहीं, महाराज! यह बात नहीं। भगवान् यम केवल अनुमान के ही आधार पर दण्ड नहीं देते। वे तो सबके अन्त करणों मे सदा विराजमान रहकर सबके कर्मो को प्रत्यक्ष देखते रहते हैं। वे अजन्मा भगवान् धर्मराज मन से ही सब प्राणियो के पूर्व तथा अपूर्व रूपका विचार कर लेते हैं। यमराज से तो कोई बात छिपी नहीं है, वे तो जीवो के वर्तमान, भूत तथा भविष्य की सब बातें जानते है, किन्तु जीव को वर्तमान शरीर के अतिरिक्त अगले पिछले शरीरो का ज्ञान नहीं है।

विष्णुपार्षदो ने पूछा—"जीव को अगले पिछले शरीरो का ज्ञान क्यों नहीं रहता? वह स्वय भोगे हुए शरीरों को तथा उनके कर्मो को कैसे भूल जाता है?"

इस पर यमदूतो ने कहा—"हे निष्पाप! इस विषय को आप यों समझ। जैसे कोई आदमी सो जाता है, स्वप्न में बहुत

से शुभ अशुभ कर्मों करता है। उस समय स्वप्न में जिस स्वप्न शरीर से कार्य करता है, उसी शरीर को सत्य समझता है, इस स्थूल शरीर के अभिमान को सर्वथा भूल ही जाता है। जागने पर उसे उस स्वप्न शरीर का और स्वप्न के देखे पदार्थों के मिथ्यात्व का बोध होता है, उसी प्रकार पूर्व जन्मों की स्मृति नष्ट हो जाने से जीव को वर्तमान शरीर के अतिरिक्त अन्य पहले पिछले शरीरों के विषय में कुछ भी स्मरण नहीं रहता।"

विष्णुपार्षदों ने पूछा—"फिर यह जीव एक शरीर से दूसरे शरीर में जाता किस प्रकार है ?"

इस पर यमदूत बोले—"देखिये भगवन्! ५ कर्मेन्द्रियाँ ५ ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच उनके विषय ये १५ हुए, १६ वाँ मन और सत्रहवाँ स्वयं जीव। इनसे मिलकर तद् तद् विषयों का उपभोग करता है। इस प्रकार तीन गुणों के साथ यह १६ कलाओं वाला लिङ्ग शरीर यही एक देह से निकलकर दूसरी देहों में प्रवेश करता है। बार बार शरीर छोड़ता है, फिर नया शरीर धारण करता है। देह में अभिमान करके काम क्रोधादि के वशीभूत होता है। यह अज्ञानी जीव इच्छा न रहने पर भी लिङ्ग शरीर द्वारा कर्मों में प्रारब्ध कर्मानुसार प्रवृत्त कराया जाता है।

विष्णुपार्षदों ने कहा—"यह तो भैया! अच्छा रहा। स्वयं ही कर्म करता है, स्वयं ही उनमें बँधता है।"

हँसकर यमदूतों ने कहा—"हाँ महाराज! यही तो जीवों का अज्ञान है। देखिये, रेशम का कीड़ा अपने मुँह से ही सूत निकालता है उसे अपने आप ही अपने चारों ओर लपेटता रहता है, इससे स्वयं ही उन सूत्रों में बँध जाता है। निकलने का रास्ता ही नहीं रहता। रेशम बनाने वाले उसे तोड़ लाते हैं। गरम पानी में पकाते हैं। कीड़ा मर जाता है रेशम को निकाल

लेते हैं। ऐसे ही यह जीव अपने आप अशुभ कर्म करके बार बार जन्मता और मरता रहता है। ससार चक्र को स्वयं बनाता है। महाराज ! यह जीव प्रारब्ध कर्मानुसार प्रकृति के वश भूत होकर अवश हुआ कर्मों को करता रहता है।"

विष्णु पार्षदों ने कहा—"तब फिर इसका क्या दोष, इसे तुम क्यों ले जाते हो ?"

यमदूतों ने शीघ्रता से कहा—"महाराज इसने तो बडे बडे पाप किये हैं। पहिले तो यह अच्छा था, कुलीन ब्राह्मण था। एक वेश्या के चक्कर मे फँसकर इसने अपना सब शील सदाचार खो दिया। बडे-बडे घोर पाप किये। अनेकों हत्यायें की, धन लूटा, और भी जितने पाप हो सकते हैं, किये। अब हम इसे अपने स्वामी की आज्ञा से नरक में ले जायँगे। जहाँ इसे इसके पापों के लिये भाँति भाँति की यातनायें दी जायँगी, जहाँ दड देकर पापी उन पापों से मुक्त किये जाते हैं।

आप इसे जानते नहीं, इसीलिये इस पर इतनी दया दिखा रहे हैं। इसका जीवन पापपूर्ण रहा है। यह बहुत दिन तक वेश्या के साथ भोजन, पान सगम करता रहा है। उसके ससर्ग से उसके पापों को खा खाकर पचाता रहा है। इतने पाप करके भी इसने उनका शास्त्रविधि से यहाँ कोई प्रायश्चित्त भी नहीं किया। जब यहाँ पाप करके भी इसने प्रायश्चित्त नहीं किया, तो अब हम इसे यमसदन को ले जायँगे, जहाँ दण्डपाणि भगवान् यमराज निवास करते हैं। वहाँ दण्ड भोगने पर जब इसके पापों का प्रायश्चित्त हो जायगा तब नरक से निकाल दिया जायगा।'

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—'राजन् ! तब यमदूतों के द्वारा अपने प्रश्नों का ऐसा उत्तर पाकर भगवान् के प्रिय पार्षद

अत्यंत प्रसन्न हुए और उन्हें समझाते हुए बोले—"देखो, भैया! तुम कह तो ठीक रहे हो, किन्तु एक बड़ी भूल कर रहे हो। हम मानते हैं इसने पाप किये हैं, किन्तु पापों का प्रायश्चित्त हो जाने पर तो पापों का फल भोगना नहीं पड़ता। इसने तो पाप करके उनका प्रायश्चित्त कर लिया है।"

यमदूतों ने कहा—"नहीं, महाराज! इसने प्रायश्चित्त कुछ नहीं किया। न चान्द्रायण किया न कृच्छ्र, न पराक व्रत किया न कोई और व्रत उपवास ही। फिर आप कैसे कहते हैं, इसने पापों का प्रायश्चित्त कर लिया।"

विष्णुदूतों ने गम्भीरता के स्वर में कहा—"यही तो तुम लोगों की भूल है। इसे ही तो तुम समझते नहीं। इसीलिये तो तुम्हारी मरम्मत हुई।"

यमदूतों ने कहा—"हाँ, तो महाराज! इसे हमें समझाइये।"

श्रीशुक कहते हैं—"राजन्! यमदूतों की ऐसी जिज्ञासा पर विष्णु-पार्षद उन्हें भगवन्नाम का महत्व समझाने के लिये उद्यत हुए।"

छप्पय

विष्णु पार्षद कहैं—मर्म को मर्म बताओ।
दड जोग जिह नाहिँ जाइ च्यों व्यर्थ सताओ॥
बोले जमके दूत—धर्म जो वेद बखान्यो।
है अधर्म विपरीत वेद हरि रूपहि मान्यो॥
हिंसक पापी सुरापी, कूँ यमपुर लै जायँगे।
नरक अग्नि में डारिकें, जाकूँ विमल बनायँगे॥

न निष्कृतैरुदितैर्ब्रह्मवादिभि—
स्तथा विशुद्धयत्यघवान् व्रतादिभिः।
यथा हरेर्नामपदैरुदाहृतै—
स्तदुत्तमश्लोकगुणोपलम्भकम् ॥*

(श्रीभा० ६ स्क० २ अ० ११ श्लो०)

छप्पय

हरिपार्षद पुनि कहें—"दूत! तुम कछु नहिँ जानों।
व्यर्थ बजाओ गाल विज्ञ अपनेकूँ मानों॥
'नारायण' यह कह्यो अन्तमहँ सुतते जानें।
तौ हम ताकूँ फेरि परम पावन नर मानें॥
चोर, जार, हिंसक, कुटिल, पापी चाहें होय अति।
नाम उचारन ते तुरत, होहि सिद्ध पावै सुगति॥

हीरा भी पाषाण है और साधारण पाषाण भी पाषाण है। मूर्खों की दृष्टि मे दोनों मे कोई विशेष भेद नहीं। वे समझते

* विष्णुपार्षद यमदूतों से कह रहे हैं—"दूतो! देखो, ब्रह्मवादी ऋषियों ने जो पापों के प्रायश्चित्त स्मृतियों मे बताये हैं, उनसे पापी पुरुष वैसा शुद्ध नहीं होता जैसा कि भगवान् के नाम रूप पदोंके उच्चारण

हैं यह अधिक चमकीला पत्थर है, यह कम चमकीला है, पत्थर पत्थर दोनों एक से हैं। किन्तु उनका महत्व तो जौहरी ही जानता है। इसी प्रकार साधारण लोग समझते हैं, जैसे और नाम हैं, वैसा ही भगवन्नाम है, असुरों में तो कोई भेद नहीं, किन्तु जो भगवान् के अत्यंत प्रिय हैं, समीपवर्ती हैं, उनके पार्षद हैं, वे नाम के महत्व को जानते हैं कि वास्तव में नाम क्या है, भगवन्नाम में कितनी शक्ति है।

श्री शुकदेवजी कहते हैं—"राजन ! यमदूतों के मुख से धर्म की बातें सुनकर और उस अजामिल को नरक ले जाने की इच्छा प्रकट करने पर विष्णुपार्षद हँसे और हँसकर बोले—"अरे ! तुम लोग बड़े अज्ञ हो। कहते तो हो तुम अपने को धर्मराज का सेवक, किन्तु हमें प्रतीत होता है कि तुम किसी अधर्मी के सेवक हो। तुम्हारा स्वामी धर्मात्मा होता तो ऐसी आज्ञा भूलकर भी न देता। बड़े दुःख की बात है कि जो धर्मात्मा कहलाते हैं, जिनकी प्रसिद्धि 'धर्मराज' इस नाम से है, उनकी सभा में अधर्म का प्रवेश हो जाय, वे न दण्ड देने योग्य निष्पापों को भी अकारण दण्ड देने लगें, तो प्रजा फिर किस की शरण में जाय ? प्रजा के जन तो उन्हें ही अपना माता,पिता, स्वामी सर्वस्व तथा समदर्शी मानते हैं वे भी अन्याय पर उतारू हो जायँ, तब तो हो चुकी धर्म की रक्षा। वे अन्याय का आचरण करेंगे, तो उनकी देखा देखी और साधारण लोग भी अधर्म का आचरण करने लगेंगे। बड़ों को जो कार्य करते देखते हैं, सर्व साधारण लोग उसी का अनुकरण करने लगते हैं।

से शुद्ध होता है। क्योंकि उत्तमश्लोक भगवान् के नाम उनके गुणों का ज्ञान कराने वाले होते हैं।

जिस बात को बड़े लोग सुन्दर समझकर स्वीकार कर लेते है, इतर जन उसे ही प्रमाण मान लेते हैं। यह तो सर्वथा अन्याय, विश्वासघात हुआ।

यमदूतों ने कहा—"कहा महराज ! विश्वासघात कैसे हुआ ?"

विष्णु पार्षद बोले—"भाई ! विश्वासघात तो हुआ ही, जो जिसकी शरण आया है, जो जिस पर विश्वास करके उसके अधीन हो गया है, उसी के गले पर छूरी चलाना विश्वासघात नहीं तो क्या है ? बहेलिया जाल डाल कर वीना बजा कर हिरनो को फँसा लेते हैं, पीछे उन्हें मार डालते हैं। हम किसी पुरुष पर विश्वास करते हैं, उसकी गोद मे सिर रखकर सो जाते हैं, यदि वह ही अन्याय करके हमारा सिर काट दे तो यह विश्वासघात नहीं हुआ ? भाई, साधु स्वाभाव के पुरुष तो अपनी शरण मे आये हुए अपकारी का भी अनिष्ट नहीं करते। जिसने अपने ऊपर विश्वास किया है, उसके साथ न्याय ही करते हैं। जो जड़मति है, व्याधा हैं, पशुबुद्धि है वे ही ऐसा विपरीत व्यवहार करते हैं। यहाँ तक कि हिसक पशु भी शरणागत के साथ विश्वासघात नहीं करते। एक कहानी सुनो।

एक पथिक घोर बीहड़ वन से होकर कहीं जा रहा रहा था। रास्ते मे उसे एक सिंह मिला। सिंह के भय से वह भागा। सिंह ने भी उसका-मांस के लोभ से-पीछा किया। पथिक शीघ्रता से एक पेड़ पर चढ गया। उस पेड़ पर एक रीछ रहता था। पथिक ने रीछ से कहा—"देखो, मैं तुम्हारी शरण मे आया हूँ, तुम्हारे घर आया हूँ, मेरी रक्षा करना। रीछ ने कहा—"अच्छी बात है, तुम किसी प्रकार का भय मत करना। यहाँ निर्भय होकर रहो। मेरी देख रेख में रहने से सिंह तुम्हारा कुछ भी अपकार न कर

सकूगा।' रीछ की ये बातें सुनकर पथिक को विश्वास हो गया। वह निश्चिन्त होकर रीछ के समीप बैठ गया।

सिंह ने रीछ से कहा—"देखो भैया! हम तुम दोनों ही वन के रहने वाले हैं, भाई-भाई हैं। यह आदमी ग्राम का रहने वाला है, हमसे भिन्न जाति का है, हमारा आहार है। मुझे भूख लगी है, तुम इसे नीचे गिरा दो। मेरी भूख शान्त हो जायगी तुम्हारा बड़ा उपकार होगा।"

रीछ ने कहा—'हे वनके राजा! तुम भले ही अन्याय करो। मैं अन्याय नहीं कर सकता। शरण में आये हुए का परित्याग नहीं हो सकता। जिसने मुझपर विश्वास करके आत्मसमर्पण कर दिया है, उसके साथ मैं विश्वासघात नहीं कर सकता। मैं इस अपने शरण में आये हुए की प्राणपन से रक्षा करूँगा।"

रीछ की ऐसी न्याययुक्त बातें सुनकर भूखा सिंह वहीं बैठा रहा कि कभी तो यह उतरेगा। इसी बीच में रीछ सो गया। अब तो शनैःशनैः सिंह ने उस पथिक से कहना आरम्भ किया। "अरे, तुम किसके चक्कर में फँस गये हो। यह तो मुझसे भी अधिक हिंसक जीव है। जब तक मैं बैठा हूँ, तब तक यह चुप है जहाँ मैं गया, कि यह तुम्हें खा जायगा। अतः इस सोते हुए को तुम नीचे ढकेल दो। इसे खाकर मैं चला जाऊँगा तुम से नहीं बोलूँगा।'

सिंह की ऐसी बातें सुन कर उस मूर्ख अज्ञ कृतघ्न पुरुष ने रीछ के साथ विश्वासघात किया, उस सोते हुए को ऊपर से नीचे ढकेल दिया। रीछ का तो सदा अभ्यास ही रहता है वृक्षों पर सोने का। गिरते ही वह सम्भल गया, नीचे आने के पहिले ही शीघ्रता में उसने एक दूसरी डाली पकड़ ली, वह नीचे न गिर सका। अब तो सिंहने फूट डालने का उपक्रम किया। वह

रीछ से बोला—'देखली, तुमने इस आदमी की भलमनसाहत। तुमने इसके साथ कितना उपकार किया, इसने तुम्हार साथ फिर भी विश्वासघात किया। अब यह अपने किय पाप का दण्ड भागे। तुम इसे नीचे फेंक दो।"

इस पर रीछ ने कहा—'ह पशुराज' आप मुझ से एम अन्याय की आशा न रक्खें। इसने धर्म को छोड दिया, मूर्खता की, तो क्या में भा मूर्खता कर सकता हू? जिसने मित्रभाव स मुझपर विश्वास करके मुझे आत्मसमर्पण कर दिया है उसके साथ मैं कभो अन्याय न करूँगा। उसका अनिष्ट न होने दूँगा।" दूता' रीछ की ऐसी युक्तियुक्त बात सुनकर सिंह लोट गया और वह मनुष्य जीवित सकुशल घर पहुँच गया। सो भैया, इस निष्पाप को यदि धर्मराज मँगाते हे, तो वे अधर्म करते हैं, जीवो के साथ विश्वासघात करते हैं।

दूतों ने कहा—"महाराज, आप इसे निष्पाप क्यों बता रहे हें यह तो महापातकी है। पाप करके उनका शास्त्रोक्त प्रायश्चित्त भी कर लेता, तब हम इसे शुद्ध हुआ समझ कर न ले जाते। इसने पाप करके प्रायश्चित्त भी नहीं किया। तब तो इसे ले जाना हमारी बुद्धि से अन्याय नहीं हे।"

विष्णुपार्षदों ने अपनी बात पर बल देते हुए कहा—"यही तो हम कह रहे हैं, तुम समझते नहीं। यह पापी रहा होगा, इसे हम मानते है, किन्तु अब तो यह पापी नहीं रहा। इसने अपने समस्त पापो का प्रायश्चित्त कर लिया।"

दूतों ने आश्चर्य के साथ पूछा—'क्या प्रायश्चित्त किया इसने महाराज?"

विष्णुपार्षदों ने कहा—"देखो, भैया' इसने शुद्ध स्पष्ट तथा पूरा चार अक्षरों वाला—"नारायण" ऐसा भगवान् का

परम पावन सुमधुर नाम मरते समय-अंतिम स्वास पर-ले लिया अब इनके लिये और कौन सा प्रायश्चित्त शेष रह गया ?

इस पर अवाक् होकर दूत विष्णुपार्षदों की ओर देखते के देखते ही रह गये और विस्मय के स्वर में बोले—"भगवन्नाम के उच्चारण से किन-किन पापों का प्रायश्चित्त हो जाता है ?"

इस पर मेघ गम्भीर वाणी में विष्णुपार्षद बोले—"देखो, भैया ! जिसने मरते समय एक बार भी अवश होकर भगवान् के परम पावन नाम का उच्चारण कर लिया, वह समस्त चोरी के पापों से छूट गया, सुरापान का महापाप उसके समीप से भाग गया, मातृ पितृ तथा गौ आदि की जो हत्यायें की हों वे भी नामकी ध्वनि सुनते ही इसके देह का आश्रय छोड़ गईं। उसने गुरुस्त्री गमन जैसा महापापका भी प्रायश्चित्त कर डाला। अधिक क्या कहें, उसने समस्त पापों का अन्त में नाम लेते ही प्रायश्चित्त कर लिया। वह पापों से विशुद्ध बन गया।

यमदूतों ने कहा—"महाराज ! यह कैसे हो सकता है। नाम का महत्व हम मानते हैं, किन्तु उसे ज्ञानपूर्वक-संकल्पपूर्वक-नामापराधों को बचा कर लिया जाय तब फल देने वाला होगा। ऐसे अवश होकर नाम ले लिया तो उससे क्या लाभ ? शव के ले जाने वाले भी तो राम-नाम सत्य है चिल्लाते जाते हैं।

यह सुन के विष्णुपार्षद उन भयानक आकृति वाले नरक के दूतों को घुड़क कर बोले—"तुम लोग बड़े चांडाल हो रे ! नाम के महत्व को कम करते हो, नाम को भी बन्धन में बाँधना चाहते हो ? यह तो नाम का महत्त्व नहीं हुआ, नामापराध का महत्व हुआ। नाम में कभी अपराध होता है ? वह तो सदा विशुद्ध है, उसके लिये कोई विधि नहीं, निषेध नहीं, नियम नहीं, पात्रापात्र विचार नहीं। मरते समय कैसे भी मुख से निकल जाय,

वह सब पापों को उसी प्रकार नाश कर देगा, जैसे एक अग्नि की चिनगारी लाखों करोड़ों मन रुई के ढेर को बात की बात में जलाकर नाश कर देती है। विधिपूर्वक नाम लिया जाय, पवित्रता के साथ लिया जाय, नामापराधों को बचाकर लिया जाय, पवित्र द्विजाति के द्वारा लिया जाय, यह बुद्धि तो उत्तम है ही, सोने मे सुगन्धि है, किन्तु जिससे इतनी पवित्रता नहीं बन सकती, वह भगवान् का नाम ले ही नहीं, यह कैसे हो सकता है। फिर साधारण जीवों की निष्कृति का उपाय क्या रहा ? फिर नाम सर्व सुगम सर्वोपयोगी साधन कहाँ रहा ? फिर तो यह भी विधि-विधानके अधीन हो गया। जैसे यज्ञयागादि अविधिपूर्वक किये जायँ, तो निरर्थक है, यही नहीं विधिहीन यज्ञ का कर्ता शीघ्र ही-परमार्थपथ से विनष्ट हो जाता है। यह बात भगवन्नाम कीर्तन मे नहीं है। इसे तो भाव से, कुभाव से सावधानी से, आलस्य से, ज्ञान से, अज्ञान से, कैसे भी लिया जाय, ज्ञानी, अज्ञानी, पंडित, मूर्ख, ब्राह्मण, चांडाल, शुचि, अशुचि, धर्मात्मा, परमात्मा कोई भी क्यों न ले, ब्रह्मावर्त ऋषि सेवित देश में, कीकट मगधादि निषिद्ध देशों मे कहीं भी क्यों न लिया जाय, निरर्थक-व्यर्थ कभी होने का ही नहीं। यह शास्त्रों का निर्णय है, पुराण इसका प्रचार डंडे की चोट के साथ कर रहे हैं। किसी भी पुराण को उठाकर देखिये, उसमें भगवन्नाम कीर्तन के विषय में ये ही उदार विचार मिलेंगे। उसमें संकुचितता, सकीर्णता सांप्रदायिकता की गन्ध भी नहीं। भगवान् के नाम मे नियम

नहीं, देश, काल, पात्र किसी की अपेक्षा नहीं। केवल जिह्वा से नाम उच्चारण हो जाना चाहिये। फिर नाम सब कुछ कर लेगा रोगी को वैद्य के वचनों पर विश्वास करना चाहिये। यदि वह गोली की सब दवाओं के विषय में जानकारी प्राप्त करके तब उसे खाना चाहे—इस गोलीमें कौन-कौन सी दवायें हैं। ये कहाँ मिलती हैं, इनमें क्या गुण हैं, उनके सत्त कैसे निकाले जाते हैं, उन्हें हम देखकर तब गोली खायेंगे, ऐसे विचार रखने वालों के रोग कभी नहीं जायेंगे। अरे, तुम तो आँख बंद करके गलेके नीचे गोली को निगल जाओ। पेटमें पहुँच कर वह अपना गुण स्वयं दिखावेगी। तुम्हें उसके लिये प्रयास न करना होगा। तुम्हारा कर्तव्य तो इतना ही है, सदा वैद्यकी बताई गोली को गलेके नीचे उतार लो। शेप कार्य गोली स्वयं कर लेगी। भगवान के नाम में अनन्त शक्ति है। मरते समय किसी भाग्यशाली के मुख मे राम का नाम आजाय, तो उसके सभी पाप उसी क्षण विलीन हो जाते हैं, इसने ऐसाही तो किया। मरते समय विशुद्ध— "नारायण" यह शब्द आर्त होकर रोकर चिल्लाकर पुकारा। फिर यह पापी कहाँ रहा ? फिर तुम इसे पकड़ने का साहस क्यों कर रहे हो ? इसीलिये हमने तुम्हारी बिना मोल भाव पूछे मरम्मत की। यदि फिर हाथ लगाया, तो मारे डंडों के कचूमर निकाल देंगे, सब यमदूतपना भूल जाओगे। समझे बच्चू जी !

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"भगवान् के पार्षदों के मुख से अन्त

समय भगवन्नाम के उच्चारण का ऐसा माहात्म्य सुनकर यमदूत अवाक् रह गये। वे डर से काँपते हुए विष्णुपार्षदों की ओर देखते के देखते ही रह गये।"

छप्पय

प्रायश्चित्त मनु आदि पापके विविध बतावें।
तिनतें छूटें पाप किन्तु जड़तें नहिं जावें॥
रहै वासना बनी फेरि हू पाप करिङ्गे।
पुनि पुनि करिके पाप नरकमहँ मनुज परिङ्गे॥
प्रायश्चित सब पापको, पुरुषोत्तम को नाम है।
तुम उचारन भर करो, फेरि नामको काम है॥

हरिनाम से ही पापों की आत्यंतिक निवृत्ति होती है।

(३६०)

नैकान्तिक तद्धि कृतेऽपि निष्कृते,
मनः पुनर्धावति चेदसत्पथे।
तत्कर्मनिर्हारमभीप्सतां हरे—
र्गुणानुवादः खलु सत्वभावनः ॥*

(श्रीभा० ६ स्क० २ अ० १२ श्लो०)

छप्पय

लेवें जाको नाम यादि गुण ताके आवें।
पुण्य कीर्ति भगवान् नाम गुण ज्ञान करावें॥
हरि गुन मनमहँ धँसे फेरि कस पाप रहिङ्गे।
बहुतक होवें हिरन सिंहकूँ देखि भगिङ्गे॥
इत उत भटके जीव क्यों, करे व्यर्थ के काम तू।
सब प्रपञ्चकूँ छाँड़ि के, क्स न लेइ हरि नाम तू॥

मनुष्य पाप क्यों करता है? वासना के वशीभूत होकर, मन में विषयों की वासना रहना ही बीज है, पाप उसके फल

*विष्णुपार्षद यमदूतों से कह रहे हैं—"देखो, भैया! जिस पाप के प्रायश्चित्त करने के अनन्तर भी मन असत्पथ की ओर दौड़े वह मन की आत्यंतिक शुद्धि करने वाला पूर्ण प्रायश्चित्त नहीं है।

हैं। कोई विषका वृक्ष है। उसपर फल लग गये। यह सोचकर कि इन फलों को कोई खायगा तो मर जायगा, क्षेत्र के स्वामी ने उन फलों को किसी शस्त्र से तुड़वाकर जला दिये। फल वृक्ष नष्ट हो गये, किन्तु उनका उद्गम नष्ट नहीं हुआ। जहाँ दूसरे वर्ष वर्षा हुई, फूल आये, वृक्ष पर फिर फल लग जायँगे। जब तक वृक्ष जड़ से न काट दिया जायगा, तब तक प्रतिवर्ष फलों को नष्ट करते रहो, फल लगते ही रहेंगे। इसी प्रकार पापों के प्रायश्चित्त की बात है। आप लाख प्रायश्चित्त करो प्रायश्चित्त से उस पाप का फल नरक में न भोगना पड़ेगा, किन्तु वासना तो बनी ही रहेगी। वासना जायगी भगवान् के गुणानुवादों का आश्रय ग्रहण करने से, भगवान् की कथा और उनके सुमधुर नामों का प्रेमपूर्वक कीर्तन करने से।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! भगवान् विष्णु के पार्षदोंके मुखसे "नारायण" नामका इतना माहात्म्य सुनकर यमदूत कुछ निर्णय न कर सके। उन्हें कुछ उत्तर न सूझा। वे विनीत भावसे भगवान् के पार्षदों से पूछने लगे—"तब, महाराज ! हमारे लिये क्या आज्ञा होती है ?"

डाँटकर विष्णुपार्षद बोले—"आज्ञा क्या होती है, इस महात्मा को मत ले जाओ। जब इसने अपने समस्त पापों का प्रायश्चित्त कर ही लिया, मरते समय इसके मुख से भगवन्नाम निकल ही गया, तब यह पापी कहाँ रहा ?"

हाथ जोड़कर यम के दूतों ने पूछा—"महाराज ! आप

इसलिये जिसे पाप कर्मों की आत्यन्तिक निवृत्ति करने की इच्छा हो उसे भगवान् के गुणों का अनुवाद ही करना चाहिये, क्योंकि यह निश्चय ही चित्त की शुद्धि करने वाला है।"

लोगों की आज्ञा तो शिरोधार्य है ही, किन्तु तो भी हमें एक शंका रह गई है। आज्ञा हो तो पूछें ?"

विष्णुपार्षदों ने कहा—"अच्छी बात है, पूछो! भगवान के ही सम्बन्ध में पूछना। इधर-उधर की विषय-वार्ता मत करना।"

यमदूतों ने कहा—"नहीं, महाराज! विषय-वार्ता की तो कोई बात नहीं, पूछना, यही था कि हम, भगवन्नाम के माहात्म्य के विषय में जो आप कहते हैं माने लेते हैं, किन्तु इसने भगवान् का नाम तो लिया नहीं। न भगवान् को पुकारा फिर प्रायश्चित्त कैसे हो गया ? पहिले भगवान् के रूप का ध्यान करता। चित्त को विषयों से हटाता तब शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी नारायण को पुकारता तब तो ठीक भी था। पुकारा, पुत्र को, किन्तु आप कहते हैं, भगवन्नाम कीर्तन किया। यह बात हमारी समझ में नहीं आई।"

विष्णुदूतों ने कहा—"अरे, तुम लोग बड़े जड़ बुद्धि वाले हो। भैया, विधि विधानपूर्वक किया जाता तो और भी उत्तम था, किन्तु भगवान् का नाम तो अमोघ है। इसके मुख से मरते समय नाम निकल गया, इसी बात पर तुम ध्यान क्यों नहीं देते। मरते समय मुख से नाम निकलना कोई सहज काम नहीं है। गुड़ को आँख मूँद के खाओ, अँधेरे में खाओ, उजाले में खाओ, घर में खाओ, बाहर खाओ, नहाकर खाओ, बिना नहाये खाओ मीठा ही लगेगा। इसी प्रकार भगवान् के नाम को मन से लो, वेमन से लो, संकेत से लो, हँसी में लो, गाने के अलाप की पूरा करने में लो, अवहेलना के साथ लो, वह पापों के नाश करने में सभी प्रकार से समर्थ है। इसलिये तुम इसमें शंका मत करो नाम जैसा भी लिया गया भगवान् का नाम ही है।"

यह सुनकर—शौनकजी ने पूछा—"सूतजी ! सकेत म नाम कैसे लिया जाता है ?"

सूतजी बोले—"महाराज ! सकेतमें इसी प्रकार, कि सीताराम, प्रसाद पा लो। अपने राम तो प्रसाद पा चुके। या भगवान् का नाम लेकर सकेत करना। जैसे चोर डाकू थे। जब वे किसी के पास धन देखते, तो एक चिल्लाता—नारायण-नारायण अर्थात् इसके पास नकद नारायण है। दूसरा कहता—"वासुदेव वासुदेव" अर्थात् बॉस की लाठी लाकर इसका पीछा करो, तीसरा कहता 'दामोदर दामोदर।' अर्थात् इसकी कमर में रस्सी बॉध लो। चौथा कहता—'हरि हरि" अर्थात् हरलो हरलो, लूट लो लूट लो।

एक सकेत यह भी होता है, कि मन से तो भगवान् की स्मृति बनाये रखना, किन्तु बाहर नाम मुँह से न निकलने देना। इस विषय में आप एक दृष्टान्त सुनिये। एक बुड्ढी थी, उसके कई लडके थे। वैसे बुढिया अच्छी थी, किन्तु उसमें एक यही खोट था,कि वह भगवान् का कभी नाम नहीं लेती थी। यही नहीं जिस नाम मे भगवान् का नाम हो उसे भी नहीं लेती थी। जैसे किसी का नाम हरिप्रसाद है, तो उससे कहती "पिस्सू" किसी का नाम भगवानदास है तो उससे कहती 'दस्सू' किसी का नाम कृष्ण चन्द्र है, तो चन्दू कहती। इसपर उनके पुत्रों को बडा दु.ख होता, वे सोचते—बुढिया मरकर अवश्य नरक में जायगी, भूलकर भी भगवान् का नाम नहीं लेती। एक बार किसी प्रकार इसके मुख से भगवान का नाम निकल जाय यह नरक से बच जाय। यही सब सोचकर वे उसे भुलावे देते हुए जङ्गल को ले गये। हरिन को दिखाकर बोले—'अम्मा ! यह कौन सा पशु है ?" वे सोचते थे कि हरिन कहेगी, तो हरि का नाम तो

आ ही जायगा। किन्तु बुढिया तो सावधान थी। बोली—"बेटा! यह कुदकू जानवर है। कूदकर चलने से ही ये कुदकू कहलाते हैं।"

लड़कों ने सोचा—"बुढिया बडी घाघ है! आगे चलकर खेत जोतनेवाला हर पडा था। शीघ्रता से एक लडके ने पूछा—"अम्मा यह क्या है ?"

बुढिया बोली—"बेटा! यह धरती पेटफाटा है। धरती का पेट फाडने से इसका ऐसा नाम पडा है।"

लडको ने सोचा—"यह बुढिया ऐसे चक्कर में आने की नहीं है। एक काम करे—अकस्मात् कुएँ में ढकेल दें। आदमी सहसा जब गिर पडता है, तो उसके मुख से स्वतः निकल पडता है 'हा राम'। यही सब सोचकर उसे लिये हुए जा रहे थे। रास्त में एक बिना जलका कुआँ मिला, उसमे एक लडके ने उसे सहसा ढकेल दिया। गिरते ही वह कुएँ में चली गई और वह जोर स कहती है "वाह वाह! वाह वाह।" भगवान् उसकी ऐसी निष्ठा पर ही रीझ गए और उसी समय चतुर्भुज रूप से प्रकट होकर उसे दर्शन दिया।"

एक और भी ऐसा ही कथा है। एक राजा बडे अच्छे थे। किन्तु कभी भगवान् का नाम नहीं लेते थे, इससे उनकी पतिव्रता रानी बड़ी दुखी रहती थी। उसने भाँति-भाँति के उपाय किय. किन्तु राजा के मुख से कभी भगवान् का नाम नहीं निकला। एक दिन रात्रि में राजा सो रहे थे, सहसा उनके मुख से निकला "राम"। रानी सुनते ही बडी प्रसन्न हुई। प्रात.काल उसने बडा उत्सव किया। राजा ने पूछा—"आज किस बात का उत्सव है ?"रानी ने अत्यन्त प्रसन्नता के साथ कहा—' रात्रि में आपके मुख से "राम" निकल गया।" आश्चर्य से राजा ने पूछा—' क्या

मेरे मुँह से निकल गया 'राम' ! बस, राम कहते ही उनके प्राण भी शरीर से निकल गये। यह भी एक प्रकार की नाम निष्ठा ही है, किन्तु नाम माहात्म्य में ऐसी निष्ठा उत्तम नहीं बतायी गयी है। नाम की वही उत्तम निष्ठा है कि मुख से जैसे बने तैसे भगवान् के सुमधुर नामों का उच्चारण होता रहे। कुछ संकेत भी करे तो भगवान् के नाम को लेकर करे। किसी को बुलावे भी भगवान् का नाम लेकर ही बुलावे।

इस पर शौनकजी ने कहा—"सूतजी ! परिहास में भगवान का नाम कैसे लिया जाता है, इसे भी हमें समझाइए।"

यह सुनकर हँसते हुए सूतजी बोले—"महाराज ! यह तो बड़ा मनोहर विषय है, इसे मैं आपको सुन्दर दृष्टान्त देकर समझाऊँगा। आप ध्यान से श्रवण करें।"

छप्पय

कैसे हू हरिनाम लेत फल निश्चय देवै।
चाहें मनते लेइ, भले बेमन के लेवै॥
हरि को लैवें नाम मार्ग में आवै जावै।
कृष्ण कृष्ण सकेत करे सब वस्तु मँगावै॥
मोदक घी बूरो सन्यो, दिन में खाओ राति में।
सब थल मीठो लगैगो, घर खाओ या पाँति म॥

हँसी विनोद में भी भगवन्नाम श्रेयस्कर है

सांकेत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा ।
वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः ॥*
(श्री भा० ६ स्क० २ अ० १४ श्लो०)

छप्पय

भक्त न करें विनोद विषय सम्बन्ध जोरिकें ।
रहें उदासी सदा जगत सम्बन्ध तोरिकें ॥
लै लै हरि के नाम प्रेमतें हँसे हँसावें ।
राम भक्त करि हँसी कृष्णकूँ चोर बतावें ॥
कृष्ण भक्त हँसि राम कूँ, वानर भालूपति कहत ।
बनि वैरागी राम तो, वन वन में रोवत फिरत ॥

संसार में वे पुरुष धन्य हैं, जो हँसी में भगवान् का नाम लेते हैं । मनुष्य जो वस्तु खायगा, उसी की डकार आवेगी । ये विषयी पुरुष रात दिन विषयों में लगे रहते हैं । इसीलिए

* भगवान् के पार्षद यमदूतों से कह रहे हैं—"देखो भाई ! भक्त पुरुष इस बात को जानते हैं, कि भगवान् का नाम चाहे संकेत से लिया गया हो, हँसी विनोद में लिया गया हो, गानके आलाप को पूर्ण करने के लिये लिया गया हो अथवा अवहेलना से भी क्यों न लिया गया हो मनुष्य के समस्त पापों को नष्ट करने वाला ही होता है ।"

हँसी विनोदमे भी वही घृणित बातें करेगे। माता, बहिन, बेटीका सम्बन्ध लगाकर गाली देगे। आँख, कान, मुख, हृदय आदि को लक्ष्य करके घृणित सकेत करेगे, उनके सम्बन्ध मे न कहने योग्य बाते कहेगे, उन्हे इसी मे सुख मिलत है। ऐसे बुरे बुरे विनोद करके वे वायुमडल को दूषित करते रहते हैं। इसके विपरीत साधु सन्तों का विनोद भी भगवान् के सम्बन्ध से ही होता है। हँसी विनोद मे भी वे भगवान् के नाम और गुणों का ही कीर्तन किया करते हैं। क्योंकि उनके तो रोम-रोम मे राम ही रम रहे हैं।

शौनकजी ने पूछा—"हाँ तो सूतजी! बताइये न? परिहास मे—हँसी विनोद मे—भगवान् का नाम कैसे लिया जाता है?"

इसपर सूत जी बोले—"महाराज! आपने, समझ है, देखा हो बहुत से सत ऐसे होते हैं कि उनसे राधेश्याम कहो तो बड़ चिढेगे और मारने दौडेगे। उन्हें देखते ही लडके चिल्लाने लगते हैं—'राधेश्याम राधेश्याम' वे उन्हें डाँटते हैं डपटते हैं मारने दौडते हैं और कहते हैं—"सीताराम कहो सीताराम" लडके और उल्लास के साथ उन्हें छेडते हुए कहते हैं—"बाबाजी राधेश्याम" वे कहने हैं—'नहीं बेटा सीताराम"। तब वे और कहेंगे—"बाबाजी, तुम राधेश्याम राधेश्याम ही कहा करो।

वास्तव मे उनका प्रयोजन राधेश्याम से चिढने मे नहीं है। वे तो किसी न किसी प्रकार भगवान् का नाम लिवाना चाहते हैं। इसी बहाने बच्चों से भगवान् का नाम लिवाते हैं। साधु संत परस्पर मे भी ऐसे ही विनोद करते है। इस विषय मे मुनियो! मैं आप को एक बहुत ही विनोदपूर्ण प्राचीन इतिहास सुनाता हूँ, उसे आप सब दत्तचित्त हो कर श्रवण करें।

दो वैष्णव थे, उनमें एक रामभक्त थे, दूसरे कृष्णभक्त थे। दोनों ही भगवान् के अनन्य उपासक थे, दोनों को ही भगवान् का साक्षात्कार होता था। मार्ग में एक मन के दो आदमी साथ हों, तो हँसते खेलते वातचीत करते रास्ता बड़ी सुगमता से कट जाता है। दोनों ही परस्पर में एक दूसरे से प्यार करते थे। दोनों ने साथ २ यात्रा का विचार किया।

सूतजी कहते हैं—'मुनियो! बहुत से लोग ऐसे जलमुहें होते हैं कि सदा गुम्म सुम्म बने रहते हैं। कोई उनके मुँह को देखते भी डर जाय। न किसी से हँसना न बोलना, सिंहकी तरह गुर्राते रहना। साँप की भाँति फुफकार छोड़ते रहना। ऐसे शुष्क प्रकृति के पुरुष के समीप कोई भी स्वेच्छा से नहीं जाता। उनसे कोई काम हो तो दूसरी बात है। इसके विरुद्ध कुछ ऐसे सरस प्रकृति के पुरुष होते हैं जिनका मुख-मंडल सदा फूल की भाँति खिला ही रहता है। जब बोलेंगे तब मुस्कराकर बोलेंगे। बात बात पर खिल खिला कर हँस पड़ेंगे, ऐसे सरस विनोद का पूर्ण साहित्यिक भद्र भाषा में वार्तालाप करेंगे, कि सुनने वालों का चित्त भरे ही नहीं। सदा इच्छा बनी ही रहे इनके मुख से कुछ और सुनें। बच्चे भी जिनसे बातें करने में प्रसन्न हो जायँ-उन्हें अपनी बराबरी का समझें, युवा भी जिनसे निःसंकोच होकर अपने घर और घरवाली की बातें कह दें। वृद्ध भी जिन्हें अपने बीच में पाकर प्रतिष्ठा का अनुभव करें उसकी बात में छिछोरपन न पावें। ऐसे ही पुरुष सर्वप्रिय होते हैं। ऐसे पुरुषों के समीप कभी विषाद फटकती भी नहीं। वे सदा मग्न रहते हैं। ससार में प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं। यदि ऐसी प्रकृति के भगवद्भक्त हुए तब तो कहना ही क्या है। ये दोनों वैष्णव ऐसे ही थे। बात बात में विनोद करते हुए सुखपूर्वक

अपना समय विताते थे। दोनो परस्पर में हँसी विनोद करते। रामभक्त उठते ही कहते—"जय-जय सीताराम।" वे कहते "जय श्री कृष्ण जय गोपालजी की"। वह कहते अरे यार! तुमने तडके ही तडके किस चोर का नाम ले लिया।" कृष्णभक्त कहते—"बन्दर को तो स्वप्न मे भी देख ले तो वह पूरा दिन अनिष्ट माना जाता है सो तुमने तो उठते ही वानरों के स्वामी वानरनाथ का नाम ले लिया।" इसी प्रकार आपस मे हँसी विनोद होता रहता।

दोनों वृन्दावन में रहते थे। रामभक्त ने कहा—"अरे भाई, यहाँ जङ्गलों में कहाँ रहते हो। न कोई अच्छा वृक्ष न मृदुमही। वृक्ष देखो तो करील, बबूर, छौंकरा हींस आदि सब काँटेदार ही मिलेंगे। पृथ्वी सर्वत्र कँकरीली पथरीली। एक बार हमारे अवध-कुल-मंडन महाराजाधिराज की राजधानी श्री अयोध्यापुरी के दर्शन करो। वहाँ के दर्शन करते ही तुम इन बीहड वन को भूल जाओगे। अहा! वहाँ की कैसी चिकनी मिट्टी है पतितपावनी भगवती सरयू का कैसा निमल नीर है। वहाँ के लोग कितने सभ्य हैं। राज राजेश्वर की राजधानी ही ठहरी। ग्वारियों के गौ चराने के गोकुल या खिरक तो हैं ही नहीं। यहाँ न महल न प्रासाद। सिरकी की झोपडी हैं आज इस वन से उस वन में चले गये, इस जङ्गल से उस जङ्गल में भाग गये। उठाऊ चूल्हे की भाँति। जहाँ जमाया वहीं सेंकी, खाई आगे चल पड़े।"

इसपर कृष्णभक्त बोले—तुम्हारे राजराजेश्वर के पास तो वह जाय जिसे कुछ माँगना जाँचना हो, न्याय आदि कराना हो। मुझे तो अपने गोपालजी से काम है, किन्तु अयोध्याजी

देखने की मेरी भी इच्छा है क्योंकि वहाँ हमारे गोपालजी की ससुराल है, तो हमारी ननसाल ही हुई।"

चिढ़कर राम भक्त ने कहा—"हट कहाँ के, आये ननसाल-वाले। उस ग्वारिये का राजाओं के यहाँ विवाह करना तो पृथक् रहा कोई राजमहल में घुसने भी न देगा।"

इस पर हँस कर कृष्णभक्त ने कहा—"अरे, तुम शास्त्रीय बात को भी झूठ बताते हो। वैसे भैया हम तो जानते नहीं है, हमारे गोपालजी का राधारानी को छोड़कर और किसी राज कन्या से सम्बन्ध है। परन्तु एक दिन हमने भागवत में यह बात सुनी थी कि श्यामसुन्दर ने द्वारिकाधीश का वेष बनाकर कोशलराज की कन्या से विवाह किया था। तुम झूठ मानो तो पंडित से पूछ लो।"

रामभक्त बोले—"अच्छा, भैया! चलो जैसी तुम्हारी भावना हो।"

दोनों हँसते खेलते चल दिये। आगे चलकर नगर के बाहर चौकी पर जहाँ सब वस्तुओं पर नगरसमिति की ओर से यातायात शुल्क लिया जाता है, वहाँ एक बड़ा सा तराजू लटक रहा था। रामभक्त बोले—"हमारे सीतारामजी महाराज भारी हैं।" कृष्णभक्त बोले—"चलो, हटो! कहीं के भारी। तुम्हारे महाराज को रात्रि दिन राज-पाट की चिन्ता, वे कैसे भारी हो सकते हैं। भारी हैं हमारे गोपालजी, जिन्हें न कोई चिन्ता न सोच। आनन्द से गौएँ चराते हैं दूध पीते हैं, डंड पेलते, कुश्ती लड़ते हैं और मस्त होकर पड़े रहते हे। "चिन्ता समाना न शरीरशोषणम्" इसपर रामभक्त बोले—"जाने भी दो यार, क्यों बातें बनाते हो, चोर भी कहीं भारी भरकम

होते हैं। चोरी के माल से भी कभी कोई मोटा हुआ है। मोटे होते हैं राजाधिराज जो पुरुषार्थ करके खाते हैं।" इसपर कृष्णभक्त ने आवेश में आकर कहा—'हमारे व्रज-मण्डल में ही तुम हमारे गोपालजी को दुर्बल बनाते हो आओ तुलालो यह कहकर कूदकर कृष्ण भक्त जय गोपालजी की कहकर तराजू के एक पलडे में बैठ गये। इतने में ही रामभक्तजी भी जय श्रीसीताराम कहकर दूसरे पलडे में बैठ गये। देखते देखते कृष्णभक्त का पलडा ऊपर उठ गया। रामभक्त का पलडा इतना भारी हुआ कि वह पृथ्वी से भी नहीं उठा। राम भक्त ने यह देखकर तालियाँ बजानी आरम्भ कर दी। बस, देख लिया माखन—चोर का बल। बड़े बडबडा रहे थे हमारे ग्वारिया ऐसे हैं वैसे हैं। हम पहिले ही कह रहे थे, राजा राजा ही है, ग्वारिया ग्वारिया ही है। कहाँ वन-वन घूमकर गौएँ चराने वाले, कहाँ छत्र चँवर सहित सुवर्ण सिंहासन पर बैठ कर राज्य करने वाले, आकाश पाताल का अन्तर है।"

इस बात से कृष्णभक्त का तो मुख फक पड गया, बड़े उदास हो गये। मुँह लटकाकर एक ओर जाकर खडे हो गये। इतने में ही काली कमली ओढे लाठी हाथ में लिये उन्हें श्याम सुन्दर दिखाई दिये और आते ही उन्होंने कहा—"क्यों भाई क्यों उदास खड़े हो ?"

प्रेम के कोप में भगवान् को डॉटते हुए भक्त ने कहा—"चलो हटो, हमसे बातें मत करो। तुमने तो आज मेरी लुटिया ही डुबो दी। ऐसे हलके बन गये, जब तृणावर्त पकडकर ले गया था, तब तो पत्थर की भाँति भारी हो गये थे। इतने बड़े गोवर्धन को उँगली पर रख लिया था अब फूल से भी अधिक सुकुमार बन गये !"

गोपालजी ने अत्यन्त प्यार से कहा—"देखो भाई पहिले हमारो बात सुनलो। वे तो सीता और राम दो-दो दुल्हा और दुलहिन। मैं अकला बालक, बताओ दो की बराबरी एक कैसे कर सकता है। तुम समझ लो। मुझे भी तुम दुलहिन के साथ चुलाते तब मेरा ठाठ देखते। मिथला को दुबला पतली अत्यन्त सुकुमारी जो कि पैदल चलने में लड़खड़ाती हैं। वे दूध दही खानेवाली दही से माखन बिलोकर निकालनेवाली अहीरिनि की बराबरी मे भारी हो ही नहीं सकतीं। भूल तुम्हारी है या मेरी ?

यह सुनते ही कृष्णभक्त दौड़कर "जय जय राधेश्याम" कहते हुए फिर पलड़े में जा बैठे और ललकार कर रामभक्त से बोले—"अबके आजाओ तब जानूँ ?"

हँसकर रामभक्त बोले—"भैया, रूँगट मत करो, किसी ने सिखा पढ़ा दिया तुम्हें है, बाजी तो एक ही बार लगती है। पारे की जात एक ही बार तराजू पर चढ़ती है। जय पराजय का निर्णय तो एक बार में ही होता है। अब तो जो हो गया सो हो गया, अब तुम्हारी दाल नहीं गलने की। ऐसे कहकर राम भक्त आगे बढ़े। उनके पीछे-पीछे अपना टाट कमंडलु उठाकर कृष्ण भक्त भी चल पड़े।

नगर को पार करके दोनों हरी-हरी दूबवाले यमुना पुलिन में पहुँचे। मरकत मणि के समान नील वर्ण की दूर्वा तरणि तनूजा के तट पर दूर तक उनके नील वर्ण का जल की द्युति के साथ अत्यन्त ही दीप्तिमती प्रतीत होती थी। उस इतनी सुन्दर दूर्वा को देखकर रामभक्त बोले—'अहा! कैसी सुन्दर हरी हरी घास है। इसमें तो हमारे राजाधिराज श्रीचक्रवर्ती कौशल

किशोर के अश्व चरेंगे। चक्रवर्ती के घोड़े इस हरी हरी दूब को खाकर बड़े ही प्रसन्न होंगे।"

इस पर बिगड़कर कृष्णभक्त ने कहा—"चलो हटो भी आये कहीं के घोड़ा चरानेवाले। घोड़े ने यहाँ पैर भी रखा तो हमारे गोपालजी की गौएँ उनके पेट में अपने पैने पैने सींगें घुसेड़ देंगी। दूसरे की घास को चराने की बात मनमें भी मत सोचना।"

रामभक्त ने ताव में आकर कहा—"देखो जी जबान सम्भाल कर बातें करना, दूसरे की किसकी घास है? हमारे चक्रवर्ती महाराज इस सम्पूर्ण भूमंडल के स्वामी है। सम्पूर्ण नद, नदी, शैल काननपूर्ण वसुन्धरा उनके वे अधीश्वर हैं। समस्त संसार में उनका आधिपत्य है। सबके वे प्रभु हैं। ऐसे ग्वाले न जाने कितने उनके राज्य में रहते हैं! वे इस बन के ही नहीं तीनों लोको के ईश हैं। चाहें जहाँ घोड़े चरवावें उन्हें रोकने का साहस कौन कर सकता है।"

कृष्णभक्त बोले—"देखो बहुत बढ़कर बातें मत करो, रार मत बढ़ाओ, तुम्हारे राजा भले ही तीनों लोक के अधीश्वर हों, किन्तु हमारी मथुरा तो तीन लोक से न्यारी है, यहाँ किसी के घोड़े आये तो उनके पेट में फोड़े हो जायँगे, थोड़े भी आगे न बढ़ सकेंगे। उलटे कोड़े लगेंगे। इधर से उधर दौड़े-दौड़े फिरेंगे।"

अब क्या था रामभक्त जी को क्रोध आगया और बोले—"तुम हमारे घोड़ों मे कोड़े लगानेवाले कौन होते हो? यहाँ तो अवधकुल-भूषण दशरथ-नन्दन चक्रवर्ती कौशल्यानन्द-वर्धन के भारी-भारी मोटे-ताजे बड़े डील डौल के घोड़े चरेंगे घोड़े। उनके सामने गौएँ ऐसे ही भग जायँगी, जैसे वायु के आने से बादल भाग जाते हैं। भेड़ियों के आने से बकरियाँ भाग जाती हैं।"

इस पर कृष्णभक्त आपे से बाहर होगये, और बोले—"देखिये आप अपनी जिह्वा पर ताला लगाइये। इसमें घोड़े फटक भी नहीं सकते। खानेकी बात पृथक् रही घोड़े इस घास की ओर देख भी नहीं सकते।"

अब तो राम भक्त बिगड़ गये और बोले—"देखो, तुम चाहें सें करो चाहें चे करो। घोड़े चरेंगे घोड़े।"

कृष्णभक्त—"घोड़े नहीं चरेंगे, नहीं चरेंगे।"

रामभक्त—"चरेंगे, चरेंगे, अवश्य चरेंगे, एक बार नहीं हजार बार चरेंगे तुम्हें जो करना हो करो।"

अब क्या था कृष्णभक्त ने उठा कर रामभक्त को पटक दिया। रामभक्त कुछ तगड़े थे। उन्होंने ऐसा दाँव पेच घुमाया कि कृष्णभक्त नीचे और रामभक्त ऊपर। उन्हें घोटूँ से रगड़ते हुए बोले—"अब बताओ, घोड़े चरेंगे या गौएँ चरेंगी?"

अब नीचे पड़े-पड़े कृष्णभक्त की सिटिल्ली भूल गयी, हारे को हरि नाम अब और कोई उपाय न देख कर नीचे से ही उन्होंने चिल्लाना आरंभ किया। "गोपाल जी! चलियो, चलियो. देखो सब घास पर अधिकार हुआ जाता है। घोड़े घास को न चरने पावें।"

अपने स्वामी को पुकारते देखकर रामभक्त भी पुकारने लगे—"चलिये! अवधकुलमंडन महाराजाधिराज श्रीरघुकुल तिलक सम्राट, सब घास पर गोपाल जी का अधिकार हुआ जाता है। जल्दी आकर दखल जमाओ।"

इतने में ही क्या देखते हैं, कि गौओं का एक बड़ा भारी झुण्ड चला आ रहा है। बड़ी मोटी-मोटी सुन्दर गौएँ अपने भारी थन के बोझ से इठलाती, बच्चों को साथ लिये मंथर गति

से श्रा रही हैं। उन के पीछे मुकुटमुकुट धारी, वनवारी, मुरली-धारी गोपवेशधारी गोपालजी लाठी लिये चले श्रा रहे हैं। दो वैष्णवों को लडते देखकर वे खड़े हो गये और सरल स्वभाव से बोले—"क्यों भाई, तुम लोग क्यों लड रहे हो ?"

कृष्णभक्त के तो हर्ष का ठिकाना नहीं रहा। सम्मुख अपने हिमायती को देखकर वह तो बाघ की भाँति गर्जने लगा। रामभक्त सिटपिटा गये। शीघ्रता से उन्हें छोड़ कर अपराधी की भाँति खड़े हो गये।

भगवान् ने पूछा—"अरे, तुम लोग वैष्णव हो कर लड़ाई-झगडा क्यों कर रहे हो ?"

ताव में आकर कृष्णभक्त बोले—"लड़ाई-झगड़े की बात ही है महाराज ! ये कहते हैं घास को घोडे चरेंगे, घोड़े चरेंगे। घोड़े कैसे चरेंगे ? घास तो है गौत्रों की, यहाँ घोड़े आवेंगे तो उन की केशी की सी दशा होगी।"

यह सुनकर भगवान् मुस्कराये और बोले—"अरे, भैया ! लडाई झगड़े का क्या काम है। गौत्रों की तो घास ही है। वे चर रही हैं। लडो मत भगवान् का नाम लो।"

इतनी बात चीत में गौएँ आगे बढ़ गयीं। उन्हें घेरने के लिये गोपाल जी आगे दौड़ गये और एक कदमखंडी में अदृश्य हो गये।

इतने में ही वैष्णवों ने क्या देखा चार बड़े-बडे सफेद घोड़े अत्यन्त वेग के साथ दौड़े चले आ रहे हैं। आगे के घोड़े पर किरीट मुकुट धारण किये, धनुष बाण लिये अवध—कुल—तिलक कोशल्या— यशवर्धन रघुकुल चूडामणि श्री राघव विराजमान हैं। पिछले तीन घोड़ों पर लक्ष्मणजी, भरतजी, और शत्रुघ्नजी अंग रक्षक की

भाँति दौड़े चले आ रहे हैं। आते ही महाराजाधिराज चक्रवर्ती श्रीअवधेश ने पूछा—"अरे, भाई क्या बात है ?"

रामभक्त तो रोष में ही थे मुंह फेर लिया और ताव में आकर बोले—"बात है पत्थर। अब क्या बात. है। बात तो जो होनी थो, सो हो गयी। घास परःतो गोपालजी का अधिकार हो गया। अब तो गौएँ ही चरेंगी। जागा सो पाया, सोया सो गया, जो पिछड़ गया, वह रह गया।

श्री राघव ने अत्यन्त स्नेह के स्वर में कहा—"भाई ! बात तो सुनो। बात सुनकर क्रोध करना। देखो, गोपालजी तो सदा वनों में ही घूमते रहते हैं। सुनते ही दौड़े आये। तुमने मुझे सम्राट के नाम से पुकारा। इसलिये पहिले यह बात मंत्री के पास गयी, फिर ७ ड्योढ़ियों में होकर अन्तःपुर मे खबर गयी, वहाँ से घोड़े तैयार करने की आज्ञा भेजी गयी, जब तैयार हुए, तब राजसी वस्त्र पहिनकर हम आये। अब तक गोपालजी ने अधिकार जमा लिया। अब लड़ने की आवश्यकता नहीं। आधे में गौएँ चरेंगी आधे में घोड़े चर लेंगे।"

अब दोनों आगे बढ़े। चलते चलते अयोध्या जी के इस पार पहुँचे। नौका से उस पार जाना था। दोनो नौका में बैठकर उस पार पहुँचे। उस पार कुछ कीचड़ थी। पानी घुटनों तक था। लोग नौका से उतर उतरकर उस पार जल में हिलकर जाने लगे। रामभक्त भी उस पार पहुँच गये। केवल कृष्ण-भक्त नौका में बैठे रह गये। पार पर खड़े होकर रामभक्त हँसने लगे और कहने लगे—"बस, इतने ही बल पर ऐंठते थे घुटनों तक जल मे भी नहीं हिला जाता। कृष्णभक्त बैठे बैठे कह रहे थे, हम १) देंगे २) हमें कोई कंधे पर बिठाकर उस पार पहुँचा दो।" रामभक्त ने कहा—"यहाँ महाराज—

धिराज की राजधानी है, बलवानों का काम है, उतर के आओ।"

कृष्ण- भक्त बोले—"भैया, क्या बतावें अब आकर फँस गये हैं। मैं घुटने जल से नहीं डरता। यमुनाजी होतीं तो मैं बरसात में उस पार हो जाता, किन्तु मैंने सुना है, सरजू जी का जल जहाँ शरीर से स्पर्श हुआ कि सीधा साकत लोक चला जाता है। मुझे साकेत जाना नहीं मुझे तो गोलोक जाना है, इसलिए मैं सरयू जल का स्पर्श नहीं कर सकता।"

यह सुनकर रामभक्त उनके पैरो पड गये। भैया, तुम ही धन्य हो जा तुम्हारी ऐसो निष्ठा है। ऐसो हमारी भी निष्ठा हो जाय। इसी प्रकार श्रीरामजी और श्रीकृष्ण जी को लेकर उन दोनों मे सदा हास परिहास होते रहते थ।

सूतजो कहते हैं—'मुनियो! जा परिहास में भी भगवान् का नाम लेते हैं, उनका कल्याण होता है। भगवान् उनके ऊपर कृपा करते हैं। उन्हें अपनाते हैं जो भजन की पद की पूर्ति में रामा हो, कृष्णा हो लगा देते हैं जो अवहेलना से भी कहत हैं, राम राम कहने से क्या होता है? इतनी देर से कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण की रट लगा रक्खी है। ऐसे कहने वालों का भी उद्धार हो जाता है।"

छप्पय

राग अलापन हेत राम कौ नाम उचारे।
चाहें कहि कहि राम भक्तकूँ ताने मारे॥
राम कहत लड़िजाइँ राम कहि प्रेम जताये।
ते नर कबहूँ भूल नरक की गैल न जाये॥
बिन इच्छाऊ रूई पै, चिनगारी पावक परै।
जरै रूई तौं अवसि हीं, नाम नाश अघ तस करै॥

हरि उच्चारण मात्र सेही पापों को हरते हैं

(३६२)

पतितः स्खलितो भग्नः संदष्टस्त आहतः।
हरिरित्यवशेनाह पुमान्नार्हति यातनाम् ॥*

(श्रीभा० ६ स्क० २ अ० १५ श्लो०)

छप्पय

गिरत परत मग चलत रपटि कीचड़महँ जावै ।
अङ्ग भङ्ग है जाय जीव हिंसक हू सतावै ॥
काटे कोई-आइ-देहमहँ पीड़ा होवै ।
ज्वर को होवै वेग चेतनावूँ नर खोवै ॥
कैसे हूँ नर विवश है, हरि उच्चारन करिहैं ।
नाम प्रतिष्ठा के निमित, अघ तिन के हरि हरिहैं ॥

जिसका अस्तित्व है वह अपना नाम चाहता है, जो नाम न चाहे उसका अस्तित्व नहीं। ज्ञानी की दृष्टि में नाम रूप

---

* विष्णुपार्षद यमदूतों से कह रहे हैं—"देखो, भैया ! जो पुरुष ऊँचे से गिरते समय, फिसलते समय, अङ्ग भङ्ग हो जाने के समय, किसी सर्पादि ने काट लिया हो उसकी पीड़ा के समय, ज्वर आदि के सताप के समय तथा पीटे जाते समय, विवश होकर भी 'हरि' नाम का उच्चारण करता है वह फिर यातना के योग्य नहीं रह जाता उसके सब पाप नष्ट हो जाते हैं !"

मिथ्या है, इसलिये वह कुछ चाहता ही नहीं। मोक्ष को भी ज्ञानी नहीं चाहता। बन्ध हो ता वह मोक्ष चाहे। ज्ञानी की दृष्टि में ब्रह्म के अतिरिक्त कोई अन्य वस्तु है ही नहीं। किन्तु भक्त की दृष्टि मे दो ही वस्तु सत् हैं। भगवान् का नाम और रूप। मुख से भगवान् का नाम उच्चारण होता है, हृदय मे उनकी अनुपम सौंदर्य माधुर्य युक्त मनमोहना रूप माधुरी छाई रहे और ये मन इन्द्रियाँ उनके नाम रूप चिन्तन म निमग्न रहे इसके अतिरिक्त भक्त न मोक्ष चाहता है न वैकुण्ठ। उसे पुनर्जन्म से भी भय नहीं। जन्म मृत्यु से भी डर नहीं। हमारा लाख बार जन्म हो, देवयोनि, मनुष्य योनि में हो, पशु, पक्षी, कीट, पनग, सूकर,कूकर, किसी भी योनि मे चाहे क्यों न हो। कृष्ण नाम रसपान करने को मिले। बस यही पर्याप्त है। मन ही वश मे हो जाय, तो फिर साधनों की ही क्या आवश्यकता रहती है तब तो सब खेल ही समाप्त हो जाता है। भगवान् की ओर तो मन जाता ही नहीं, विषयों की ओर ही दौडता है। बे मन से ही सही नाम का उच्चारण हो जाय। स्वेच्छा से न हो परेच्छा से ही हो जाय, ज्ञान स न हो अज्ञान से ही हो जाय। अँधेरे मे सर्प पडा है, अज्ञान से भी उसपर पैर पड जाय तो काट ही लेगा। क्योकि उसका स्वभाव है, इसी प्रकार हरि नाम का स्वभाव है पापो को हरना। तो फिर कैसे भी उसका सेवन क्यों न करो, वह अपने स्वभाव को छोड नहीं सकता क्योकि स्वभाव को दुस्त्यज बताया है।

श्री शुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! यमदूतो को डॉटते हुए भगवान् नारायण के प्रिय पार्षद कहने लगे—अरे, तुम लोग इस नारायण परायण महात्मा को बाधकर नरक में ले जाना चाहते हो? छीः छीः बडे दुःख की बात है। जब धर्म-

राज के शासन मे भी ऐसा अधर्म होने लगेगा, तब तो ससार से धर्म का लोप ही हो जायगा।"

इस पर यमदूतो ने कहा—"अच्छी बात है महाराज मान लीजिये इसने कैसे भी सही पुत्र के ही मिस से सही भगवान् के नाम का उच्चारण किया। इसे हम मानते हैं। किन्तु इसने तो स्वच्छ चित्त से सावधान होकर नाम नहीं लिया। विवश होकर यातना के कष्ट से अचेतनावस्था में लिया। महाराज! नियम ऐसा है, कि अचेतनावस्था मे जो हस्ताक्षर करता है, या अपनी चल- अचल सम्पत्ति को किसी को देता है, तो वह दान नियम विरुद्ध समझा जाता है। इसलिये इसका लिया हुआ नाम भी नियम विरुद्ध माना जाय।"

विष्णुपार्षदों ने कहा—"भैया, यह बात लौकिक सम्पत्ति के सम्बन्ध मे सत्य हो भी सकती है, किन्तु नाम के सम्बन्ध में यह बात सत्य नहीं। नाम के विषय में तो यह है कि किसी भी भाँति मुख से नाम निकल जाय। अपने वश में होकर नाम का याद कोई भाग्यवान् ही करते हैं, नहीं तो जहाँ तक वश चलता है, मनुष्य विषय सम्बन्धी सामग्रियो को एकत्रित करने में ही प्रयत्न करता है। अवश होकर भी जिसके मुख से भगवान् का नाम निकल जाय, उसे बडा भाग्यशाली समझना चाहिये। पूरा नाम उच्चारण न भी हो अधूरा ही हो जाय, शुद्ध उच्चारण न हो अशुद्ध ही हो जाय, उसी मे कल्याण है।"

एक यवन शौच क्रिया कर रहा था। इतने मे ही जगली सूकर भगवान् उसे डराने के लिये उस पर कृपा करने दौडे आये। यदि वामन अवतार मे होते तो नहा धो लेते तब आते। सूकर भगवान् को तो शुचि अशुचि का कुछ विचार ही नहीं।

पीछे से एक हुड्डमारी। वह डर कर विवश होकर आर्तस्वर में पुकारने लगा 'हराम हराम हराम हराम' यम दूतों ने क्या समझा यह हा राम ! हा राम ! कह रहा है, झट वहाँ से भाग गये और उसे भगवान् के पार्षद अपने लोक को ले गये। यह प्रभाव नाम का है।"

यह सुन कर शौनकजी ने पूछा—"महाभाग ! अंत समय में नाम भी तो उसी का स्मरण होता है जिसने पहिले से ज्ञान पूर्वक याद किया हो। अजामिल "नारायण नारायण" नित्य सर्वदा रटता तो रहता था, किन्तु पुत्र के नाम से रटता था। इसीलिये अंत इसे नारायण नाम याद आ गया। औरों को तो मरते समय नाम स्मरण नहीं हो सकता।"

इस पर सूत जी बोले—"हाँ भगवन् ! यह तो है ही मरते समय तो अभ्यास वाली वस्तु ही स्मरण आवेगी। इसीलिये तो संत स्पष्ट उपदेश नहीं देते। रुचि के अनुसार ही साधक को लगाते हैं। एक कवि थे, वे अपनी स्त्री में अत्यन्त ही अनुरक्त थे। बिना स्त्री के देखे उन्हें कल ही नहीं पड़ती थी। वे उसे क्षण भर भी न देखें तो व्याकुल हो जायँ। अपने सत्संगी साले की प्रेरणा से एक सन्त के यहाँ जाने लगे। जायँ और तनिक देर बैठे और चले आवें। सहसा संत की उनपर कृपा दृष्टि हो गयी, उनकी ओर चित्त चला गया पूछा—भैया, तुम तनिक देर भी नहीं बैठते कुछ सत्संग तो किया करो।"

उसने कहा—"महाराज ! बहू के देव दुर्लभ दर्शन ही मेरा सब से बड़ा सत्संग है, मैं अपने इन सम्बन्धी के संकोच से यहाँ चला आता हूँ, किन्तु मुझे यहाँ चैन नहीं पड़ता। हृदय व्याकुल हो जाता है। मैं उसे एक क्षण भी छोड़ना नहीं चाहता।"

इस पर संत ने हँसकर पूछा—"उसके बाल कैसे हैं?

वे तो कवि ही ठहरे, लगे बालों का वर्णन करने—"अजी महाराज क्या बतावें बाल ऐसे हैं, जैसे काले रेशम के घुँघराले लच्छे, बड़े प्यारे, बड़े सटकारे, बड़े मुलायम, बड़े चिकने, बड़े मनोहर, बड़े सुखद स्पर्शी" इस प्रकार बहुत वर्णन कर गये।

संत ने कहा—"अच्छी बात है कल इस पर एक सुन्दर सी कविता लिख लाना अब जाओ।"

कवि महाशय चले। बालों के ध्यान में तन्मय हो गये। एक पेड़ के नीचे बैठकर कविता करने लगे। दूसरे दिन आकर संत को दिखाया। संत को स्त्री के मल रूप बालों से क्या प्रेम? किन्तु उसे सीधे रास्ते पर लाना चाहते थे। बोले—"वाह वाह! तुम तो भैया बड़ी सुन्दर कविता करते हो, क्या कहना। तनिक पढ़कर तो सुनाओ भैया।"

सूतजी कहते हैं—"महाराज! वैसे अपनी प्रशंसा सभी को अच्छी लगती है, किन्तु कवि तो योग्य व्यक्ति के द्वारा अपनी कविता की प्रशंसा सुनकर आनन्द विभोर हो जाता है। इसी न्याय से वे कवि बड़े प्रसन्न हुये। अब तो वे संत नित्य ही उन्हें उनकी स्त्री के किसी अङ्ग प्रत्यग के ऊपर कविता करने को कहते और वे आश्रम में ही बैठ कर उसके उस अङ्ग का ध्यान करते हुए कविता करते। अब उन्हें जाने की शीघ्रता नहीं होती थी, यही चिन्ता रहती थी, कैसे सुन्दर से सुन्दर कविता बने। एक दिन सन्त ने कहा—"तुम २ दिन तक भली प्रकार ध्यान करके उसके नखशिख का सुन्दर से सुन्दर वर्णन लिखो" कवि ने संत की आज्ञा शिरोधार्य की। दो दिन तक वह स्त्री के अङ्ग-प्रत्यङ्ग का ध्यान करता रहा।

जब वह ध्यान में मग्न रहता, तब संत उसकी देह को हिलाते हुए कहते—"अरे, तुम घर नहीं जाते कितनी देर हो गयी है।" वह कहता—"भगवन्! आप मुझे ध्यान करने दें बड़ा आनन्द आता है। ध्यान में उसके रूपका चिंतन करने से जितना सुख होता है, उतना उसे प्रत्यक्ष देखने में आनन्द नहीं आता। अब मुझे ध्यान करने दो' संत ने जब देखा इसका स्त्री के अंगों में चित्त एकाग्र हो गया है, तब कहा—"अरे! क्या हाड माँसका ध्यान कर रहे हो। भगवान् के उस दिव्य रूप का ध्यान करो जिसके आगे ये रूप तुच्छ है, क्षण भंगुर है, अनित्य है।" संत के इस उपदेश का उन पर प्रभाव पड़ा और वह एक महान् पारमार्थिक कवि और उच्च महात्मा हो गये।

सो भगवन्! बिना जाने ध्यान करने से जब ध्यान का अभ्यास हो गया, तो अनजान में नाम स्मरण करते रहने से भी नाम का अभ्यास हो जायगा। यह तो रूप के विषय में दृष्टान्त हुआ। इसी प्रकार नाम के विषय में आपकी आज्ञा हो तो एक दृष्टान्त सुनाऊँ?

शौनकजी ने कहा—"सूतजी! आप अवश्य सुनाइये, दृष्टान्तों से विषय बड़ी सरलता से समझा जाता है। स्पष्ट हो जाता है। बुद्धि अपने आप ग्रहण कर लेती है।"

यह सुनकर सूतजी बोले—"महाराज! विदर्भ देश में एक बड़ी ही रूपवती वेश्या थी। उसके रूप की सर्वत्र ख्याति थी। कितने धनिकों को उसने निर्धन बनाया कितने चरित्रवानों को उसने चरित्र भ्रष्ट किया, कितने युवकों के बलवीर्य का उसने नाश कर दिया। गरीब तो उसके दर्शन भी नहीं कर पाते थे। यह राजवेश्या थी।

एक दिन वह अपनी सजी सजाई अटारी पर बैठी थी। नीचे सडक पर उसने देखा, एक व्याधा बहुत से तोताओं को लिये हुए जा रहा है। उन छोटे छोटे सुग्गो में एक सुग्गा बडा था। वह दूब की भाँति हरा था। उसकी चोंच कुरूं के फल की भाँति लाल थी। गले मे लाल और नीले रङ्ग की स्वाभाविक कण्ठी थी। वह मनुष्य की वाणी स्पष्ट बोलता था।

वेश्या को उस सुग्गे को देखकर बडा आश्चर्य हुआ उसने उस व्याधे को ऊपर बुलाया और उससे उस तोते को लेने के लिये मोल-भाव करने लगी। मुनियो! प्राणी कैसा भी क्रूर हो, निन्दित हो, हिंसक हो, सभी किसी न किसी से प्यार करना चाहते हैं। सभी के भीतर प्रेम करने की एक स्वाभाविक स्पृहा होती है। छोटे-छोटे बच्चे भी आपस में मित्रता जोडते हैं, किन्तु थोडी देर में फिर कुट्टी कर देते हैं। क्योंकि मित्रता इस मत्र से की जाती है "कूआ में चबैना यार मागे वही दैना।" किसी बच्चे को माँ ने सुन्दर मिठाई दी। उसके मित्र ने माँगी। उसकी जिह्वा लपलपा रही थी, वह मिठाई को देना नहीं चाहता। उसने मित्रता के विरुद्ध आचरण किया। यार के माँगने पर भी वस्तु नहीं दी, तो वह कुट्टी कर देता है—"जीभ मरोड़ूँ, दाढ को तोड़ूँ, ऐसे यार से कभी न बोलूँ। यारई कुट्, कुट्, कुट्।" बस, मित्रता छूट गयी। बडे लोग समझते हैं यह तो बच्चों का खेल है, किन्तु हम भी तो नित्य इसी प्रकार अपने स्वार्थों पर आघात होने से अपने मित्रों से कुट्टी कर देते हैं। बाल्यकाल से मित्रता करते-करते—अनेकों से यारई जोरते—और कुट्टी करते मनुष्य अन्त में इस निष्कर्ष पर पहुँचता है, कि ससार में सभी स्वारथ के मीत

हैं।" फिर भी मित्रता किये बिना मानता नहीं। स्त्री पहिले एक से मित्रता करती है, राजद्वार में जाकर वही मे लिखवाकर एक से विवाह करती है, उससे पटरी नहीं बैठती, उसे परित्याग करके दूसरे से जोड़ा जोड़कर वही मे नाम चढ़वाती है। उसे भी निर्धन देखकर विपत्ति में फँसा समझकर छोड़कर तीसरे से सट्टपट्ट जोड़ती है, उससे खट्टपट्ट हुई तो भट्टपट्ट चौथे का पल्ला पकड़ती है। फिर भी आँख के अंधे उससे मित्रता जोड़ते हैं प्यार का ढोंग रचते हैं, यह नहीं समझते कि जब यह पिछलों की नहीं हुई तो हमारी क्या होगी। यही दशा पुरुषों की है। स्त्री के ऊपर लट्टू होगा तो उसे हृदयेश्वरी अन्तःकरण की सम्राज्ञी, प्राणप्रिये न जाने क्या-क्या कहेगा। जहाँ किसी दूसरे से मन मिला कि दूध की मक्खी की भाँति उसे निकाल कर फेंक दिया। ये ही बनावटी झूठे प्रेम की बातें उससे बकने लगा। जो स्वार्थी है, कामी है, विषयासक्त है, वह कभी किसी का मित्र हो ही नहीं सकता, उसकी मित्रता तो काम से है स्वार्थ से है। यही सब अनुभव करते-करते युवावस्था बीत जाने पर मनुष्य किसी से प्रेम नहीं करता। वास्तव में कोई प्रेम करने योग्य है ही नहीं, जो क्षणभंगुर विषयों से प्रेम करता है उसकी मित्रता के दिन चल सकती है, उसके साथ किया हुआ प्यार के दिन स्थाई रह सकता है। प्रेम करने योग्य या तो वृक्ष हैं, जो न बोलते हैं, न गाली गलौज करते हैं और न तुम्हारे किसी काम का विरोध करते हैं। [illegible] सड़ी-गली गंदी खाद डाल दो, तो वे फल फूल देंगे। [illegible] तुम्हारे भोजन को पका देंगे। जलाकर भस्म कर दो [illegible] खाद बनेंगे। सारांश उनमें स्वार्थ की [illegible] की भावना है, इसीलिये तो साधु [illegible]

आश्रमों में नाना भाँति के पत्र, पुष्प और फलो वाले अनेकों वृक्ष होते हैं। या प्रेम करने योग्य हैं, सरल पशु पक्षी जो खिलाने वालों के पीछे ही पीछे घूमते रहते हैं। इसीलिये साधुसन्तों के यहाँ पालतू पशु रहते हैं गृहस्थी भी भाँति-भाँति के पशु पक्षियों का पालते हैं। बहुत से तो अपने कुत्तों से इतना प्यार करते हैं, कि पुत्र की भाँति साथ सुलाते है, साथ खिलाते हैं विविध वस्तुओं से न्हिलाते हैं और साथ ही सवारी पर बराबर बिठाते हैं। या प्रेम करने याग्य निस्वार्थ सन्त हैं, जिन्हें कोई संसारी स्वार्थ नहीं, जिनके सभी काम परमार्थ ही के निमित्त होते है, परोपकार से प्रेरित होकर हा काज करते हैं।

यह वेश्या नित्य बड़े से बड़े धनिक युवकों को देखती। सुन्दर से सुन्दर सुकुमार राजकुमारो से उसका काम पड़ता। वे उसे धन देते, वस्त्र देते, रत्न जटित सुवर्ण के आभूषण देते भोग देते, शैया और परिधान देते साथ ही हृदय देने का भी अभिनय करते, किन्तु वह सब समझती था, जब मैं किसी को हृदय नहीं दे चुकी हूँ, तो मुझे कौन हृदय समर्पित करेगा। ये सब तो काम का क्रीड़ायें हैं स्वार्थ की बातें हैं। वह हँस जाती, फिर भी किसी से प्यार करना चाहती थी, खुल कर बिना बनावट को बातें करना चाहती थी। आत्मीय पुरुष का भाँति उससे हँसना खेलना लड़ना, बिगड़ना और खेल करना चाहती थी। उसने उस सुन्दर सुग्गे को मुँह माँगा दाम देकर उस व्याधे से ले लिया। सुवर्ण के पिंजड़े मे रख लिया। प्रतीत होता था, वह किसी भक्त का तोता था। किसी कारण से उड़ आया होगा, इसका ऐसा सुन्दर स्वरूप और सुरीली स्पष्ट मधुर वाणी सुनकर व्याधे ने इसे पकड़ लिया। आज इस सुग्गे का इतना अधिक मूल्य पाकर फूला नहीं समाया, उसको

प्रसन्नता का ठिकाना नहीं रहा। आनन्द के कारण उसके पैर पृथ्वी पर नहीं पडते थे। वह अत्यन्त आह्लादित होता हुआ अपने घर चला गया।

इधर वेश्या ने उसे अपने हाथों से दूध पिलाया, फल रखे, चने के दाने रखे। दूध पीकर तोते ने अपने स्वाभावानुसार पढना आरम्भ किया—

चित्र कूट के घाट पै, भई संतनि की भीर।
तुलसिदास चदन घिसैं, तिलक देत रघुवीर॥

पढो तो मिट्ठू सीताराम सीताराम। वेश्या बडी प्रसन्न हुई। बोली—'हाँ मिट्ठू कहो सीताराम'। वह कहने लगा—'बाईजी, राम राम वेश्या को बडी प्रसन्नता हुई। उसके घर जो भी युवक आता उसे देखकर सुग्गा कहता—'राम राम जी राम राम, सब उसकी स्पष्ट वाणी सुनकर चकित रह जाते और हँसी मे कहते—'राम राम मिट्ठू जी! राम राम' प्रातः उठते ही वेश्या को देखते ही तोता कहता 'बाईजी राम राम।' वह मचलकर प्यार के साथ दुलार के स्वर मे कहती—'राम राम भैया! राम राम।' तेरी हजारी उम्र हो, राम राम। तू सदा रटता रहे राम राम। तेरा मुँह घी शक्कर से भरे राम राम। तू सदा मीठी वाणी से बोलता रहे राम राम।"

कभी-कभी सुग्गा सो जाता तो वेश्या जाकर कहती—"सो गये क्या सुग्गा राजा। राम राम नहीं कहते, राम, राम। कहो राम राम।"

सूतजी कहते हैं—"भगवन्! उस वेश्या की इच्छा राम भजन की नहीं थी। उसे ज्ञान भी नहीं था, कि मैं उन राम के

नाम को ले रही हूँ, जो समस्त पापों को पलभर में मेंट सकते हैं। अपने को निंदित पाप कर्म में निरत वेश्या मानती थी। सुग्गे के प्रसङ्ग से अनिच्छा पूर्वक अज्ञान में केवल विनोदार्थ वह राम-राम रटती रहती थी। वह तो अज्ञान होकर कहती थी, क्योंकि तमोगुण के करण मूढ़ा बनी हुई थी, किन्तु चैतन्य धन नाम ता प्रमाद नहीं कर सकता था। उसे अपना फल अवश्य ही प्रकट करना था। शनैः शनैः नाम के प्रभाव से इसका अन्तःकरण शुद्ध होने लगा। उसके पाप कटने लगे। जब मनुष्य के पाप कटने लगते हैं, तभी संत समागम सत्पुरुषों के सत्सङ्ग का सुअवसर प्राप्त होता है।

सहसा एक दिन उसे बड़े जोरों का ज्वर आ गया। कई दिन अचेत रही। ज्वर में बेसुधि बनी अन्ड-बन्ड बकती रही। उसका शरीर पीला पड़ गया, सब सौन्दर्य नष्ट हो गया। मुख से दुर्गन्ध आने लगी। सब अङ्ग प्रत्यङ्ग शिथिल पड़ गये, बिना खाये आँखे पथरा गई। मुख मलिन हो गया, जो कामी उसके शरीर को स्पर्श करके अपना सवस्व निछावर करते थे, उन्हें अब इसे देखने मे घृणा होती। कोई पास भी न फटकता। धन लोलुप २-४ नौकर इस प्रतीक्षा में रह गये कि किसी प्रकार यह शीघ्र से शीघ्र मरे, तो हम धन सम्पत्ति लेकर चम्पत हों। उसकी अचेतनावस्था में बहुत-सी धन सम्पत्ति तो समीप वालों ने उड़ा ही दी।

अब उसका अन्त समय आ गया। त्रिदोप ने उसे घेर लिया। सूतजी कहते हैं—"मुनियो! मृत्यु के समय मनुष्य को अपने सब पाप याद आते हैं। जिस धन सम्पत्ति को झूठ-सच बोलकर बड़ी ममता से अत्यन्त लोभ से इकट्ठी की

थी, उसे छोड़ते समय अत्यंत दुःख होता है। पापों की स्मृति से हृदय थर-थर काँपने लगता है। भय के कारण रोंगटे खड़े हो जाते हैं, उस भयभीत दशा में ही यमदूतों की काली-काली डरावनी भयङ्कर विकराल मूर्तियाँ दिखायी देने लगती हैं। उन्हें देखते ही पापियों का मल-मूत्र निकल पड़ता है। उस वेश्या को भी अपने पाप याद आये, पाप तो उसने प्रत्यक्ष जान बूझकर किये थे, किन्तु भगवन्नाम उच्चारण रूपी महान् पुण्य तो उसने हँसी-हँसी में विनोद के लिये मन प्रसन्न करने के निमित्त तोते को पढ़ाने के निमित्त से किया था। उसका तो उसे ध्यान ही नहीं था, कि यह भी मेरे द्वारा एक महान् कार्य हो रहा है। उसे भले ही स्मरण न हो, किन्तु नामी के ही समान चैतन्य सर्वसमर्थ नाम का प्रभाव तो व्यर्थ जाने का नहीं। इतने में ही कोई वैष्णव सन्त उधर से आ निकले। वेश्या को बुरी प्रकार से बिलबिलाते तड़पते देखकर उन्हें दया आ गई। वे कई बार उधर से निकलते थे और उन्होंने उस वेश्या को सुग्गे को रामनाम पढ़ाते उसके साथ रामराम कहते देखा भी था। आज उसकी ऐसी दुर्गति को देखकर दयालु सन्त का हृदय भर आया। वे दौड़कर वेश्या की अटारी पर चढ़ गये और उसे सान्त्वना देते हुए बोले—"देवि! तुम सुग्गे को क्या पढ़ाती थीं। इतना कहकर उन्होंने सुग्गे को उसके सामने रख दिया। सुग्गे को देखते ही वेश्या ने कहा—"राम राम राम राम" इतना कहना था कि सुग्गा भी राम राम कहने लगा। तत्काल वेश्या के भी प्राण निकल गये। [illegible] हो गई। देखो! राम नाम के प्रभाव से तर गयी। विष्णु के पार्षद उसे दिव्य विमान पर बिठाकर वैकुण्ठ लोक को ले गये।

सूतजी कहते हैं—[illegible]

से भी भगवान् का नाम लिया जाय, तो वह कल्याणकारी ही है। ऐसा विष्णुपार्षदों ने यमदूतों से कहा था। यह प्रसङ्ग बड़ा रोचक है। आगे भी मैं इस विषय में सुनाऊँगा।

छप्पय

निज शुककूँ करि प्यार नित्य गनिका पुचकारे।
मन विनोद के निमित राम को नाम उचारे॥
स्वयं कहै हरि नाम और सुग ते कहवावे।
शुक मुख ते अति मधुर नाम सुनि हिय हर्षावे॥
मरन समय अघ सुमिरिकें, वेश्या अति व्याकुल भई।
सत चितायो अत हरि, नाम कह्यो हरि पुर गई॥

———

नामोच्चारण का फल अमोघ है

(३६३)

अज्ञानादथवा ज्ञानादुत्तमश्लोकनाम यत् ।
संकीर्तितमघं पुंसो दहेदेधो यथानलः ॥
यथागदं वीर्यतममुपयुक्तं यदृच्छया ।
अजानतोऽप्यात्मगुणं कुर्यान्मन्त्रोऽप्युदाहृतः ॥*

(श्रीभा० ६ स्क० २ अ० १९ श्लो०)

छप्पय

हरि कीर्तन वा श्रवन करें श्रद्धा बिनु प्रानी ।
निश्चय तेऊ तरें वेद सन्तनकी बानी ॥
राम विमुख लखि सन्त जीवपै यदि दुरि जावें ।
बिनु इच्छा क लेहिँ नाम तेऊ तरि जावें ॥
कृष्ण नाम मन्त्र रोग की, है अव्यर्थ औषध सुगम ।
चाहे जस सेवन करो, निश्चय देगी पद परम ॥

भूल से भी बीज उर्वरा भूमि में पड़ जायगा तो जम ही जावेगा। भूल से भी कोई विष खा लेगा तो मर ही जावेगा। भूल से भी पैर में काँटा गड़ जाय, तो पीड़ा देगा ही। भूल से

* विष्णु पार्षद यमदूतों से कह रहे हैं—"देखो, भैया ! अज्ञान से किया गया हो अथवा ज्ञान से उत्तम श्लोक भगवान् के नाम का कीर्तन पुरुष के पापों को उसी प्रकार भस्म कर डालता है, जैसे अग्नि ईंधन

भी बच्चा अग्नि को छूले तो जल ही जायगा। क्योंकि जो जिसका गुण है, उसका प्रभाव उसपर पड़ेगा ही। इसी प्रकार भूलकर भी जिसकी जिह्वा से अन्त समय भगवान् के नाम का उच्चारण हो जायगा, वह परम पद का अधिकारी बन ही जायगा। इसमें कोई सन्देह नहीं।"

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! जब विष्णुपार्षदों ने यमदूतों को गुण जाने बिना स्वेच्छा से भूल में स्वभावानुसार पूर्व अभ्यासानुसार अन्त समय मे नामोच्चारण होने से सद्-गति की बात कही, तो इसपर यमदूतों ने कहा—"महाराज! हमने यह मान लिया, कि नाम मे अत्यन्त प्रभाव है, हम यह भी मानते हैं, नाम कैसे भी ज्ञान से अज्ञान से लिया जाय गुणकारी होगा ही, किन्तु अजामिल नाम का इतना भारी माहात्म्य तो जानता नहीं था। वह तो अपने पापो को ही स्मरण कर रहा था। अन्त में मनुष्य की जैसी भावना होती है, वैसा ही फल मिलता है। इसका भावना तो अब तक यही बनी है, कि मैं चोर पापी हूँ। फिर आप इसे हमें क्यो नहीं ले जाने देते।"

इसपर विष्णुपार्षदों ने कहा—"भाई! देखो, भावना की बात यहाँ हम नहीं कर रहे हैं। यहाँ तो हम नारायण नाम का माहात्म्य बता रहे हैं। मुख से कैसे भी नाम का उच्चारण हो जाय, एक ही भगवान् के नाम में ऐसी शक्ति है, कि वह बड़े से बड़े पापो का तत्क्षण नाश कर देता है। भगवान् के नाम में, कितनी शक्ति है, उसके उच्चारण का क्या फल है, इसे शेष जी भी

को भस्म कर देती है। जिस प्रकार बलवती औषध को उसका गुण बिना जाने भी स्वेच्छा से सेवन कर लेने पर लाभ करती है उसी प्रकार हरिनाम महामन्त्र उच्चारण करने पर अपना फल देगा ही।

अपने श्रीमुख से उच्चारण करने में समर्थ नहीं।"

इसपर शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! यह फल स्वेच्छा-परेच्छा, भाव-कुभाव कैसे भी नाम लेने से होता है, या आर्त होकर प्रेम से नाम पुकारने मे होता है?"

यह सुनकर सूतजी बोले—"महाभाग! मैं पीछे बार-बार तो इस बात का उत्तर दे आया हूँ। प्रेम-पूर्वक श्रद्धा से आर्त होकर मानोच्चारण किया जाय, तो उसके फल के सम्बन्ध मे तो कहना ही क्या? अजी, परेच्छा से बलपूर्वक हठपूर्वक कैसे भी नामोच्चारण हो जाय, वही कल्याणकारी है। उच्चारण न भी हो, केवल सुन ही लिया जाय, सो भी स्वेच्छा से नहीं, कोई हठपूर्वक सुना दे, उसका ही इतना फल है, कि ब्रह्मादिक देवता भी उनके फल को नहीं बता सकते। इस विषय मे एक बड़ी प्राचीन रोचक कहानी है, उसे आप ध्यानपूर्वक सुनें। उसके सुनने से आपको नाम श्रवण का महत्व मालूम पड़ जायगा।"

किसी एक नगर मे दो भाई रहते थे। छोटा भाई धर्मात्मा था, साधुसेवी था महात्मो मे श्रद्धा रखता था। दूसरा जो उससे बड़ा भाई था, वह भगवान् नाम से भगवत् कथाओं से विमुख रहता था। महात्माओं का द्वेषी था। जहाँ भी कथापुराण हो, भगवान् नाम कीर्तन हो वहाँ कभी नहीं जाता था। घर में कथाकीर्तन की बात सुनी कि वह कानों में रूई लगाकर कोठरी मे छिप जाता कि मेरे कानो में ये व्यर्थ की बाते न पड़ जायें उसके इस आचरण से उसका छोटा भाई मन ही मन अत्यन्त दुखी रहता कि मेरे भाई के कौन से पाप उदय हुए हैं जो वह भगवान् से इतना विमुख है। वह मन ही मन भगवान् से उसके

कल्याण के निमित्त प्रार्थना करता। मुनियो! जिसके कल्याण के लिये भक्त इच्छा करता है, उसका कल्याण अवश्य हो जाता है, इसमें कोई संदेह नहीं, क्योंकि भक्त के हृदय में सदा भगवान् विराजते हैं, उनकी समस्त इच्छाओं की वे स्वयं पूर्ति करते हैं इसलिये कि वे वाँछा-कल्पतरु हैं।

संयोग की बात एक दिन कोई एक बड़े अच्छे सन्त उस नगर में आ गये। सन्त शरीर से भी हृष्ट पुष्ट थे, हृदय भी उनका पवित्र था और परमार्थ पथ में भी वे निष्णात थे। और भी १०।२० सन्त उनके साथ थे, गाजे-बाजे के साथ भगवान् के नामों का कीर्तन करते, नगर भर मे उनकी प्रशंसा फैल गई। वह साधु सेवी भाई भी सन्तो की सेवा मे पहुँचा। सबकी चरण वन्दना करके वह महन्तजी के गद्दी के समीप बैठ गया। उन कृपालु सन्त ने इधर-उधर की शिष्टाचार की बातें पूछकर उनके सङ्कोच को छुड़ाने के अनन्तर उनके मन की बात पूछी।

भक्त ने कहा—"भगवन्! आप तो अंतर्यामी हैं। सब कुछ जानते हैं, मेरी इच्छा है सन्तो की चरण धूलि मेरे घर मे पड़े, और मेरे भाई का भी किसी प्रकार उद्धार हो।"

सन्त ने कहा—"तुम अपने भाई को यहाँ ले आना।"

उसने निराशा के स्वर में कहा—"भगवन्! वे आते ही तो: मैं अब तक क्यों ठहरता। वे तो सन्तों के नाम से कोसों दूर भागते हैं। घर मे भी आप· पधारेंगे, तो वे सबसे एकान्त की ऊपरी कोठरी मे जाकर छिप जायँगे, जहाँ शब्द भी सुनायी न पड़े।"

यह सुनकर सन्त कुछ विचलित से हुए। वे सोचने लगे। रोगी यदि सम्मुख आवे औषधि खावे तो उसके रोग का निदान

हो, औषधि की व्यवस्था हो, रोग दूर हो, किन्तु जो वैद्य से तथा औषधि से दूर भागता है, उस से सम्पर्क भी रखना नहीं चाहता, ऐसे रोगी के रोग के लिए क्या किया जाय। कुछ देर वे ऐसी ही बातें सोचते रहे। अन्त में उन्हें एक युक्ति सूझी और उस भक्त से बोले—"तुम जाओ, कल तुम्हारे यहाँ सब संतों का महाप्रसाद बनेगा, दोपहर के समय बुलाने आ जाना।"

यह सुनकर भक्त को बडी प्रसन्नता हुई। कल संत मेरे घर को अपनी पदधूलि से पावन बनावेंगे। मेरा जीवन सफल हो जायगा। इन्हीं विचारों में उसे रात्रि भर नींद भी नहीं आयी। भोर में उठ कर उसने सब व्यवस्था की, दूध लाया और सब सामान एकत्रित किया। बडी शुद्धता-पवित्रता से भगवान् का प्रसाद बनाया गया। दोपहर के समय जब सब सामान तैयार हो गया, तो वह संतों को बुलाने स्वयं गया। सभी संत लम्बे-लम्बे तिलक छापे लगाये बाजे गाजे के साथ हरि नाम संकीतन करते हुए चले।

भक्त के भाई को पता चल गया था, कि आज ये बेकार में गृहस्थियों के ऊपर भार बने सडे-मुसडे साधु मेरे घरके सामान का अपव्यय करने आवेंगे फिर भी उसने अपने भाई से कुछ कहा नहीं। सोचा—"अपने को क्या? जहाँ आँख मींच ली समझ लिया अपने लिए कोई है ही नहीं। अपने तो इन व्यर्थ की बातों से दूर ही रहेंगे।" यही सोच कर वह उदासीन रहा। दूर से जब उसने बाजों का शब्द सुना, तभी कानों में रुई डाल कर कोठरी बन्द करके तान दुपट्टा सो गया।

संत बडी धूम धाम से पधारे। उन्होंने आकर पहिले भगवान् का भोग लगाया। भोग के सुन्दर पद गाये। नाम

किया, पातर परसी जाने लगी। सब संत नारायण नाम का कीर्तन करने लगे। बहुत से आस-पास के दर्शनार्थी नर-नारी भी एकत्रित हो गये थे। प्रसाद परस जाने पर 'हरी हर हुई' सब ने पेट भर कर भगवान् का प्रसाद बड़े प्रेम से पाया। भक्त बार-बार आग्रह कर करके परोसने लगे। संत सिंह की भाँति दहाड़-दहाड़ कर भगवान् का नाम ले लेकर मना करने लगे। "महाराज तनिक खीर और लेलो" तब दोनो हाथों को पत्तल पर रोप कर सिर हिलाते हुए कहते—"सीताराम सीताराम, सीताराम, सीताराम।" इस प्रकार बड़े प्रेम से पंक्ति हुई। भक्त ने सब के हाथ प्रक्षालन कराये, पाद प्रक्षालन किये, मुख शुद्धि के लिये लवँग, इलायची, सौंफ, पुंगी फल आदि पदार्थ दिये। सब संत जैसे आये थे, वैसे ही गाजे बाजे के साथ लौट गये। किन्तु वे उस मंडली के महन्त संत नहीं गये। उन्होंने भक्त से पूछा, 'तुम्हारा वह भगवत् विमुख साधु द्रोही भाई कहाँ है ?'

भक्त ने कहा—"महाराज वह तो ऊपर छिपा हुआसो रहा है।"

यह सुनकर कृपालु संत ऊपर जाकर छिप गये। उसके भाई ने जब देखा, ये साधु हा हा हू हू मचा कर पेट पूजा करके चले गये, तब वह अपनी कोठरी के बाहर निकला। वह ज्यों ही निकला, सन्त ने कस कर उसका हाथ पकड़ लिया। अब क्या था, संत ने जिसका कस कर हाथ पकड़ लिया, उसका उद्धार हो गया। साधु को देखते ही वह उसी प्रकार चमका, जैसे चमकना बैल छाते को देख कर चमकता है। बड़ी-बड़ी जटाओं और लम्बे लम्बे तिलकों को देखकर वह आग बबूला हो गया। अपना सम्पूर्ण बल लगाकर हाथ छुड़ाते हुए उसने कहा—"छोड़ दो, छोड़ दो, पाखंडी कहीं के, भाग जाओ ? मेरे सामने से। खबरदार मेरे शरीर को फिर छुआ तो। अभी मेरा हाथ छोड़ दो।"

किन्तु सन्त जिसे पकड़ लेते हैं। उसे छोड़ना जानते ही नहीं उन्होंने दृढ़ता के स्वर में कहा—"एक बार भगवान् का नाम ले लो।"

इतना सुनते ही वह कानों की रुई को और भी अधिक ठूँसने लगा, अब तो साधु बाबा ने अपना रूप दिखाया। मल्ल-विद्या में महन्तजी बड़े निपुण थे, अवध के अखाडों के खेले हुये थे। उन्होंने दाँव चलाकर ज्यों ही एक झपट्टा मारा, कि बच्चू जी चारों कोना चित्त हो गये। अब तो सन्त उनकी छाती पर चढ गये। कानों की रुई निकालकर जोर से कहा—"राम !"

इतना कहकर कह दिया—"देखो, कोई भी तुम्हे इसके बदले मे कुछ माँगने को कहें, तो तुम कह देना, जो इसके बदले योग्य वस्तु हो, वही दे दो। मैं तो इसका मूल्य जानता नहीं।"

इतना कहा और सन्त झट से चल दिये। उसने ये सब बातें सुनी तो सही। किन्तु सुनकर भी अनसुनी कर दी, उनकी ओर ध्यान भी नहीं दिया। वह चाहे ध्यान न दे, किन्तु सन्तों के मुख से जो अमोघ भगवन्नाम उसके कानों द्वारा हृदय मे गया है वह तो व्यर्थ होने का नहीं। वह तो अपना फल दिखावेगा ही।

सन्त के चले जाने पर कुछ दिनों के पश्चात् उसकी मृत्यु का समय आया। अपने सब पाप उसे याद आये। यमदूत आकर गर्जन-तर्जन करने लगे, डराने-धमकाने लगे। निर्दयता पूर्वक उसे पकडकर यम पाँस में बाँधकर यमराज के समीप ले गये। जब यमदूतों ने उसे यमराज के आगे उपस्थित किया, तो उन्होंने उस पापी की ओर देखकर एक दूत से कहा—"तनिक मुनीम चित्रगुप्तजी को बुलाना।" दूत दौड़कर मुनीमजी के

गया। अपने स्वामी का आह्वान सुनकर हड़बड़ाते हुए यमर लचकाते, बहियों को बगल में दबाते, कानों में लेखनी लगाये चित्र गुप्तजी आकर उपस्थित हुए। प्रणाम करके हाथ जोड़कर यमराज के सम्मुख खड़े हो गये। यमराज ने देखते ही कहा—"मुनीम जी! इसका खाता खोलकर मुझे बताइये, इसने कौन कौन सा पाप पुण्य किया है।"

इतना सुनना था, कि मुनीमजी वहाँ बहियों को पटक कर शीघ्र-शीघ्र पन्ने पलटने लगे। वह पुरुष तो उन कायस्थ देवता की मनोहर मूरत को ही देखकर डर गया था। इतने में ही उन्होंने अपनी लोह की लेखनी भी हाथ में ले ली। लोहे की तलवार तो कुछ ही लोगों के सिरों को काटने में समर्थ होती है, किन्तु मुनीमजी की लेखनी की बात मत पूछिये। जिस के नाम पर चल गई फिर तो बस, गोविन्दाय नमोनमः ही हो जाता है। पन्ना पलटते-पलटते एक स्थान पर चित्रगुप्त जी रुक गये, और बोले—'धर्मावतार इसका पुण्य वाला खाना तो सफाचट है। जीवन भर इसने पेट पाला है, पाप कमाया है। साधु द्रोह किया है, नास्तिक से बढ़कर और कौन पापी हो सकता है। इसे नरकों के भयङ्कर कुण्डों में फिकवा दो। वहाँ वह अपने किये पापों का असंख्यों वर्षों तक भोग करता रहेगा।"

यमराज ने यह सुनकर कहा—"अच्छी बात है, भेज दो उसे नरकों में, किन्तु देख लो, कोई पुण्य भी किया हो तो उसे नीचे टीप लो। बात यह है, जो बहुत पुण्यात्मा होते हैं, और उनसे कोई एक आध पाप बन जाता है, तो हम लोग पहिले उसके पाप को ही भुगा देते हैं, जिससे फिर वह निष्पाप होकर चिरकाल तक पुण्य ही भोगता रहे। इसी प्रकार जिसके पाप तो बहुत होते हैं, कोई छोटा मोटा पुण्य भी भूल से बन जाता हैं, तो पहिले उसके उस

पुण्य का फल भुगाकर नरक में भेजते हैं, जिससे सुख के पश्चात् दुख भोगने में उसे और भी अधिक कष्ट का अनुभव हो।"

यह सुनकर चित्रगुप्त जी ने अपनी सूक्ष्म दृष्टि को और भी सूक्ष्म करके, बही को ध्यानपूर्वक देखते हुए कहा—"हाँ, हाँ! धर्मावतार एक सन्त की कृपा से अनिच्छापूर्वक इससे एक महान् पुण्य भी बन गया है, इसके कानों में एक बार सन्त के मुख से भगवन्नाम पड गया है। उसके लिये आप जो उचित समझे सुख की व्यवस्था कर दे।"

यह सुनकर यमराज जी के तो कान खडे हुए। वे बड़े प्रेम से उस पापी पुरुष से बोले—"भैया! तुमने एक बार भगवन्नाम का अनिच्छा से श्रवण किया, इसके निमित्त तुम जो भी चाहो माँग लो।"

कहावत है बडो की बातें विपत्ति में ही स्मरण आती हैं, तभी उनका महत्व भी मालूम पडता है। उस पापी को सन्त की बात याद आ गई। उसने नम्रता के साथ कहा—"धर्मावतार! मैं तो मूर्ख हूँ कुछ जानता बूझता नहीं। मैंने तो स्वेच्छा से भगवन्नाम श्रवण किया भी नहीं। कृपालु सन्त ने बलपूर्वक मेरी छाती पर चढ़कर नाम सुना दिया है। अब इसका जो भी फल होता हो, वह आप दे दीजिये।"

यह सुनकर यमराज उसे फुसलाते हुये अत्यन्त प्रेमके स्वर में बोले—"न भैया! इच्छा से सुनो या अनिच्छा से भगवन्नाम श्रवण का फल तो होता ही है। पुण्य तो हुआ ही, उसके बदलेमें तुम जो भी माँगना चाहो माँग लो। सङ्कोच की तो इसमें कोई बात ही नहीं।"

एक साथ यमराज के व्यवहार में ऐसा परिवर्तन देखकर

उस पुरुप को बडा आश्चर्य हुआ, साहस हुआ, आशा भी हुई। विश्वास भी बढने लगा कि मैं अवश्य ही इस विपत्ति से छूट जाऊँगा। उसने साहस के साथ कहा—"महाराज ! मुझसे आप क्या पूछते हैं ? धर्माधर्म का निर्णय करने वाले तो आप ही हैं। किस पाप का किस पुण्य का क्या फल होगा इसका न्याय आपके अतिरिक्त कौन कर सकता है।

यदि अनिच्छा से भगवन्नाम श्रवण करने का कुछ फल होता हो, तो मुझे मिलना चाहिये।"

यह सुनकर धर्मराज जी कुछ सकपका गये पास में बैठे अपने मन्त्री चित्रगुप्तजी से बोले—"कहो, मन्त्रीजी इसका क्या फल है ?"

मन्त्रीजी ने दोनो हाथ हिलाते हुए कहा—"धर्मावतार ! इसका फल बताना मेरी शक्ति के बाहर की बात है। यह मेरा काम भी नहीं है महाराज मैं तो केवल पाप पुण्यों का लेखा भर रख सकता हूँ। इसके द्वारा यह पाप हुआ, यह पुण्य हुआ इतना बता देना ही मेरा काम है। इन पाप पुण्यों के लिये कोन कोन से सुख दुःख दिये जायँ, इसका निर्णय आप ही कर सकते हैं।"

यह सुनकर विवशता के स्वर में यमराज जी ने कहा—"भैया ! सची बात तो यह है, कि इसका फल मैं भी नहीं जानता। सम्भव है स्वर्गाधिप इन्द्र जानते होंगे क्योंकि वे सब देवताओं के राजा हैं। चलो, वहीं चलके इसका निर्णय करावें। जब तक मैं लौटकर न आऊँ तब तक ये अर्यम्णा पितर मेरे स्थान पर काम करेंगे। स्थानापन्न यमराज रहेंगे।"

अब क्या था बात की बात में विमान सज गया। उस पापी को प्रेमपूर्वक प्रतिष्ठा के साथ समीप बिठाकर यमराज स्वर्ग-

लोक गये। देवराज की बड़ी भारी सभा लग रही थी। बड़े-बड़े ऋषि, महर्षि, देवता, यक्ष, किन्नर गुह्य, तीर्थ, नद, नदी, वृक्षों आदि के अधिष्ठातृ देव बैठे थे। यमराज को आया हुआ देखकर सबने उनका स्वागत किया। बैठने को आसन दिये। देवराज के बराबर वे दोनों सुन्दर आसन पर बैठ गये। पूजा सत्कार कुशल प्रश्न हो जाने के अनन्तर यमराज ने स्वयं ही कहना आरम्भ किया—"ये जो मेरी बगल में पुण्यात्मा महानुभाव विराजमान हैं, इन्हीं को लेकर मेरे सम्मुख एक धर्म सङ्कट उपस्थित हो गया है। उसी का निर्णय कराने आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ। यहाँ हम देवों के आचार्य भगवान् बृहस्पतिजी भी विराजमान हैं और भी बड़े-बड़े ऋषि महर्षि देवता आदि विराजमान हैं। आप सब मिलकर निर्णय करें, कि सन्त के मुख से एक बार भगवन्नाम-श्रवण करने के उपलक्ष में इन्हें कौन सा पद देना चाहिये। किस लोक में भेजना चाहिये।"

यमराज के प्रश्न को सुनते ही चारों ओर काना फूँसी होने लगी। कोई कुछ कहता कोई कुछ। इसपर गम्भीर होकर देव गुरु बृहस्पतिजी बोले—"भैया! सच्ची बात तो यह है, हम लोग इसका निर्णय नहीं कर सकते। हमें स्वयं पता नहीं इस महान् पुण्य के प्रति फल स्वरूप इन्हें क्या दिया जाय। ये जो माँगे वही दे दो।"

इसपर यमराज ने कहा—"महाराज! यदि ये कुछ माँग ही लेते, तब तो झगड़े वाली कोई बात ही नहीं थी। ये महानुभाव तो कहते हैं, इसका जो भी उचित प्रतिफल हो वह मुझे मिलना चाहिये।"

इसपर देवराज इन्द्र ने कहा—"तब भैया! इसका निर्णय तो

उस पुरुष को वड़ा आश्चर्य हुआ, साहस हुआ, आशा भी हुई। विश्वास भी बढ़ने लगा कि मैं अवश्य ही इस विपत्ति से छूट जाऊँगा। उसने साहस के साथ कहा—"महाराज! मुझसे आप क्या पूछते हैं? धर्माधर्म का निर्णय करने वाले तो आप ही हैं। किस पाप का किस पुण्य का क्या फल होगा इसका न्याय आपके अतिरिक्त कौन कर सकता है।

यदि अनिच्छा से भगवन्नाम श्रवण करने का कुछ फल होता हो, तो मुझे मिलना चाहिये।"

यह सुनकर धर्मराज जी कुछ सकपका गये पास में बैठे अपने मन्त्री चित्रगुप्तजी से बोले—"कहो, मन्त्रीजी इसका क्या फल है?"

मन्त्रीजी ने दोनों हाथ हिलाते हुए कहा—"धर्मावतार! इसका फल बताना मेरी शक्ति के बाहर की बात है। यह मेरा काम भी नहीं है महाराज मैं तो केवल पाप पुण्यों का लेखा भर रख सकता हूँ। इसके द्वारा यह पाप हुआ, वह पुण्य हुआ इतना बता देना ही मेरा काम है। इन पाप पुण्यों के लिये कौन कौन से सुख दुखः दिये जायँ, इसका निर्णय आप ही कर सकते हैं।"

यह सुनकर विवशता के स्वर में यमराज जी ने कहा—"भैया! सच्ची बात तो यह है, कि इसका फल मैं भी नहीं जानता। सम्भव है स्वर्गाधिप इन्द्र जानते होंगे क्योंकि वे सब देवताओं के राजा हैं। चलो, वहीं चलके इसका निर्णय करावें। जब तक मैं लौटकर न आऊँ तब तक ये अर्यम्णा पितर मेरे स्थान पर काम करेंगे। स्थानापन्न यमराज रहेंगे।"

अब क्या था बात की बात में विमान सज गया। उस पापी को प्रेमपूर्वक प्रतिष्ठा के साथ समीप बिठाकर यमराज स्वर्ग-

लोक गये। देवराज की बड़ी भारी सभा लग रही थी। बड़े-बड़े ऋषि, महर्षि, देवता, यक्ष, किन्नर, गुह्य, तीर्थ, नद, नदी, वृक्षों आदि के अधिष्ठातृ देव बैठे थे। यमराज को आया हुआ देखकर सबने उनका स्वागत किया। बैठने को आसन दिये। देवराज के बराबर वे दोनों सुन्दर आसन पर बैठ गये। पूजा सत्कार कुशल प्रश्न हो जाने के अनन्तर यमराज ने स्वयं ही कहना आरम्भ किया—"ये जो मेरी बगल में पुण्यात्मा महानुभाव विराजमान हैं, इन्हीं को लेकर मेरे सम्मुख एक धर्म संकट उपस्थित हो गया है। उसी का निर्णय कराने आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ। यहाँ हम देवों के आचार्य भगवान् बृहस्पतिजी भी विराजमान हैं और भी बड़े-बड़े ऋषि महर्षि देवता आदि विराजमान हैं। आप सब मिलकर निर्णय करें, कि सन्त के मुख से एक बार भगवन्नाम-श्रवण करने के उपलक्ष में इन्हें कौन सा पद देना चाहिये। किस लोक में भेजना चाहिये।"

यमराज के प्रश्न को सुनते ही चारों ओर काना फूँसी होने लगी। कोई कुछ कहता कोई कुछ। इसपर गम्भीर होकर देव गुरु बृहस्पतिजी बोले—"भैया! सच्ची बात तो यह है, हम लोग इसका निर्णय नहीं कर सकते। हमें स्वयं पता नहीं इस महान् पुण्य के प्रति फल स्वरूप इन्हें क्या दिया जाय। ये जो माँगें वही दे दो।"

इसपर यमराज ने कहा—"महाराज! यदि ये कुछ माँग ही लेते, तब तो झगड़े वाली कोई बात ही नहीं थी। ये महानुभाव तो कहते हैं, इसका जो भी उचित प्रतिफल हो वह मुझे मिलना चाहिये।"

इसपर देवराज इन्द्र ने कहा—"तब भैया! इसका निर्णय तो

लोक पितामह ब्रह्माजी ही कर सकते हैं। वे ही धर्म प्रवर्तक हैं, वेद गर्भ हैं, धर्माधर्म का यथार्थ निर्णय करने में वे ही समर्थ हैं। चलो, हम सब लोग भी इसका निर्णय सुनने के लिए चलें।"

बस, फिर क्या पूछना, विमानों की पंक्तियाँ यमराज के विमान के पीछे चलीं। ब्रह्मलोक में पहुँचकर सब लोगों ने लोकपितामह की सभा में प्रवेश किया। सब ने प्रजापति के पाद-पद्मों में प्रणाम किया। कुशल प्रश्न के अनन्तर यमराज जी ने अपना अभिप्राय आद्यन्त कह सुनाया। एक बार सन्त कृपा से अनिच्छापूर्वक इन्होंने भगवन्नाम सुना है, स्वयं कुछ माँगते नहीं कहते हैं, इसका जो यथार्थ प्रतिफल हो वह न्यायतः मिलना चाहिये।"

सब सुनकर ब्रह्माजी गम्भीरता के साथ बोले—"भैया! देखो सच्ची बात तो यह है, मैं हूँ प्रवृत्ति मार्ग का पक्षपाती। सृ रचना धर्म अधर्म का निर्णय करना यह मेरा काम है। भगवन्नाम के वर्णन तो सभी धर्मों से परे हैं। भगवान् के नाम महत्व भला मैं क्या जान सकता हूँ। हाँ, शिवजी निरन्तर राम राम रटते हैं। जब उन्होंने इसका कुछ महत्व समझा होगा, तो ये राम-राम रटते हैं। चलो, हम भी चलते हैं, उन्हीं से च कर पूछा जाय।"

सब मिलकर कैलाश पर्वत पर पहुँचे। शिवजी ने सब सु और बोले—देखो, भाई! नाम का यथार्थ महात्म्य उस उच्चारण के यथार्थ फल के सिवाय नामी श्रीहरि के अ कौन जान सकता है। अतः हम सब मिलकर वैकुण्ठलोक भगवान लक्ष्मीनारायण की सेवा में चलें। वे ही इसका नि करेंगे।"

"अब यह समुद्र की लहरों के समान बढ़ती हुई विमानों की भीड़ वैकुण्ठलोक की ओर चली। भगवान के सम्मुख भी यह अभियोग उपस्थित किया गया. इस पर भगवान कुछ न बोले। उस पुरुष को बुलाकर अपनी गोद में बिठाते हुए बोले—"देवताओ! तुम अपने अपने लोकों को सुखपूर्वक लौट जाओ।"

इस पर हाथ जोड़कर यमराज ने पूछा—'महाराज! जिस कार्य के लिये आये हैं उसका कुछ निर्णय हो जाना चाहिये। इसे हम किस लोक में ले जायें।"

यह सुनकर हँसते हुए भगवान् बोले— भैया! निर्णय हो तो गया। अब कहाँ इसे ले जाओगे। मेरे धाम में तो जो आ गया, फिर वह लौटकर जाता ही नहीं, अपने नाम लेने और सुनने वाले को मैं भी कुछ देने में समर्थ नहीं। केवल उसे अपना लेता हूँ, अपनी गोदी में बिठा लेता हूँ।"

यह सुनते ही सभी देव एक स्वर से कहने लगे—"भक्तवत्सल भगवान् की जय। भगवान और उनके प्यारे भक्तों की जय।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! भगवन्नाम श्रवण की ऐसी महिमा सुनकर सभी देवता प्रसन्न होते हुए अपने अपने लोकों को लौट आये।"

विष्णुपार्षद यमदूतों से कह रहे हैं—"दूतो! जब अनिच्छापूर्वक भगवन्नाम श्रवण करने का इतना माहात्म्य है, तो इस अजामिल ने तो आर्तस्वर में स्पष्ट 'नारायण" नाम का कीर्तन किया है। इसे तुम छोड़ दो, इसे मत ले जाओ।"

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! इस प्रकार जब भगवान् के प्रिय पार्षदों ने विशुद्ध भागवत धर्म का निर्णय किया। नारायण

नाम की महिमा बतायी, तो यम के दूतों ने डरकर उस अजामिल को पाश से छोड़ दिया। उसे प्रणाम किया और अपना-सा मुँह लेकर जैसे आये थे वैसे ही रिक्तहस्त यमलोक को लौट गये।

इधर यमदूतों के पाश से मुक्त हो जाने पर अजामिल को चेतना हुई। सम्मुख उसने दिव्यरूप धारी भगवान् के प्रिय पार्षदों के दर्शन किये। उनके दर्शनों से निर्भय और सावधान होकर अजामिल मारे प्रेम के फूला नहीं समाता था। उसने बड़ी श्रद्धाभक्ति के सहित उठकर भगवान् के पार्षदों को प्रणाम किया और कृतज्ञता प्रकट करते हुए ज्यों ही उसने कुछ कहने का विचार किया, त्योंही वे सबके सब पार्षद उसी प्रकार अन्तर्धान हो गये, जैसे स्वप्न की सब वस्तुएँ निद्रा खुल जाने पर विलीन हो जाती है। विष्णु पार्षदों को सम्मुख न देखकर अजामिल को बड़ा दुःख हुआ। वह अपने पापों को स्मरण करके अत्यन्त पश्चात्ताप करने लगा। राजन्! यथार्थ पश्चात्ताप से बढ़कर दूसरा कोई भी प्रायश्चित्त नहीं। अजामिल ने कैसा हृदयस्पर्शी पश्चात्ताप किया इसे मैं आगे सुनाऊँगा।"

छप्पय

सन्त अनुग्रह करी विमुखकूँ नाम सुनायो।
मर्यो अधम जब दूत तुरत यम पुर पहुँचायो॥
नाम श्रवण को पुण्य सुन्यो सब सुर घबराये।
ब्रह्मलोक शिव लोक फेरि सब हरिपुर आये॥
सुनि सब हरिने अक्रमहँ, प्रेम सहितताकूँ लयो।
भवबन्धनते मुक्त है, प्रभु पार्षद वह बनि गयो॥

अजामिल का पश्चात्ताप

(३६४)

अजामिलोऽप्यथाकर्ण्य दूतानां यमकृष्णयोः ।
धर्मं भागवतं शुद्धं त्रैविद्यं च गुणाश्रयम् ॥
भक्तिमान्भगवत्याशु माहात्म्यश्रवणाद्धरेः ।
अनुतापो महानासीत्स्मरतोऽशुभमात्मनः ॥❀

(श्रीभा० ६ स्क० २ अ० २४, २५ श्लो०)

छप्पय

सुनिकें यमके दूत नाम महिमा हुलसाये ।
पास मुक्त सो करयो दौरि सयमनी आये ॥
इत मुनि शुभ सम्वाद नाम की महिमा जानी ।
निज पापनिकूँ सुमिरि अजामिल मन अति ग्लानी ॥
करि पापनिकूँ यादि जो, पछितावे दुख अति करे ।
तिनके अघ सन्ताप प्रभु, जानि हृदय मल-सन हरें ॥

देहधारी ऐसा कोई भी प्राणी नहीं, जिससे कभी पाप न हुआ हो। पाप हो जाना आश्चर्य की बात नहीं है। पाप न होना ही आश्चर्य है। साधारण जीवों को देह की प्राप्ति पुण्य

❀ श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! अजामिलने भी जब विष्णु-दूतों के मुख से निर्गुण भागवत धर्म तथा यमदूतों के मुख से वेदत्रयी द्वारा कथित गुणाश्रयधर्म सुना, इसी प्रसङ्ग में भगवन्नाम माहात्म्य

पाप दोनों ही से होती है। पुण्यों में प्रवृत्ति तो कम जीवों की होती है, अधिकांश जीवों की प्रवृत्ति पापों में ही होती है। पाप हो जाने पर मन में पीछे यह ध्यान आ जाय कि हाय मुझसे यह पाप हुआ, यह बुरा हुआ। पाप हो जाने के पश्चात् जो आन्तरिक ताप होता है उसे पश्चात्ताप कहते हैं। पाप चाहे शुष्क (अनाजन में किया हुआ) हो या आर्द्र (जान में किया हुआ) दोनों ही तीव्र ताप से जल जाते हैं। अतः पापों का सर्वोत्कृष्ट प्रायश्चित्त है पश्चात्ताप। जिसे पाप हो जाने के अनन्तर हार्दिक पश्चात्ताप हो गया मानों उसके सब पाप भस्म हो गये, जल गये।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! अचेतनावस्था में पड़ा पड़ा अजामिल विष्णुदूत और यमदूतों के सम्वादको श्रवण कर रहा था। ऐसा प्रतीत होता है, भगवान की अनुग्रह ही पार्षदों का रूप रखकर उसे यमदूतों की पाश से छुड़ाने को तथा उसे सदुपदेश देने को प्रादुर्भूत हुई थी। अनजान मे लिये हुये भगवन्नाम का ऐसा माहात्म्य है, इस बात को सुनकर अजामिल के हर्ष का ठिकाना नहीं रहा। वह बड़ी सावधानी से विष्णु-पार्षदों के मुख से निकले हुए नारायण नाम के माहात्म्य को सुनता रहा। जब भगवद्दूतों की आज्ञा से यम के दूत उसे पाश से विमुक्त करके यमलोक चले गये, तब अजामिल कृतज्ञता के भार से अवनत हुआ। पार्षदों के पादपद्मों मे प्रणत होने को ज्यों ही प्रस्तुत हुआ त्यों ही प्रभुपार्षद भी अन्तर्धान हो गये। उनके अन्तर्धान हो जाने के अनन्तर अजामिल को अपने पूर्वकृत पापों

श्रवण करके उसकी श्रीहरि में भक्ति उत्पन्न हुई। अपने पूर्वकृत पापों को स्मरण करके उसे बड़ा ही पश्चात्ताप हुआ।"

पर महान् अनुताप हुआ। वह अत्यन्त पश्चात्ताप प्रकट करता हुआ अपने आपको धिक्कारने लगा—"हाय! मैं बडा नीच हूँ, मैं वेदपाठी ब्राह्मण होकर भी अपनी इन्द्रियोंको वश मे नहीं कर सका। मेरे लिये यह कितनी लज्जा की बात है। मेरे वेदाध्ययन, यम, नियम व्रत, अग्नि सुश्रूषा, गुरु सेवा आदि सभी शुभ कर्म व्यर्थ ही हुए, अपने मन को न रोक सका। कहाँ मैं कुलीन ब्राह्मण और कहाँ यह व्यभिचारणी वेश्या?

मेरे पत्नी नहीं थी, सो भी बात नहीं। सुन्दरी पतिप्राणा सतीसाध्वी, युवती, कुलवती धर्मपत्नी मेरे घर मे थी, फिर भी मैंने दासी के गर्भ से पुत्रों को पैदा करके अपने ब्राह्मणपन को खो दिया। मैं सत्पुरुषों के सम्मुख कैसे मुख दिखा सकता हूँ। मुझ नीच, निन्दित, कुल-कलंक पापात्मा, द्विजाधम को बार बार धिक्कार है। देखो, मेरी कैसी बुद्धि मारी गयी। अमृत के घड़े को छोडकर मैंने विष के घड़े को अपनाया। रत्नों की माला छोडकर चमकीले कांचकी माला पर मन डिगाया। सुस्वादु परम भगवत् प्रसाद को छोड़कर दुर्गन्धित सड़े कुत्ते के मांस पर चित्त चलाया। अल्पवयस्का पतिव्रता पत्नी का परित्याग करके सुरापी कुलटा वेश्या का सहवास किया।

पृथ्वीने रो रो कर कहा है—"मै सब के भार को सह सकती हूँ। सबको अपने ऊपर धारण कर सकती हूँ, किन्तु कृतघ्नको धारण करने की मुझमें सामर्थ्य नहीं है। मुझसे बड़ा कृतघ्नी इस संसार में और कौन होगा। जिन माता पिता का एकमात्र मैं ही आश्रय था जिन्होंने अपने सम्पूर्ण प्रेम से मेरा पालन पोषण किया। मेरे मल मूत्रको धोया, स्वयं गीले में सोये, मुझे सूखे मे सुलाया। वे मुझसे आशा करते थे, कि वृद्धा वस्था में मैं उनकी सेवा करूँगा, किन्तु मैं ऐसा नीच निकला

कि उनके समस्त धनका भी अपहरण किया और निर्धन बनाकर उनका परित्याग भी कर दिया। मेरे पापों की गणना नहीं, उनकी कोई सीमा नहीं। घोर नरकों के अतिरिक्त मेरी कोई अन्य गति नहीं। धर्मघाती पापी पुरुषों को विविध प्रकार की भयंकर यम यातनायें सहनी ही पडती हैं, किन्तु अभी अभी जो मैंने एक अद्भुत अभूतपूर्व दिव्य दृश्य देखा था। वह मेरे मन का भ्रम है, या स्वप्न है। मैं सोया तो नहीं था, जाग्रत में ही ये सब बातें हुई हैं। किन्तु जिन्होंने मुझे भयंकर बन्धन से छुडाया वे सौम्य मूर्ति चतुर्भुज पुरुष कहाँ चले गये? जिन्होंने मुझे कस कर पाश में बाँध लिया था, वे कौन थे। वे तो बड़े भयंकर थे, बलवान् थे। मुझे कितना कष्ट दे रहे थे। सहसा ये जो अति सुन्दर चार सिद्ध गण यहाँ आ गये, उनका दर्शन कैसा अपूर्व था। ऐसे दिव्य दर्शन मुझ जैसे पापी को तो हो नहीं सकते। प्रतीत होता है, मेरे पूर्वजन्मों के किन्हीं महान् पुण्यों का फल उदय हो गया है, जिससे मरणकाल मे इनके मुझे दर्शन हो सके। नहीं तो इस जन्म में तो मैंने पाप ही पाप कमाया है, अपने ब्राह्मणत्व को गँवाया है, व्यभिचार मे मन लगाया है पर धन पर चित्त चलाया है, निरपराध प्राणियों को सताया है। यदि मेरे पूर्व जन्म के महान् पुण्य उदय न हुए होते तो मरण समय मेरी जिह्वासे भगवन्नाम निकल ही नहीं सकता। कार्य को देखकर ही कारण का अनुमान लगाया जाता है। अवश होकर भी जब मेरे मुख से अन्तमें भगवन्नाम निकल गया तो अवश्य ही मेरा अब कल्याण हो जायगा। अब मुझे नरक में जाकर यम यातनायें सहन न करनी पड़ेंगी।"

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! तुम यह शंका मत करना, कि अजामिल अज्ञानी था। पहिले उसने सब वेद शास्त्रों को

पढ़ा था। उसे इस बात का भी पता था कि नारायण हरि का नाम है। वह यह भी जानता था, कि नारायण नाम मृत्यु के समय में जिसके मुख से निकल जाता है, उसकी मुक्ति हो जाती है। किन्तु उस समय वह वेश्या के मोह में ऐसा आसक्त हो गया था, कि उसका यह सभी ज्ञान भूल गया था। अन्त में उसका सम्पूर्ण मोह सबसे छोटे पुत्र नारायण में चला गया। भगवान् तो कृपा के सागर हैं, उन्होंने सोचा—"कोई मेरी पाषाण की मूर्ति में प्रेम करता है, कोई काष्ठ, धातु, चित्रमयी मनोमयी मणि-मयी मूर्ति में अपना मन फँसाता है। इसकी आसक्ति हाड-मांस की बनी मेरी बाल गोपाल रूप नारायणी मूर्ति में है। इस मिस से निरन्तर मेरे नाम का कीतन करता रहता है। अतः नारायण नाम ने उसके समस्त अशुभों को नाश कर दिया, उसे पावन बना दिया।"

जब विष्णुपार्षदों ने यमदूतों के सम्मुख इसे भगवन्ना-मोच्चारण का माहात्म्य सुनाया तब तो इसकी पूर्व स्मृति जाग्रत हो उठी। तब यह सोचने लगा—"देखो कितने आश्चर्य की बात है, कहाँ मैं महा कपटी, पापी, निर्लज्ज तथा ब्रह्मतेज को नष्ट करने वाला नीच द्विजाधम और कहाँ परम पावन, जगत्मङ्गल, सर्व अशुभघ्न श्री भगवान् नारायण नाम ?" इसमें भगवत् कृपा के अतिरिक्त दूसरा कोई कारण ही नहीं है। मैं अपने पुरुषार्थ से अन्त समय अचेतनावस्था में भगवान् के मङ्गलमय नामों का उच्चारण कभी कर ही नहीं सकता था। अच्छी बात है जब भगवान् ने मेरे ऊपर कृपा ही की है, तब अब आगे से ऐसा प्रमाद कभी भूलकर भी न करूँगा। अब मैं भगवत् कृपा से अपने को पाप पङ्क से पृथक् करूँगा। इस निरयगर्त से अपने आपको निकालूँगा। और श्रेयमार्ग के लिये प्रयत्नशील रहूँगा।"

श्री शुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! इस प्रकार भाँति भाँति से अपने आपको धिकारता हुआ वह अजामिल अपने पापों के लिये हृदय से पश्चात्ताप करने लगा।"

छप्पय

बार बार धिक्कार अजामिल देवै मनकूँ।
हाय! पापमहँ फँस्यो भुलायो ब्राह्मनपनकूँ॥
तजे पिता अरु मातु दुःख जिन सहि सुख दीन्हों।
तजी सती निज नारि मोह वेश्याते कीन्हों॥
करे पाप अति भयानक, करूँ न ऐसे काम अब।
बिगरी मेरी बात तो, किन्तु बनाई नाम सब॥

अजामिल को भगवत् पार्षदपद की प्राप्ति

(३६५)

हित्वा कलेवरं तीर्थे गङ्गायां दर्शनादनु ।
सद्यः स्वरूपं जगृहे भगवत्पार्श्ववर्तिनाम् ॥
म्रियमाणो हरेर्नाम गृणन् पुत्रोपचारितम् ।
अजामिलोऽप्यगाद्धाम किं पुनः श्रद्धया गृणन् ॥*
(श्री भा० ६ स्क० २ अ० ४३, ४९ श्लो०)

छप्पय

यों करि पश्चात्ताप मोह ममता सब त्यागी ।
वेश्या अरु सुत त्यागि राग तजि भये विरागी ॥
हरिद्वारमहँ जाइ योगको आश्रय लीन्हों ।
विषयनितें मुँह मोरि युक्तितें मनवश कीन्हों ॥
दृश्यवर्गतें पृथक् करि, आत्मा ज्ञान स्वरूपमहँ ।
फेरि अजामिल भक्तियुत, भये पारपद रूपमहँ ॥

जीव तभी तक कर्म बन्धनों में बँधकर इस संसार रूप बीहड़वन में भटकता रहता है, जब तक उसे पूर्वकृत पापों का पश्चात्ताप नहीं होता। जब उसे अपने किये कुकृत्यों के लिये

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! हरिद्वार में, पुन विष्णु पार्षदों का मरण समय दर्शन पाकर अजामिलने उस तीर्थ में गङ्गा तट पर अपना यह मानुषी रूप त्याग कर तत्काल भगवान् के पार्षदों

पश्चात्ताप हो जाता है, तो उसकी जगत् संसृति नष्ट हो जाती है। वह भगवान् का कृपा प्रसाद प्राप्त कर उनका प्रिय पार्षद बन जाता है। संसार में इन अनित्य नाम रूपों में फँसकर जीव विषयों का पार्षद बना हुआ है, जब इन अनित्य पदार्थों का मोह छोडकर भगवान्‌के नित्य नाम रूप मे फँस जायगा, उनसे अनुराग करने लगेगा, तो वह प्रभु पार्षद हो जायगा। अपने क्षुद्रपने को त्यागकर वह महान् बन जायगा।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! अजामिल को अब अपने पापों पर अत्यधिक दुःख हुआ। बडी देर तक वह अपने कुकृत्यों का स्मरण करके रोता रहा। मानों उसकी हृदय की कलुषता पानी बनकर नेत्रों द्वारा बाहर निकल रही हो, वह रही हो। अधीर होकर वह करुण-क्रन्दन करता हुआ विलाप करने लगा। अन्त मे उसने धैर्य धारण करके यह निश्चय किया —"अस्तु अब जो होना था, सो हो गया। अब आगे से मैं अपने मन, इन्द्रिय और प्राणों को वश मे करके, ऐसा प्रयत्न करूँगा, जिससे मुझे फिर अन्धतम नरकों मे न गिरना पड़े। अब मैं अविधी कामना और कर्मादि से उत्पन्न हुए इस कर्म बन्धन को त्यागकर सब प्राणियों से सोहार्द्र स्थापित करके, सबका मित्र, दयालु, शान्त और संयतेन्द्रिय होकर, उस स्त्री रूप भगवान् की माया को दूर से ही डंडौत कर दूँगा। जिसने अब तक मुझे बन्दर बनाकर नचाया है, कलन्दर बनाकर घुमाया

का सा रूप धारण कर लिया। देखिये राजन्! मरते समय केवल पुत्र के उपचार से भगवान् का नाम लेकर अजामिल ने परमधाम को प्राप्त कर लिया, फिर जो श्रद्धापूर्वक भगवन्नाम कीर्तन करेंगे, उनके सम्बन्ध में तो कहना ही क्या ?"

है और जमूडा बनाकर मनमाना कार्य कराया है। अब मैं असद्बुद्धि के जो ये मैं मेरा तू तेरा आदि व्यवहार व्यापार हैं, उन्हें त्यागकर अपनी शुद्ध बुद्धि को भगवानके नाम कीर्तन में उनके गुणश्रवण में ही निरन्तर लगाये रहूँगा।"

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—'राजन्! क्षण भरके सत्सग का प्रभाव तो देखिये। अब अजामिल के हृदय में ससार से तीव्र वैराग्य उत्पन्न हो गया। उसने आज अपना नया जन्म समझा और वास्तव में उसका नया जन्म ही हुआ था। प्रथम उत्तम जन्म तो उसका तब हुआ, जब ब्राह्मणी माता के गर्भ से उत्पन्न होकर ब्राह्मण के घर द्विजों के अनुरूप सस्कारों में पला पोसा था दूसरा अधम पाप जन्म तब हुआ जब उसने वेश्या के ससर्ग से भाँति भाँति के पाप किये, अवैध पुत्र उत्पन्न किये और आज तीसरा शुभाशुभ से भी अपूर्व अतिम जन्म उसका विष्णु पार्षदों के मुख से भगवन्नाम माहात्म्य सुनकर हुआ। यह जन्म अतिम जन्म है। अब इसे फिर कभी ससार में कर्मवश जन्मना मरना न पड़ेगा।

सावधान होते ही उसने अपना डड कमडल उठाया। वेश्या ने पूछा—"कहाँ चले ?"

अजामिलने कहा—'नारायण नारायण।"
उसने कहा—'अजी अभी बहुत दुर्बलता है। जगल को फिर जाइयेगा। अभी तो कई दिन को घर मे सामान है।

अजामिल ने फिर यही कहा—"नारायण नारायण।"

वेश्या ने देखा आज तीर कमान भी नहीं लिया, इनकी चेष्टा भी आज विचित्र है, प्रतीत होता है ज्वर की गरमी चढ़ गई

हैं। इसी के उन्माद में वक रहे हैं। इसलिये उसने पूछा—"आप का चित्त ठीक है न? ज्वर तो नहीं है?"

अजामिल का कामज्वर तो अब सदा के लिये उतर गया था, उसका विकृत मस्तिष्क अब तो सुधर गया था। उसने "नारायण नारायण" के अतिरिक्त दूसरा कोई उत्तर ही न दिया। वह कान्यकुब्ज देश से गंगा जी का तीर पकड़ कर उस उत्तर दिशा की ओर चल दिया, जिसमें बड़े बड़े चक्रवर्ती अपना राज्यपाट छोड़कर फिर न लौटने के संकल्प से जाया करते हैं। पैदल ही गंगा किनारे किनारे वह पांचाल देश संसप्तक देश आदि में होता हुआ उस स्थान पर पहुँचा जहाँ से भगवती भागीरथी ने अपने पिता हिमालय की गोद से उतर कर पृथ्वी पर पदार्पण किया है। जिसे गंगाद्वार, हरिद्वार, अथवा कुशावर्त क्षेत्र कहते हैं। वहाँ आकर उसने हरि की पौढ़ियों पर स्नान किया। स्नान करते ही उसका अन्तःकरण निर्मल हो गया। एक शान्त एकान्त स्थान मे गंगा किनारे उसने अपनी एक घास फूस की झोपड़ी बनाई और उसमे आसन लगाकर उसने योगाभ्यास करना आरम्भ कर दिया।

इस प्रकृति में विकृति हो जाने पर ही इन इन्द्रिय, मन, विषय तथा भूतों में आमूल परिवर्तन हो जाता है। यदि सब पदार्थों को योग द्वारा परब्रह्म मे लीन करा दिया जाय, तो पुरुष माया से रहित, विशुद्ध आनन्दघन, चैतन्य स्वरूप हो जाता है। अजामिल ने उसी प्राचीन परिपाटी का अनुसरण किया। भगवन्नाम का सहारा लेकर नाम संकीर्तन करते हुए, उसने इस पांचभौतिक शरीर का अब विधिपूर्वक अन्त कर देना चाहा।

सर्व प्रथम उसने यम नियमों का अभ्यास करते हुए आसन को दृढ़ किया. फिर प्राणायाम के अभ्यास मे विखरी हुई चित्त

की वृत्ति को अन्तर्मुख किया। अपनी समस्त इन्द्रियों को उनके उपभोग तत् तद् विषयों से हटाकर उन्हें मन में लीन कर दिया। फिर मन को बुद्धि में लीन कर दिया। फिर अध्यात्म योग के द्वारा आत्मा को शरीरादि दृश्यवर्ग से पृथक् करके उसे ज्ञानमय भगवत्स्वरूप परब्रह्म में लीन कर दिया। इस प्रकार जब उसकी बुद्धि भगवत् स्वरूप मे स्थिर हो गई, तब उसने देखा एक बड़ा ही दिव्य विमान सर्र-सर्र करके नीचे उतर रहा है। उसमें ४ तेजस्वी महापुरुष विराजमान् हैं। सभी चतुर्भुज हैं। सब के हाथों में शंख, चक्र, गदा और पद्म सुशोभित हैं। सभी घुँटनों तक लटकने वाली वनमाला धारण किये हुए हैं। सभी के शरीरों पर पीताम्बर दमक रहा है। उन्हें देखते ही अजामिल समझ गया ये वे ही मेरे गुरुदेव हैं, जिन्होंने मुझे मृत्यु पाश से छुडाया था। ये मेरे इष्टदेव के प्रिय पार्षद हैं, भगवत्स्वरूप हैं, परम परोपकारी हैं, मुझे पुनः कृतार्थ करने के निमित्त पधारे हैं। ऐसा विचार कर वह शीघ्रता से उठा और भूमि में लोटकर अत्यन्त ही श्रद्धा भक्ति के साथ भगवान् के नामों को लेकर उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम किया। वह प्रेमाश्रु विमोचन करता हुआ, गद् गद कण्ठ से बार बार कहता था—"नमो नरायण नमो नरायण।"

भगवान् के पार्षदों ने मेघ गम्भीरवाणी मे अत्यन्त स्नेह के साथ कहा—"महाभाग! अब आप वैकुण्ठलोक को पधारिये। जहाँ माया प्रपञ्च की लेश मात्र भी गंध नहीं है।"

इतना सुनते ही अजामिल शीघ्रता से उठा। कुटिया छोड़ कर वह गंगाजी के तट पर आ गया। कमर भर जल मे खड़े होकर उस परम पावन कुशावर्त क्षेत्र मे उसने अपना यह पञ्चभौतिक नश्वर शरीर तत्काल त्याग दिया। तत्क्षण उसका

चतुर्भुज रूप हो गया। जैसे वे विष्णुपार्षद थे, सर्वथा वैसा ही उसका रूप हो गया। उसने विष्णु पार्षदत्व प्राप्त कर लिया। विष्णुपार्षद बनकर वह अजामिल उन पार्षदों के साथ दिव्य सुवर्ण मण्डित विमान पर चढ़कर आकाश मार्ग से उस नित्य वैकुण्ठधाम को चला गया जहाँ श्री लक्ष्मीजी के सहित श्री मन्नारायण सदा विराजमान रहते हैं। भगवन्नाम के प्रभाव से वह भगवान् का परम प्रिय पार्षद बनकर निरन्तर उस लोक में रहने लगा।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! इससे बढ़कर हम भगवन्नाम का और अधिक माहात्म्य क्या कहें? देखिये, जो विशुद्ध ब्राह्मण होकर सुरा पीकर हिंसक बन गया। जिसने अपना कुलागत धर्म छोड़ दिया। वेश्या का पति बनकर जिसने अपने समस्त धर्म कर्मों की तिलाञ्जलि दे दी। अपने निन्दित पापमय कर्मों के कारण जो व्रतहीन और भयङ्कर नरकों में गिराया जाने वाला था, वही द्विजाधम-भगवान् 'नारायण' का नाम लेने से तत्त्वण संसार चक्र से मुक्त हो गया। भगवान् का प्रिय पार्षद बन गया। अब आप ही बताइये इससे बढ़कर सरल, सुगम, सर्वोपयोगी सुन्दर सर्व सुविधाओं से युक्त सन्मार्ग दूसरा कौन हो सकता है? मुमुक्षु पुरुषों के कर्म बन्धनों को काटने वाला श्रीहरि के नाम संकीर्तन से बढ़कर और कोई भी सरल साधन नहीं है। विशेषकर कलिकाल में तो इसके अतिरिक्त कोई गति ही नहीं है। यह ऐसा साधन है कि चित्त यदि इसमें लग जाय तो फिर वह संसारी कर्मों में आसक्त नहीं होता। फिर उससे पाप बनते नहीं। अतः समस्त पापों का भगवन्नाम सङ्कीर्तन को छोड़ कर दूसरा कोई सर्वश्रेष्ठ प्रायश्चित्त है ही नहीं। यह सभी भव-रोगों की एक मात्र अचूक कभी भी व्यर्थ न होने वाली सर्व

सुगम अमूल्य औषधि है। दूसरे शरीर शोषण सम्बन्धी प्रायश्चित्तों को तो करने पर भी चित्त रजोगुण तमोगुण से ग्रस्त बना ही रहता है, किन्तु इस प्रायश्चित्त के करने से तो प्राणी गुणातीत हो जाता है। अतः राजन्! भगवान् का नाम कीर्तन ही सर्व पापों से सर्व नरकों से, समस्त यातनाओं से बचा सकता है। यह मैंने नाम माहात्म्य के प्रसङ्ग में अत्यन्त ही संक्षेप में अजामिल का पुण्यमय आख्यान आपको सुनाया। जो इस समस्त आख्यान को श्रद्धा भक्तिपूर्वक सुनेंगे, पढ़ेंगे, उन्हें भी कभी नरकों को न देखना पड़ेगा। उन लोगों की भी शनैः शनैः! भगवन्नाम कीर्तन में रुचि बढ़ेगी। वे भी अपनी जिह्वा से सर्व पाप प्रशमन नारायण मन्त्र का उच्चारण करेंगे। पहिले चाहे उसके द्वारा कितने भी घोर से घोर पाप हो गये हों, किन्तु जो हरिनाम का आश्रय ग्रहण कर लेता है, वह वैकुण्ठलोक में जाता है और वहाँ विष्णुपार्षदों के द्वारा महामहिमान्वित होता है।

महाराज! भगवन्नाम के समग्र माहात्म्य को कथन करने में कौन समर्थ हो सकता है, आप कैमुत्त्यन्यायेन इसी से अनुमान करलें, कि इतना पापी ब्राह्मण केवल मरते समय विकल हो कर पुत्र के मिस से भगवन्नाम लेकर तर गया। तो जो श्रद्धा भक्तिपूर्वक नाम से कीर्तन करेंगे उनकी मुक्ति में क्या सदेह हो सकता है। इस आख्यान से यह न समझना चाहिये, कि हम स्वेच्छा से पाप करते रहें, भगवन्नाम से सब नष्ट हो ही जायँगे। यह बात नहीं, पापों का पश्चात्ताप होने पर तो फिर शरीर से पाप हो ही नहीं सकते। पिछले पाप उसके भस्म हो जायँगे और अब जो वह नाम संकीर्तन करेगा, उससे उसका चित्त शनैः शनैः शुद्ध होगा, जिससे उसे भगवन्नाम कीर्तन में प्रेम अवेगा। प्रेम उत्पन्न होगा वह प्रेम ही उसे प्रभु के लोक तक पहुँचा देगा। राजन्! यह

मैंने अजामिल की वैकुण्ठलोक की प्राप्ति तक का वर्णन किया, अब आप और क्या सुनना चाहते हैं ?"

इसपर महाराज परीक्षितने कहा—"भगवन्! यह तो आपने अत्यन्त ही अद्भुत उपाख्यान सुनाया। नरकों का वर्णन सुनते-सुनते मेरे रोंगटे खड़े हो गये थे, मेरा हृदय धड़क रहा था, बड़ा भारी भय उत्पन्न हो गया था, वह सब भय मेरा भगवन्नाम के माहात्म्यको सुनकर दूर हो गया। अब मुझे विश्वास हो गया कि मनुष्य चाहे तो नरकों से सुगमता के साथ बच सकता है क्योंकि इसमें किसी बाह्य उपकरण की अपेक्षा नहीं, मूल्यवान सामग्री के जुटाने का झंझट नहीं। भगवान् के नाम सरल हैं, सुगम हैं, सभी जानते हैं। फिर नाम एक हो सो भी नहीं, उनके अनन्त नाम हैं। कोई गुणों के अनुसार है, कोई कर्मों के अनुसार। जिह्वा अपने घर की है। कहीं से लानी नहीं, फिर भगवन्नाम का नर उच्चारण न करे, उसकी भूल है। जैसे कोई रोगी महाव्याधि से पीड़ित है, उसके पास अमृतोपम अव्यर्थ औषधि रखी है, किन्तु उसे वह पीता नहीं, उसको जिह्वा से स्पर्श नहीं करता तो उसका रोग कैसेदूर होगा, वह उसी प्रकार यातनाओं को सहता रहेगा। अब महाराज ! मैं यह सुनना चाहता हूँ कि उन यम के दूतों का क्या हुआ ? विष्णुपार्षदों ने उनकी कुटाई तो अच्छी प्रकार से की थी। धर्मराज की आज्ञा का तो आज तक कभी उल्लंघन हुआ नहीं। काल को तो दुर्निवार बताया है। जब वे दूत खाली हाथ यमराज के पास पहुँचे तब यमराज ने उसे क्या कहा ? राजा की आज्ञा का भंग हो जाना उसका अशस्त्रवध बताया गया है। अपनी आज्ञा का पालन न हुआ देख कर धर्मराज को बुरा लगना स्वाभाविक ही है। उन दूतों से उन्होंने कड़ककर पूछा होगा, तब दूतों ने क्या कहा ? अपने को

निर्दोष कैसे बताया ? भगवन् ! इसके अतिरिक्त मुझे एक शंका और है, यमराज सर्वज्ञ होकर भी यह न समझ सके कि इसकी मृत्यु का समय अभी नहीं है, यह तो वैकुण्ठलोक का अधिकारी है। यह ज्ञान की न्यूनता क्या इतने बडे लोकपाल के लिये संभव हो सकती है ?"

यह सुनकर श्री शुकदेवजी हँस पडे और बोले—"राजन् ! आपके प्रश्न बड़े उत्तम हैं धर्म संगत हैं, मैं इनका उत्तर उपाख्यानों सहित दूँगा। आप इस विषयको एकाग्रचित होकर श्रवण कीजियेगा भला ! चित्त को इधर उधर न जाने दीजियेगा। अच्छा ! समझे न ?"

छप्पय

आयो दिव्य विमान निहारे पार्षद तेई।
पहिचानें तत्काल नाम दाता गुरु येई॥
पचभूतकी देह त्यागि पार्षद् वपु धारयो।
तब फिर चढयो विमान दिव्य वैकुण्ठ सिधारयो॥
अधम अजामिल हू तरयो, नारायण कहि पुत्र हित।
ते फिर क्यों नहिँ नर तरें, लेहिँ नाम जे शुद्ध चित॥

---

(३६६)

नीयमानं तवादेशादस्माभिर्यातनागृहान् ।
व्यमोचयन्पातकिनं छित्त्वा पाशान्प्रसह्य ते ॥
तांस्ते वेदितुमिच्छामो यदि नो मन्यसे क्षमम् ।
नारायणेत्यभिहिते मा भैरित्यायुर्द्रुतम् ॥*
(श्रीभा० ६ स्क० ३ अ० ९, १० श्लो०)

छप्पय

सयमनी पति निकट गये यमदूत खिस्याने ।
बिना भावने मार पड़ी सब अंग पिराने ॥
हाथ जोरि सब कहें प्रभो ! तुमई जग स्वामी ।
या तुमतेंऊ अपर ईश बड़ अन्तरयामी ॥
लावत हैं हम नरकमहँ, जा पापीकूँ पकरिकें ।
चारि पुरुष आये तहाँ, छुड़वायो अति झिरकिकें ॥

जो कूप मंडूक होते हैं वे कूए के सबसे बड़े मेढक को ही सबसे बड़ा जन्तु समझते हैं। कूए से कभी समुद्र में जाने का

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! यमदूतों ने जाकर धर्मराज से निवेदन किया—"महाराज ! हम लोग आपकी आज्ञा से एक पातकी को नरकों की ओर लिये जा रहे थे, कि इतने ही में ही चार दिव्य पुरुषों ने हमारे पाशों को तोड़कर उसे मुक्त कर दिया। सो, हम जानना

उन्हें सुयोग ही प्राप्त नहीं होता। वहाँ यदि येतिमि, तिमिङ्गिल, तिमिङ्गिलगिल आदि बड़े जीवों को देखें तो उनकी आखें खुल जायँ। किन्तु वे तो वहीं मच्छर आदि छोटे जीवों को खाते हुए अपने बल पौरुष को दिखाते हुए अपने को अप्रतिहत पौरुष वाला समझते रहते हैं। जब कोइ बड़ा जीव आकर उन की मरम्मत करता है तब उन्हें ज्ञान होता है, संसार में हमसे बड़े भी जीव हैं।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन्! आप ने जो यह पूछा कि यमराज तो सर्वज्ञ हैं, क्या वे जानते नहीं थ, कि इस अजामिल की ऐसी दशा होनी है। यदि उन्हें पता था कि यह जीव वैकुण्ठ का अधिकारी है तो उन्होंने पिटवाने के लिये अपने दूतों को क्यों भेजा? यदि उन्हें पता नहीं था तब वे सर्वज्ञ नहीं हुए? सो पहिले मैं आपको इसी प्रश्न का उत्तर देता हूँ। बात यह है कि ज्ञान की भी-सर्वज्ञता की भी-सीमा होता है। मूर्ख से पढ़ा लिखा सर्वज्ञ है, उससे सिद्ध सर्वज्ञ है उससे भी देवता और लोकपाल इनसे भी ब्रह्माजी सर्वज्ञ हैं। उन सर्वज्ञ ब्रह्मा ने भी राजकुमार प्रियव्रत को उपदेश देते हुए स्पष्ट कहा था, कि उन सर्वान्तर्यामी प्रभु की चेष्टाओं को मैं भगवान् रुद्र तथा इन्द्रादि देवता कोई भी पूर्णरूप से समझने में समर्थ नहीं। सभी प्राणियों के पाप पुण्य के विषय में यमराज सर्वज्ञ हैं। सबके पाप पुण्य का सप्रमाण उनके यहाँ लेखा रहता है। उसी के अनुसार वे प्राणियों को सुख, दुःख, स्वर्ग, नरक देते हैं। किन्तु भगवान् की

चाहते हैं, वे लोग कौन थे यदि आप उचित समझें तो इस रहस्य को बतावें, उस पापी ने "नारायण" इतना ही कहा था। तभी आकर "मत डरो" ऐसा कहते हुए तत्काल वहाँ आकर उपस्थित हो गये।"

कभी किसी कारण से उसी क्षण विशेष कृपा हो जाय इसे लोकपाल भी नहीं जान सकते।"

यह सुनकर शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! भगवान् की कृपा तो वैसे सभी पर समान रूप से होती ही है, किन्तु विशेष कृपा तो विशिष्ट पुण्यात्माओं पर ही होती होगी। पापी तो अपने पापों के कारण भगवान् की कृपा के अधिकारी ही नहीं।"

यह सुनकर सूतजी बोले—"महाभाग! यह ठीक है भगवान् धर्म मूर्ति हैं, धर्मात्मा उन्हें प्रिय होते हैं। किन्तु उनकी कृपा के अधिकारी धर्मात्मा ही होते हैं, सो नियम नहीं। जिन्हें वे अपने करके वरण करले। इस जन्म में जो पापी दीखता है, सम्भव है वह पूर्वजन्म में परम पुण्यात्मा रहा हो। भगवान् गुणों से ही प्रसन्न होते हैं ऐसा नियम नहीं। यदि शुद्ध आचरण से, पवित्राचार से ही भगवान् प्रसन्न होते हैं, तो धर्मव्याध तो नित्य मांस बेंचता था। गीध तो अत्यन्त अपवित्र, अत्यन्त निन्दनीय मांसभोजी पक्षी था—"धर्मशास्त्रों में यहाँ तक लिखा है कि जिस घर की छत पर गृद्ध बैठ जाय, उस घर का पुनः संस्कार कराना चाहिये। यदि भगवान् की कृपा के पात्र विद्वान् ही होते हों तो भालू बन्दर कौन सी पाठशाला मे पढ़े थे, गजेन्द्र ने कौन परीक्षा दी थी? इन सब बातों से यह सिद्ध होता है कि भगवान् की कृपा किसी गुण से किसी नियम से बँधी नहीं। किस क्षण किस पर कैसे कृपा हो जाय, इसे बिचारे यमदूत तो जान ही क्या सकते हैं उनके स्वामी यमराज भी नहीं जानते। अजामिल का इतिहास तो सुनियो! बहुत प्राचीन है, मैं आपको अभी इसी कलियुग का अत्यन्त ही अर्वाचीन एक सत्य इतिहास सुनाता हूँ, उससे आप समझ जायँगे, कि भगवान् कैसे किस पर अकस्मात् कृपा करते हैं।"

पंचनद देश के अन्तर्गत गुलेर नाम का एक छोटा-सा राज्य है। वहाँ पर एक बड़े धार्मिक परम भागवत राजा थे। उनके समीप में एक नौकर था। उसकी धर्म में तो ऐसी विशेष रुचि नहीं थी किन्तु वह स्वामिभक्त था, उसे राजा की आज्ञा पालन करने में अपराधियों को पकड़कर लाने में, राजा की आज्ञा से दंड देने में बड़ा आनन्द आता था। स्वभाव का भी वह उग्र था, राजा का उसके प्रति सहज अनुराग था। वह राजा के कृपापात्र सेवकों में माना जाता था। कुछ काल में उसकी मृत्यु हो गई।

एक दिन राजा ने क्या देखा कि वही नौकर एक छाया की मूर्ति की भाँति राजा के सम्मुख खड़ा है पहिले तो राजा को बड़ा सन्देह हुआ पीछे साहस करके उन्होंने उसका नाम लेकर पुकारा। उसने राजा को प्रणाम करके उत्तर दिया। राजा ने पूछा—"भाई, तुम तो मर गये थे तुम यहाँ कैसे आ गये।"

उसने कहा—"महाराज! अवश्य ही मेरी मृत्यु हो गयी थी। मर कर मैं यमराज का दूत बनाया गया हूँ। अब मैं जिनका समय पूरा हो जाता है, उन पापियों को पकडकर यमराज के समीप ले जाता हूँ। मेरे साथ और भी दो हैं। मैं आपके स्नेह वश दर्शन करने चला आया।"

राजा को बड़ा कुतूहल हुआ और बोले—"यहाँ तुम किसे पकड़ने आये हो?"

उसने कहा—"महाराज! अमुक जो ठाकुर है, वह बड़ा क्रूर द्वेषी है, उसे ही हम पकड़कर ले जायेंगे। वह ठाकुर राजा के समीप ही रहता था। कल राजा ने उसे स्वस्थ देखा था। अतः उन्हें उसकी बात पर कुछ विश्वास नहीं हुआ और बोले—"अच्छी बात है, जब तुम उसे लेकर जाने लगो, तब भी मुझसे अवश्य मिलते जाना।"

उसने विनीत भाव से कहा—"बहुत अच्छी बात है, जैसी महाराज की आज्ञा।" इतना कहकर वह वहीं अन्तर्धान हो गया।

कुछ समय के पश्चात् वह फिर आया। राजा ने पूछा—"तुम लोग क्या, उसे लिये जा रहे हो ?"

उस दूत ने कहा—"महाराज ! वह हमारे हाथ नहीं लगा।"

राजाने आश्चर्य के साथ पूछा—"क्यों क्या बात हुई ! उसे तुम क्यों नहीं पकड़ सके ?"

दूतने कहा—"महाराज ! आज ही वह अपनी घोड़ी पर चढ़कर खेत को जा रहा था। जिस क्षण उसकी मृत्यु का काल आया वह दौड़ती हुई घोड़ी से पृथ्वी पर गिर पड़ा। गिरते ही उसके प्राण निकल गये। संयोग की बात जहाँ वह गिरा उस पृथ्वी के एक बिलस्थि नीचे भगवान् शालग्राम की दिव्य मूर्ति थी जिसकी शालग्राम शिला के ऊपर मृत्यु हुई हो, उसका स्पर्श हम कैसे कर सकते हैं, अतः उसे विष्णु दूत ले गये हम लौटे जा रहे है।"

यह सुनकर राजा को और भी कुतूहल हुआ। वे उसी क्षण अपने मन्त्रियों को साथ लेकर उस स्थान पर गये। बात सच थी, वह घोड़ी पर चढ़कर गया था और वहाँ मरा पड़ा था। राजा ने उसी क्षण उस भूमि को खुदवाया। उसमें थोड़ी दूर पर ही एक सुन्दर शालग्राम की मनोहर मूर्ति निकली। राजाने उसे बड़ी श्रद्धा से स्थापित कर दिया। गुलेर राजभवन में अद्या-वधि वह मूर्ति विराजमान है। यह कहानी नहीं प्रत्यक्ष घटना है। सो मुनियो ! किस समय किसका कैसा संयोग जुट जाय इसे श्रीहरि ही जान सकते हैं। अजामिल पर भगवान् क्यों रीझ

गये, क्यों मृत्यु के समय उसके मुख से भगवान् का नाम निकल गया इसे भगवत् कृपा के अतिरिक्त और क्या कह सकते हैं ?"

शौनकजी ने कहा—' हाँ, सूतजी ! आप सत्य कह रहे हैं। भगवत् कृपाके सम्बन्ध में कुछ निश्चित् कहा नहीं जा सकता। इसे भगवान् के अतिरिक्त कोई जान नहीं सकता। अब आप आगे का वृत्तान्त सुनाइये।" इसपर सूतजी बोले—"महाभाग ! सुनिये, जिस प्रकार मेरे गुरुदेव भगवान् शुक से राजा परीक्षित् ने आगे का वृत्तान्त पूछा था। उसे ही मैं आपसे कहता हू।

राजा परीक्षित् ने श्रीशुकदेवजी से पूछा—"भगवन् ! जिन देवश्रेष्ठ धर्मराज के आधीन यह सम्पूर्ण संसार है, जब उनकी आज्ञा का इस प्रकार उल्लघन हुआ तथा उनके दूतों को विष्णुपार्षदों ने बुरी तरह खदेडा तो इसपर उन्होंने अपने दूतों से क्या कहा ? उन्होंने विष्णुदूतों पर भगवान् के न्यायालय में मानहानिका या शांति भंगका अभियोग तो नहीं चलाया ? भगवन् ! मुझे इस घटना से बडा आश्चर्य हो रहा है। यमराज की आज्ञा का उल्लघन हो, ऐसी बात तो पहिले कभी सुनने मे आयी नहीं। आप ही महाराज ! मेरी इस शंका का सरलता के साथ समाधान करने में समर्थ हैं क्योंकि आप सर्वज्ञ हैं।"

यह सुनकर हँसते हुए भगवान् शुक कहने लगे—"राजन् ! सुनिये। जब यमदूत विष्णुपार्षदों द्वारा बुरी भाँति खदेड़े और पीटे गये, तो वे सब ओठ लटकाये बुरा मुँह बनाये उदास मन से यमराज से पूछने लगे—"प्रभो ! हम यह जानना चाहते हैं, कि प्राणियों के पुण्य पाप तथा मिश्रित सभी प्रकार के कर्मों का फल देनेवाले शासक निश्चित रूप से कितने हैं ?"

यमराज अपने दूतों के मुख से अक्स्मात् ऐसा प्रश्न सुनकर चक्कर में पड गये। ये लोग आज विचित्र प्रश्न पूछ रहे हैं। ऐसा प्रश्न तो इन्होंने अब से पूर्व कभी पूछा नहीं था।"

यमराज ने आश्चर्य की मुद्रा मे पूछा—"क्यों, क्या बात है ? तुम्हारे इस प्रश्न का अभिप्राय क्या है ?"

यमदूतों ने नम्रता के साथ कहा—"महाराज ! अभिप्राय इतना ही है, कि जब एक स्वामी होता है, तभी न्याय ठीक होता है। यदि बहुत से स्वामी हुए, तो एक ने किसी को दंड देने को पकडा दूसरे ने दया करके छोड दिया, तब तो बहुत से लोग अपराध करके भी दन्ड से बच जायँगे बहुत से बिना अपराध के ही पकडे जायँगे, अपराध में फँस जायँगे। फिर किसको सुख दुःख प्राप्त कराने चाहिये, किसको न कराने चाहिए निर्णय कौन करेगा ?"

यमराज ने कहा—"भाई, पाप पुण्य करनेवाले प्राणी बहुत हैं, एक से न्याय न हो सके तो बहुत से न्यायाधीश नियुक्त हो जाते हैं, इसलिये यह नियम नहीं है कि शासक अनेक न हों एक ही हो। एक से अधिक भी शासक हो सकते हैं ?"

यमदूतों ने कहा—"महाराज ! शासक अधिक भले ही हों किन्तु वे सब मनमानी तो नहीं कर सकते। उन सब को भी प्रधान शासक के अधीन रहना पडता है। अतः वे शासन में स्वतन्त्र नहीं माने जाते। जैसे माण्डलिक राजा तो बहुत होते हैं, किन्तु उन सबका सम्राट् तो एक ही होता है। हम तक यही समझते थे कि ससार में जितने भी छोटे मोटे हैं उन सब शासकों के प्रधान शासक चराचर जीवों के शुभा शुभ का निर्णय करनेवाले दन्डधर स्वामी आप ही हैं।"

हँसकर धर्मराज ने कहा—"अब तक तो यह समझते थे, अब क्या समझते हो ?"

यमदूत बोले—"महाराज ! अब तो हमें कुछ सन्देह-सा होने लगा। तभी तो आज ऐसा प्रश्न किया। आज से पूर्व तो हमने कभी यह सन्देह किया ही नहीं था। आज एक ऐसी ही घटना घटित हो गयी।"

यमराज ने पूछा—"वह क्या ? ऐसी कौन-सी घटना घटित हुई ?"

यमदूत बोले—"महाराज ! क्या बतायें ? आज हम एक पापी को आपकी आज्ञानुसार बाँधकर नरक ला रहे थे, इतने में चार अद्भुत दिव्य पुरुषों ने अत्यन्त शीघ्र आकर उसे बलपूर्वक हमसे छुड़ा लिया और ऐसी मार दी, कि प्रभो ! छठी तक का दूध याद आ गया। यदि ऐसी मार एक-आध बार और भी पड़ गयी, तो हमारा तो चूर्ण हो जायगा। अतः महाराज ! यह लें अपना पाश और स्वीकार करें हमारा त्यागपत्र, ऐसी नौकरी हमसे न होगी।"

यमराज ने कहा—"भाई ! बात तो बताओ। यों बिना बात के तुमसे छुड़ाने का साहस कौन कर सकता है ? उसने मरते समय कुछ कहा था क्या ?"

यमदूतों ने उपेक्षा के स्वर में कहा—"अजी, महाराज ! वह कहता क्या पत्थर ! उसे स्वयं चेतना नहीं थी, अपने पापों को स्मरण करके वह स्वयं अत्यन्त भयभीत संज्ञाशून्य बना हुआ था। केवल नारायण नारायण ऐसा पुकार रहा था" बस, इतने में चारों जैसे पील्हे मास के टुकड़ों पर टूटती हैं, वैसे वे एक साथ टूट पड़े और उच्चस्वर से बोले—"डरो मत, डरो मत। निर्भय हो जाओ।" महाराज ! हम तो हक्के-बक्के से रह गये।

देखिये हमारी हड्डी पसली सब चूर कर दी है। सो नाथ! हमें बतावें वे अद्भुत पुरुष कौन थे, किसके दूत थे, 'नारायण' शब्द सुनते ही वे कहाँ से आ गये ? और उन्होंने उस पापी को हमसे बलपूर्वक क्यों छुडा लिया ?"

श्री शुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! इतना सुनते ही । की आँखो मे प्रेम के अश्रु आ गये। नारायण नाम के श्रवण मात्र से ही उनका अङ्ग अङ्ग पुलकित हो उठा। वे भग चरण कमलों का ध्यान करते हुए, प्रेम के अश्रुओं को पोंछते हुए, दू के प्रश्नों का उत्तर देने के निमित्त प्रस्तुत हुए।"

छप्पय

शख चक्र वनमाल गदाभृत सेवक किनके।
काके हैं वे दूत कौन स्वामी हैं तिनके ॥
सबके शासक आप जीव प्राननि के हर्ता।
शासनसब को करें, शुभाशुभ निर्णय कर्ता ॥
इतने पै ऊ आप की, आज्ञा उल्लघन भई।
बिना बात के बीच में, हमरी दुर्गति ह्वै गई ॥

यमराज द्वारा अपने दूतों के प्रश्नों का उत्तर

(३६७)

परो मदन्यो जगतस्तस्थुपश्च,
ओत प्रोतं पटवद् यत्र विश्वम् ।
यदंशतोऽस्य स्थितिजन्मनाशा,
नस्योतवद्यस्य वशे च लोकः ॥*
(श्रीभा० ६ स्क० ३ अ० १२ श्लो०)

छप्पय

'नारायण' है मन्त्र जन्त्र वा जादू टौंना ।
काहू नर ने मृत्यु समय जिह नाम कह्यो ना ॥
मुनि नारायन नाम भयो तन पुलकित यम को ।
प्रेम मग्न है करयो ध्यान भगवत् चरननि को ॥
जलद सरिस अति विमलवर, जो हरि नित्य नवीन हैं ।
शिव विरञ्चि इन्द्रादि हम, तिनके नित्य अधीन हैं ॥

अपने प्रियतम के गुणगान का किसी प्रकार भी अवसर प्राप्त हो जाय, प्रेमी उसी से प्रसन्न हो जाता है और प्रेमास्पद के सम्बन्ध मे अपने उद्‌गारों को उगलने लगता है। ससार मे

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! अपने दूतो के प्रश्नों को सुनकरके यमराज कहने लगे—"दूतो ! मेरे अतिरिक्त इस स्थावर जगमजगत् के एक और भी अधीश्वर हैं, जिनम यह विश्व उसी प्रकार ओत प्रोत

जितनी भी सुनने में प्यारी वार्तायें हैं, उन सबसे प्रिय प्रेमास्पद को कथा हैं। संसार मे जितनी भी गाने योग्य वस्तु हैं उन सबमें सुखद सुन्दर और अन्तःकरण को तन्मय बना देनेवाली अपने इष्टदेव की प्रेमास्पद की गौरव युक्त गुणगाथायें हैं।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! मालूम पड़ता है, यमराज के दूत नये ही नये थे। और प्रतीत होता है वे भगवत्तत्व से अनभिज्ञ भी थे। आज उनके मुख से नारायण की महिमा सम्बन्धी बातें सुनकर यमराज अत्यन्त ही प्रसन्न हुए। भगवान् का सुमधुर त्रैलोक्यपावन नारायण नाम सुनकर उनका सम्पूर्ण शरीर रोमाञ्चित हो उठा। प्रेम के आवेग में वे विकल से होगये। फिर कुछ देर मे प्रेम का वेग शान्त होने पर वे दूतों से कहने लगे—"अरे, दूतो! तुम मुझे ही सब कुछ समझते थे क्या? यह ऐसा समझना तुम्हारा भ्रम है। मै इस चराचर जगत् का स्वामी नहीं हूँ। इस जगत् की सृष्टि लोकपितामह ब्रह्माजी करते हैं, अतः सृजन के स्वामी वे ही हैं। समस्त चराचर विश्व का पालन श्रीविष्णु भगवान् करते हैं, अतः वे पालन के पति हैं। अन्त मे सबका संहार त्रिनेत्र रुद्र करते हैं, अतः वे संहार के ईश हैं। ये तीनों भी जिनके अंशोंसे उत्पन्न हुए हैं, वे अंशी ही श्री नारायण हैं। वे ही उसके स्वामी हैं, सबके गति हैं। वे ही गुरुओं के गुरु हैं, वे ही सब शासकों के सम्राट् हैं। उन्हीं का आदेश पालन करनेवाले ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा अन्य गणों

है, जिस प्रकार वस्त्र में ताने बाने का सूत ओत-प्रोत है, जिनके अंशों से ही जगत् के जीवों के जन्म, उनकी स्थिति और विनाश होते रहते हैं। यह सम्पूर्ण लोक उनके इसी प्रकार अधीन है जैसे बैल नाथ के अधीन होता है।"

के पति हैं। वे विश्व मे उसी प्रकार ओत प्रोत है जैसे घट में मिट्टी, कुंडल मे सुवर्ण, वस्त्र मे सूत तथा शक्कर के खिलौनों में शक्कर ओतप्रोत है। वे सर्वेश्वर ही सम्पूर्ण प्राणियो को घुमा रहे हैं।"

दूतों ने पूछा—महाराज ! वे कैसे घुमा रहे हैं ?

शीघ्रता के साथ यमराज ने कहा—वे कैसे घुमा रहे हैं, यह भी कोई प्रश्न है। कलंदर बंदर को कैसे नचाता है। हाथीवान् हाथी को कैसे घुमाता है। ऊँट वाला ऊँट की नाक में नकेल डाल कर जैसे जहाँ चाहता है ले जाता है। किसान बैलों को नाथ कर जैसे मनमाने ढंग से चलाता है। उसी प्रकार वर्णाश्रम रूप नामों से वेद रूप रस्सी में बाँधकर नारायण रूप स्वामी जीवों को जैसे चाहता है वैसे ही घुमाता है। सभी प्राणी विवश होकर उसी के संकेत पर नाच रहे हैं। उसकी इच्छा के विरुद्ध कोई तिलभर भी इधर उधर नहीं चल सकता।

दूतों ने आश्चर्य से पूछा—"तो क्या आप उन्हीं की आज्ञा से जीवों को पकड़ पकड़कर मँगाते रहते हैं। आप भी स्वतन्त्र नहीं हैं ?"

यमराज ने बातपर बल देते हुए कहा—"अरे, मैं क्या भैया ! जितने ये इन्द्र, वरुण, कुबेर, निर्ऋति, अग्नि, शिव, वायु, चन्द्र, सूर्य, ब्रह्मा, द्वादशआदित्य, विश्वेदेव, वसुगण, मरुद्गण, साध्यगण, सिद्धगण, तथा रुद्रदेव के गण हैं, इनके अतिरिक्त तमोगुण से रहित भृगु आदि महर्षि प्रजापति वैवस्वत आदि मनु तथा सत्य प्रधान देवता गण कोई भी उनकी लीला का कुछ भी मर्म नहीं जानता, वे ही सब के स्वामी हैं।"

दूतों ने पूछा—"प्रभो ! वे कहाँ रहते हैं और उनके दर्शन कैसे हो सकते हैं ?"

यमराज हँसकर बोले—"अरे, भैया! उनका कोई एक स्थान थोड़े ही है, वे तो सर्वव्यापक हैं सर्वज्ञ हैं। वे प्राणि-मात्र के अन्तःकरण में साक्षी रूप से स्थित हैं। जीव उन्हें इन्द्रिय, मन, प्राण, हृदय, अथवा वाणी आदि किसी के द्वारा भी जानने में समर्थ नहीं हो सकते।"

दूतों ने पूछा—"भगवन्! जब सब प्राणी उन्हीं के प्रकाश से प्रकाशवान् हैं, तो जीव उन्हें क्यों नहीं देख सकता?"

यमराज बोले—"अरे, भैया! यह तो मोटी बात है। अति दूर या अति समीप की वस्तु दिखाई नहीं देती। प्रयाग से हम वाराणसी में क्या हो रहा है, इसे सूर्य और चक्षु के रहते हुए भी नहीं देख सकते। जिन नेत्रों से सब को देखते हैं उन्हीं में लगे काजल को नेत्र नहीं देख सकते। और तो जाने दो जिस चक्षु इन्द्रिय द्वारा सब को प्रत्यक्ष देखते हैं, उस अपने प्रकाशक चक्षु इन्द्रिय से रूपवान् पदार्थ नहीं देख सकते हैं। उसी प्रकार सब के अन्तःकरण में स्थित रहने पर भी वे मन, बुद्धि तथा इन्द्रियों के द्वारा दिखाई नहीं देते।

दूतों ने कहा—"तो भगवन्! वे एक हैं या अनेक? हमारे सम्मुख तो वे परम मनोहर अत्यन्त रूपवान् सर्वगुण सम्पन्न तथा सुन्दर स्वभाव वाले ४ महापुरुष प्रकट हुए थे। वे सब नारायण थे या उनमें से कोई एक थे अथवा उन चारों से विलक्षण कोई अन्य नारायण हैं?"

हँस कर यमराज ने कहा—"अरे, पगलो! वे तो श्री मन्नारायण के पार्षद थे। वे लोग भी भगवान् के ही समान चारों भुजाओं में शंख, चक्र, गदा और पद्म को धारण करने वाले, वनमाला पहिननेवाले, पीताम्बर ओढ़ने वाले तथा दिव्य विमानों में विहार करने वाले होते हैं।"

दूतों ने पूछा—"महाराज, जब हम वहाँ गये थे, तब तो वे लोग वहाँ थे नहीं। ज्योंही हम उस पापी को बाँधकर ले चलना चाहते थे, त्योंही "नारायण" इन चार शब्दों को सुनते ही वे सहसा आ कहाँ से गये?

यमराज ने हँस कर कहा—"भैया! उनका आना जाना क्या, वे तो सदा सर्वदा इसी प्रकार संसार में घूमते ही रहते हैं, चक्कर लगाते रहते हैं?"

यमदूतों ने पूछा—"प्रभो! इस प्रकार विश्व में भ्रमण करने का उनका कारण क्या है?"

यमराज बोले—'देखो भैया! वे इस बात को देखते रहते हैं कि विष्णु भक्त को कोई सता तो नहीं रहा है, वैष्णव को कोई क्लेश तो नहीं दे रहा है। वे देववन्दित दुर्दर्श स्वरूप परम अद्‌भुत विष्णुदूत भगवद्‌भक्त मनुष्यों को उनके पर पक्षियों से, मुझसे, अग्नि आदि मारक वस्तुओं से सर्वत्र सुरक्षित रखते हैं।

दूतों ने पूछा—"उन भगवान् को हम इन्द्रिय आदि के द्वारा देख नहीं सकते तो फिर उनके गुणकर्म को आज तक किसी ने किसी अन्य साधन से जाना भी है?"

इस पर यमराज बोले—"उनके विषय में निश्चित रूप से कोई कुछ भी कहने में समर्थ नहीं। यद्यपि, देवता, सिद्धगण ये सब सत्व प्रधान ज्ञानी पुरुष भी उनके विषय में "ऐसा ही है" इस बात को दृढ़ता के साथ नहीं कह सकते, तो फिर तमोगुण प्रधान असुर, राक्षस, दैत्य, दानव, गुह्यक चारण, विद्याधर तथा मनुष्य आदि तो कह ही क्या सकेंगे।"

यमदूतों ने कहा—"तब तो प्रभो! आज तक संसार में कोई उस परम गुह्य परम दुरूह दुर्बोध भागवत धर्म का

ज्ञाता ही न हुआ होगा ?' किसी ने उसे जब जाना ही नहीं, तो उसके विषय में क्या कहे और कैसे प्रयत्न करे ?

यमराज जी ने दृढ़ता के साथ कहा—क्यों जाना क्यों नहीं ! पूर्ण रूप से न सही, तो भी इस धर्म के ज्ञाता कुछ लोग हैं १२ के नाम तो मैं ही जानता हू, जो इस धर्म के जानने वाले परम भागवत पवित्र वैष्णव है ।

यमदूतों ने पूछा—"महाराज ! यदि हम उसके सुनने के अधिकारी हों और कोई परम गोपनीय बात न हो तो हम सुनना चाहते है, वे १२ भागवत धर्म के ज्ञाता कौन कौन हैं ? उनके नाम हमें बता दे ?"

यमराज बोले—देखो, लोक पितामह भगवान् ब्रह्मा, वीणा धारी देवर्षि नारद राम नाम के अनन्य उपासक श्री शिवजी ऊर्ध्वरेता माया प्रपंच से सर्वदा विमुक्त सनत् कुमार, ज्ञानावतार भगवान् कपिल आदिराज भगवान् स्वयंभूमनु, भक्ताग्रगण्य असुर वंशावतंस श्री प्रह्लादजी जीवन मुक्त राजर्षि जनक, बालब्रह्मचारी गंगापुत्र भरतवंश के केतु श्री भीष्म पितामह, और अवधूत शिरोमणि परमहंसावतंस श्रीशुकदेव जी ये इस धर्म के ज्ञाता हैं, और १२वाँ मुझे भी समझ लो ।"

यमदूतों ने पूछा—"तो प्रभो ! आप भी वैष्णव हैं ?"

यमराज ने कहा—"कैसे कहूँ भैया ! मैं वैष्णव हूँ, किन्तु श्री विष्णु भगवान् मेरे उपास्यदेव हैं, अतः मुझे भी लोग वैष्णव कहते हैं ।"

दूतों ने कहा—"प्रभो ! वैष्णव तो कभी किसी को पीड़ा नहीं पहुँचाते । आप तो रात्रि दिन जीवों को मरवाते ही रहते हैं

फिर यदि आप वैष्णव हैं, तो आपकी मुक्ति क्यों नहीं हुई? आप इस मार काट में क्यों फँसे हुए हैं?'

इस पर गंभीर होकर यमराज बोले—'देखो, भैया! वैष्णव अपने लिए कुछ नहीं करता। वह जो करता है, भगवत् सेवा समझ कर करता है। भगवान उसे जिस कार्य में भी नियुक्त करदें, उसे ही उनकी सेवा समझ कर श्रद्धा से करता रहता है। रही मुक्ति की बात, सो वैष्णव तो बँधा ही नहीं। मुक्ति तो वह चाहे, जो बँधा हुआ हो। यह विश्वब्रह्माण्ड उन्हीं श्रीमन्नारायण का लीला विलास है भगवान अपने भक्त को जहाँ रखना चाहें भक्त वहीं प्रसन्नता से रहता है। उनकी आज्ञा का पालन करना ही अपना परम धर्म समझता है।

यमदूतों ने कहा—"महाराज! हमें भी कुछ भागवतधर्म का यत्किंचित मर्म समझा दें।"

इस पर यमराज ने कहा—"भैया! इस लोक में भगवान् के नामोच्चारण आदि के सहित किया हुआ भक्ति योग ही मनुष्यों का सबसे प्रधान धर्म माना गया है। तुम्हें अधिक बताने की आवश्यकता नहीं, तुमने अपनी आँखोंसे आजप्रत्यक्ष ही देख लिया कि कितना पापी अजामिल नामोच्चारण के कारण मृत्यु पास से विमुक्त हो कर परम पावन और पूजनीय बन गया। इसलिये समस्त पापों को समूल नाश करने के निमित्त भगवान् के गुण कर्म सम्बन्धी नामों का कीर्तन करना ही पर्याप्त साधन है। इससे बढ़कर न कोई धर्म है, न पापों का सर्वोत्कृष्ट अमोघ दूसरा कोई इसके अतिरिक्त प्रायश्चित्त है। इसलिये जिसे भगवत् धर्म में दीक्षित होना हो, उसे सब प्रयत्नों से भगवान् का नाम कीर्तन करना चाहिए। नाम कीर्तन में जो विघ्न करे, वह कितना भी प्यारा क्यों न हो, उसे ही परित्याग कर देना चाहिए। जिस

स्थान में भगवन्नाम संकीर्तन में बाधा हो वह स्थान कितना भी सुविधापूर्ण क्यों न हो उसे छोड़ देना चाहिये। जो नाम संकीर्तन मे सहायक न हो उन सम्बन्धियों से कोई सम्बन्ध न रखना चाहिए। नाम ही कर्तव्य हो नाम ही जीवन का आधार हो, कृष्ण कीर्तन ही अपना प्रधान आहार हो, नाम संकीर्तन ही अपना सर्वस्व हो। भगवान् को छोड़ कर अन्य शब्दों का उच्चारण करना ही उचित नहीं। यही भागवत धर्म है। भगवान् के नामों का कीर्तन करना उनकी सरस मधुमय कथाओं का नित्य नियम से श्रवण करना। उन्हीं को अपना सब सौंप देना यही परम धर्म है। यही प्राणिमात्रका प्रधान कर्तव्य है।

इस पर यमदूतों ने कहा—"महाराज! जब भगवन्नाम का इतना भारी माहात्म्य है, तो इतने बड़े बड़े ऋषि महर्षि नाम संकीर्तन को इतना अधिक आदर न देकर बड़े बड़े यज्ञ यागों में क्यों फँसे रहे? क्यों उन्होंने अनेक पापों के अनेक कठिन कठिन प्रायश्चित्त बताये हैं?"

यमराज ने उदासीनता के साथ कहा—"अब भैया! बड़ों की बड़ी बातें हैं। इस विषय में हम कह ही क्या सकते हैं। इतना ही कहना पर्याप्त समझते हैं, उन प्रायश्चित्त विधान करने वाले महाजनों की बुद्धि भगवान् की दुरूह माया से मोहित हो गयी होगी। या यह भी सम्भव हो सकता है कि भगवन्नाम संकीर्तन के इतने बड़े माहात्म्य से अपरिचित रहे हों। इसीलिये तो उन्होंने स्वर्गादि नाशवान् फलों की बड़ाई करने वाले आपातरमणीय पुष्पस्थानीय वेद वाक्यों में चित्त फँस जाने के कारण ही भगवन्नाम संकीर्तन को छोड़कर बड़े-बड़े यज्ञ यागादि क्लेश से होने वाले कर्मों में फंसे रहे। इसलिये भैया! मैं तो कहता हूँ भगवन्नाम संकीर्तन को छोड़कर भगवान् की प्राप्ति

का इतना सरल सुगम दूसरा कोई साधन नहीं।
वैसे तो भगवन्नाम संकीर्तन का सभी युगो मे समान माहात्म्य है, किन्तु कलियुग में तो ऐसा कोई सर्वोपयोगी साधन और है ही नहीं। इसलिये जो भगवान् के नाम का कीर्तन करता है, वह मेरे शासन से बाहर का पुरुष है। वह मेरे स्वामी का सम्बन्धी है। उसके पास तुम लोग कभी भूलकर भी मत जाना।

यमदूत ने डर कर कहा—"महाराज यह तो बडी गड़बड़-सड़बड़ की बात है। हमें आप एक सूची लिखा दीजिये किन किनके पास जायँ किन किनके पास न जाँय। किन किन को पकड़ कर लावें, किन किन को दूर से ही प्रणाम कर के चले आवें।" क्योकि बिना ऐसी सूची रहे नित्य हमारी कुटाई होगी, फिर तो हम पिटने के ही हो गये।

छप्पय

गुह्य भागवत धर्म देवता सिद्ध न जानें।
फिर नर दानव दैत्य ताहि कैसे पहिचानें॥
अज शिव नारद कपिल जनक मनु बलि शुक ज्ञानी।
भीष्महु सनत् कुमार, धर्म प्रह्लाद अमानी॥
जानि भागवत धर्म कूँ, परम भागवत ये भये।
अन्य भक्त हू भक्ति तें, नाम लिये हरिपुर गये॥

के कोने-कोने को खोज आइये आपको कहीं भी अन्धकार न मिलेगा। मनुष्य के शरीर में पाप तभी तक रहते हैं, जब तक उसमें भगवन्नाम की गूँज भली प्रकार बैठती नहीं। जहाँ भगवन्नाम कानों द्वारा हृदय में पहुँचा, या जिह्वा द्वारा उसका उच्चारण हुआ नहीं, कि पाप तुरन्त वहाँ से भगने लगते है। नारायण नाम के निरन्तर कीर्तन के सम्मुख पाप टिके रहे, यह महान् आश्चर्य की बात है। नाम का आश्रय जिन्होंने भली भाँति ले लिया है, पहिले तो उनके द्वारा पाप होते ही नहीं, यदि कभी भूल से हो भी जाँय तो वे तत्काल नामोच्चारण से नष्ट हो जाते है।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! जब यमराज ने अपने भृत्यों से नारायण नाम का माहात्म्य बताया तब दूतों ने पूछा—"प्रभो! जब भगवान् के नाम का ऐसा माहात्म्य है तो लोग भगवान् का नाम लेते क्यों नहीं? वे दुःख क्यो उठाते हैं?

इसपर अत्यन्त ही दुःख के साथ यमराज ने कहा—"भैया! अब इस विषय मे क्या कहूँ? इतना ही कह सकता हूँ, यह जीवों का दुर्भाग्य है। नहीं तो भगवान् के कितने सरल नाम हैं—राम, कृष्ण, हरि, गोविन्द, मधुसूदन, मुरारी, माधव, मोहन, रघुनन्दन, यदुनन्दन श्यामसुन्दर एक से एक सुन्दर एक से एक मनोहर नाम है। जिह्वा अपने घर की है, कहीं से उधार लानी नहीं पड़ती। नाम लेने में कोई देश, जातिका, वर्णका, शुचिका, अशुचिका, कालका, पात्रका किसी भी प्रकार का नियम नहीं। सदा, सर्वदा, सर्वत्र, सब कोई सभी अवस्थाओं में भगवन्नाम का उच्चारण कर सकता है। इतने पर भी लोग भगवान् का नाम नहीं लेते। नरक की अग्नि मे पचते रहते हैं। जो अनन्त भगवान् के नामों को लेते हैं, वे

यमदूत किनके पास जायँ किनके पास न जायँ

(३६८)

जिह्वा न वक्ति भगवद्गुणनामधेयम्,
चेतश्च न स्मरति तच्चरणारविन्दम् ।
कृष्णाय नो नमति यच्छिर एकदापि,
तानानयध्वमसतोऽकृतविष्णुकृत्यान् ॥*
(श्रीभा० ६ स्क० ३ अ० २९ श्लो०)

छप्पय

दूत कहैं अब नाथ ! नियम हमकूँ बतलावैं।
जाईं न किनके पास, पकरि किनकूँ हम लावैं॥
धर्मराज तब कहैं, नाम हरि जे न उचारें।
चितमें कबहूँ चरन कमल हरिके नहिँ धारें॥
नहीं नवें सिर कृष्णकूँ, हरिचर्यातें जे विमुख।
लाओ तिनकूँ पकरिकैं, आइ उठावें नरक दुख॥

अधकार वहीं रहेगा जहाँ प्रकाश नहीं पहुँचता। कितनी भी अँधेरी रात्रि हो, कितना भी भीतर भवन हो, जहाँ विद्युत का प्रकाश पहुँचा कि जगमगाने लगा। हाथ में दीपक लेकर घर

---

* यमराज अपने दूतों से कहते हैं—"जिनकी जिह्वा भगवन्नाम और गुणों का कीर्तन नहीं करती, जिनका चित्त चित्तचोर चैतन्य के चरणारविन्दों का चिन्तन नहीं करता। जिनका सिर एक बार भी श्री कृष्ण के लिये नहीं नवता। भगवत् परिचर्या से विमुख असत् पुरुषों को तुम पकड़कर यहाँ मेरे समीप लाना।"

के कोने-कोने को खोज आइये आपको कहीं भी अन्धकार न मिलेगा। मनुष्य के शरीर में पाप तभी तक रहते हैं, जब तक उसमें भगवन्नाम की गूँज भली प्रकार बैठती नहीं। जहाँ भगवन्नाम कानों द्वारा हृदय में पहुँचा, या जिह्वा द्वारा उसका उच्चारण हुआ नहीं, कि पाप तुरन्त वहाँ से भगने लगते हे। नारायण नाम के निरन्तर कीर्तन के सम्मुख पाप टिके रहें, यह महान् आश्चर्य की बात है। नाम का आश्रय जिन्होंने भली भाँति ले लिया है, पहिले तो उनके द्वारा पाप होते ही नहीं, यदि कभी भूल से हो भी जाँय तो वे तत्काल नामोच्चारण से नष्ट हो जाते हैं।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! जब यमराज ने अपने भृत्यों से नारायण नाम का माहात्म्य बताया तब दूतों ने पूछा—"प्रभो! जब भगवान् के नाम का ऐसा माहात्म्य है तो लोग भगवान् का नाम लेते क्यों नहीं? वे दुःख क्यों उठाते हैं?

इसपर अत्यन्त ही दुःख के साथ यमराज ने कहा—"भैया! अब इस विषय में क्या कहूं? इतना ही कह सकता हूँ, यह जीवों का दुर्भाग्य है। नहीं तो भगवान् के कितने सरल नाम हैं—राम, कृष्ण, हरि, गोविन्द, मधुसूदन, मुरारी, माधव, मोहन, रघुनन्दन, यदुनन्दन श्यामसुन्दर एक से एक सुन्दर एक से एक मनोहर नाम हैं। जिह्वा अपने घर की है, कहीं से उधार लानी नहीं पड़ती। नाम लेने में कोई देश, जातिका, वर्णका, शुचिका, अशुचिका, कालका, पात्रका किसी भी प्रकार का नियम नहीं। सदा, सर्वदा, सर्वत्र, सब कोई सभी अवस्थाओं में भगवन्नाम का उच्चारण कर सकता है। इतने पर भी लोग भगवान् का नाम नहीं लेते। नरक की अग्नि में पचते रहते हैं। जो अनन्त भगवान् के नामों को लेते हैं, वे

मेरे दन्ड के पात्र नहीं हैं। जो भगवान् के शरणागत समदर्शी साधुजन हैं, उन साधुओं के पवित्र चरित्रों का स्वर्ग में देवता भी गान करते हैं। उनकी कथाओं को स्वर्ग के अमराधिप बड़ी श्रद्धा के साथ श्रवण करते हैं। ऐसे भक्तों की सदा श्रीहरि अपनी गदा से रक्षा करते रहते हैं। उन्हें कभी कोई कष्ट न हो, इसके लिये भगवान् के पार्षद सदा गुप्तरूप से आकाश मडल में विचरते रहते हैं। अतः ऐसे भगवत् भक्तों के पास कभी भूलकर भी तुम लोग मत जाना। वहाँ जाने से तुम्हें इसी प्रकार मार खानी पड़ेगी।"

यह सुनते ही यमराज के दूत घबड़ा गये और बोले—"महाराज! अब हम कान पकड़ते हैं। आपने अभी बताया कि मैं सब का स्वामी नहीं हूँ। हमें स्पष्ट बता दें आप किन-किन के स्वामी हैं?"

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! दूत उजड्ड तो होते ही हैं। उन मूर्खों को इतना भी ज्ञान नहीं था, कि भरी सभा में जहाँ सहस्रों अपराधी दंड पाने के लिये बैठे हैं, इधर-उधर बहुत से और भी पारचारक भृत्य उपस्थित हैं, ऐसे समय में ऐसा प्रश्न करना, इतने बड़े लोकपाल का अपमान करना है। किन्तु अब यमराज क्या करते, उन मूर्खों ने बिना सोचे समझे यह प्रश्न कर दिया। दूत अपने-अपने हाथों में पापियों को पकड़ने के पाश लिए हुए थे। उन्हें हाथ के सकेत से यमराज ने और समीप बुलाकर उनके कान में शनैः शनैः कहना आरम्भ किया—'देखो, भैया! मैं वैसे सब का स्वामी हूँ, किन्तु भगवद्भक्त वैष्णवों का स्वामी मैं नहीं हूँ। उनका तो मैं दास हूँ दास।"

यह सुनते ही यमदूत तो चौंक पड़े। उन्होंने कहा—"महाराज! हमें आप एक सूची बनाकर दे दीजिये जिसमें इस बात की तालिका रहे, कि इन लोगों को लाना इनको नहीं लाना।"

यमदूत किसके पास जायँ किसके पास न जायँ

इस बात को सुनकर यमराज गंभीर हो गये और उनसे बोले—"अच्छी बात है, तुम लोग अपनी-अपनी दैनन्दिनी और

मसिपूर्ण लेखनी निकालो और मैं जो बताता चलूँ उनको क्रम-वार लिखते चलो।"

इतना सुनते ही सभी ने अपने-अपने खीसाओं से दैनन्दि निकाल ली और लेखनी लेकर बैठ गये। उन सबको सावधान तत्पर और लिखने को उत्सुक देखकर धर्मराज बोले—"देखो मैं तुम्हें विस्तार से क्या लिखाऊँ, संक्षेप मे संकेत मात्र करके देता हूँ, उसी के अनुसार अनुमान लगा लेना।

देखो, १—जो भगवद् भक्त हों, २—भगवान् के नाम गुण का कीर्तन करते हों, ३—उनके अनुपम रूप का चिन्तन करते हों, ४—भगवत् शरणागत समदर्शी साधु स्वभाव के हों, ऐसे भगवत् परायण पुरुषों के पास तुम लोग कभी भूलकर भी मत जाना। समझे कुछ ?

लेखनी से शीघ्रता के साथ पूरे वाक्य लिखकर उनमे से एक बोला—"हाँ, प्रभो ! न लाने वाले को तो हम समझ गये किन्तु फिर भी भूल हो सकती है। यह और लिखा दीजिये, किन किन को लावें ?"

इसपर यमराज बोले—"अच्छी बात है लिखो—इन इन लोगों को अपनी पाश मे बाँधकर बलपूर्वक मेरे पास लाना। १—जिन परम कोमल अरुण चरण कमलों की मधुमय माधुरी का सर्वसङ्ग परित्याग प्रभु प्रेमी परमहंसगन भ्रमर के समान मत्त होकर निरन्तर पान करते रहते हैं। उस माधुरी से जो विमुख पुरुष हैं उन्हें पकडकर यहाँ अवश्य लाना। इनके अतिरिक्त, २—जो नरक द्वार रूप घरों मे मोह ममता बढ़ाकर निरन्तर असक्त बने रहते हों, ३—जिनकी जिह्वा से कभी भगवान् के सुमधुर नामों का उनके त्रैलोक्य पावन गुणों का कभी गान न होता हो, ४—जिनका चित्त चित्तचोर के चारु चरणों का चिन्तन न करता हो। ५—जिनका शिर एक बार भी भगवान् की अचल

जो भक्तापराध बन गया है, उसे आप अपने दयालु स्वभावके कारण क्षमा कर दें। हे दीनबन्धो ! हम तो आप के भृत्य हैं, आप की सेवा में सदा करबद्ध हुए उपस्थित रहते हैं। आप अपने अज्ञानी अनुचरों के अपराधों की ओर ध्यान न दें। आपके पादपद्मों मे हमारा पुनः पुनः प्रणाम हो।"

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! अब आप समझ गये होंगे। *भगवन्नाम का कितना बड़ा महात्म्य है। संसार में नाम* संकीर्तन से बढ़ कर कोई भी सुन्दर सुगम सरल साधन नहीं।'

छप्पय

नाम गान सम जगत माँहिँ साधन नहिं दूजो।
करो यज्ञ व्रत दान भले प्रेतनि कूँ पूजो॥
नाम उचारत तुरत मलिनता मनकी जावे।
माया मोह नसाय प्रेम प्रभु को हिय आवे॥
नाम कीरतन जे करैं, जाउ न तिनके ढिँग कबहुँ।
पहिले पापी रहे वे, आवें मम गृह नहिँ तबहुँ॥

शृण्वतां गृणतां वीर्याण्युद्दामानि हरेर्मुहुः ।
यथा सुजातया भक्त्याशुद्ध्येन्नात्मा व्रतादिभिः ॥❀
(श्रीभा० ६ स्क० ३ अ० ३२ श्लो०)

छप्पय

कृष्ण कीर्तन गुण गौरव जे गान करहिं नर ।
वे कबहूँ नहिं भूलि निहारें नीरस मम घर ॥
सब पापनिको एक प्राइचित मुनिन बखानों ।
होयँ नाम के रसिक उन्हें मेरो गुरु मानों ॥
यम आज्ञा दूतनि सुनी, शिरोधार्य सबने करी ।
हरि कीर्तन करिके चले, सब मिलि बोलो जयहरी ॥

जिस विषय को हम जानते नहीं उसमें प्रतीति नहीं होती, जिसमें प्रतीति नहीं, उसमें प्रीति भी नहीं। इसीलिये आदि भक्ति है श्रवण। भगवान् के नाम के माहात्म्य के श्रवण से नाम में भक्ति होती है। किसी किसी भाग्यशाली की सहज स्वाभा-

---

❀ श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! जिस प्रकार श्रीहरि के उदार चरित्रों के श्रवण तथा कीर्तन करनेवाले पुरुष का अन्त करण सहसा उत्पन्न हुई भगवद्भक्ति से शुद्ध होता है उस प्रकार कृच्छ्र चान्द्रायण व्रत आदि उपायों से कभी शुद्ध नहीं हो सकता।"

विकी भक्ति भी होती है, वे तो जन्मजन्मान्तर के भक्त हैं। नहीं तो प्राय सुनकर ही नाम गुण कीर्तन मे अनुराग होता है।

श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित् से कहते हैं—"राजन्! जब जीव का माया के गुणों मे गौरव बुद्धि हो जाती है, अनित्य जर नित्य और असत् का सत् समझने लगता है, तभी पाप बनते हैं। जहाँ श्रीकृष्ण चरणारविन्दों के रसका चसका एक बार रसना का लग गया, तहाँ ये पापोत्पादक मायिक गुण तुच्छाति तुच्छ प्रतीति होने लगते हैं। नाम प्रेमी भगवत् भक्त के समीप फिर पाप फटकने ही नहीं पाते, पिछले पाप नाम के प्रभाव से भस्म हो जाते हैं। जिनका भगवन्नाम मे प्रेम नहीं है, ऐसे विषय लालुप पुरुष अपने दापों का मार्जन करने के निमित्त प्रायश्चित्त सम्बन्धी कृच्छ्, चान्द्रायण आदि व्रत रूप कर्मों में ही प्रवृत्त होते हैं। उस समय तो उस पाप का नाश हो जाता है, किन्तु वासना बनी रहने से उसके द्वारा फिर पाप होते हैं, फिर दोषों की उत्पत्ति होती है। अत ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि मरते समय मुख से भगवन्नाम निकल जाय।"

इस पर शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! जब मृत्यु के समय ही मुख से भगवन्नाम निकलना अभीष्ट है तो अभी से कठ को कष्ट क्यों दें? झाँझ मजीरा बजा बजाकर कासे को क्यों घिसें, क्यों ढोल करताल के चक्कर मे फँसे? मरते समय एक बार राम का नाम लेकर मर जायँगे, बेडा पार हो जायगा, संसार सागर से तर जायँगे।"

इस पर सूतजी ने कहा—"महाराज, यह तो ठीक है, किन्तु मृत्यु का कोई समय तो निश्चित नहीं कि उसी समय मरना है। यह जो प्रतिक्षण श्वाँस निकलती है, इसका कुछ पता नहीं कि

फिर रोकर जावेंगे। इसलिये प्रत्येक साधक को मरने का संदेह बना हुआ है। इसमें एक साधक ने [illegible] कर गये। साँप छोड़ जाता [illegible] का घर [illegible] से कोई बन लौट आता। स्वप्न के साथ प्राणों का [illegible] होना कोई आवश्यक बात नहीं है। स्वप्न के सच या झूठ निकलते हैं। साथ छोड़ जाते नहीं आपस हैं। अतः प्रत्येक साधक पर मरने के लिए तत्पर रहकर स्वतन्त्रता पर ध्यान रखना चाहिए।

जहाँ मरते समय नाम लेने का ध्यान सा उस समय में सही अभ्यास न रहा तब मरते समय नाम कैसे आवेगा? लड़की जब विवाहित होकर अपनी ससुराल पहुँचकर आती है, तो पहुँचते ही १०-२० स्त्रियाँ मिलकर यह देखने आती हैं, कि वह भोजन कैसा बनाती है। उसका भोजन अच्छा होता है, तो सास ननद देवरानी, जिठानी सब कहती हैं। यह क्या है, लक्ष्मी है। ऐसा सुन्दर भोजन बनाती है। इतना सुन्दर भोजन उसने ससुराल आते ही तो सीख नहीं लिया। अपने घर में जब वह बची थी, तभी से उसकी माँ उसे सिखाती थी। दाल में ऐसे छौंक दिया जाता है। कढ़ी ऐसे बनती है। रायते में ऐसे बघार दिया जाता है। पकौड़ी इस प्रकार बनाई जाती है। बाल्यकाल से सीखते-सीखते जब वह विवाह के पश्चात् अपने घर जाती है, तो उस दिन सुन्दर भोजन बनने पर उसका सब श्रम सफल समझा जाता है।

'एक विद्यार्थी है, वह यह सोच ले कि प्रश्न पत्र तो मुझे परीक्षा के दिवस ही लिखने पड़ेंगे, उसी दिन लिखकर उत्तीर्ण हो जाऊँगा। अभी से रात्रि दिन परिश्रम करने की क्या आवश्यकता है, तो ऐसा सोचने वाला छात्र कभी परीक्षा में उत्तीर्ण हो सकता है? नहीं, कभी नहीं। परीक्षा से बहुत दिन पहले

उसे अभ्यास करना होगा, तभी वह परीक्षा के दिन शुद्ध-शुद्ध परीक्षा प्रश्नों का उत्तर लिख सकेगा। अभ्यास न किया होगा, तो वह उस दिन कुछ भी नहीं लिख सकता। इसी प्रकार जिसने पहले से भगवन्नामों का नियमपूर्वक लगन के साथ उच्चारण न किया हो, उसके मुख से अन्त में भगवान् का नाम निकल ही नहीं सकता।"

इसपर शौनकजी ने कहा—"अजामिल ने कब अभ्यास किया था ?"

सूतजी ने यह सुनकर अत्यन्त ही विनीत भाव से कहा—"महाभाग आप ऐसा न कहें। देखिये, वह नया लड़का जबसे पैदा हुआ। सन्तों के आदेश से जबसे उसका नाम "नारायण" रखा गया, तब से वह निरन्तर नारायण-नारायण इसी नाम का कीर्तन करता रहता था। मेरे नारायण, आओ नारायण, खाओ नारायण, जाओ नारायण, सोओ नारायण, उठो नारायण, बैठो नारायण, लेटो नारायण। कहाँ तक गिनाऊँ महाराज! वह तो रात्रि दिन नारायण नाम की रट लगाये हुए था। इसीलिये अन्त समय में उसके मुख से 'नारायण" नाम निकला।"

इसपर शौनकजी ने कहा—"उसने नारायण भगवान् का नाम तो लिया नहीं, अपने पुत्र नारायण को पुकारा था ?"

इसपर कुछ रोष के स्वर में बोले—"महाभाग! ५० बार तो मैं इसका उत्तर दे चुका हूँ। मान लो पुत्र ही को पुकारा। तो क्या वह यह नहीं जानता था कि नारायण भगवान विष्णु का भ[illegible] नाम है। वह मूर्ख तो था नहीं वेदज्ञ ब्राह्मण था। ज्ञानी, ध्यानी तपस्वी था। उसने जब साधुओं को भगवत् पूजन करते देखा तो उसे भी भगवत् प्रवृत्ति की आकांक्षा हुई। मुनिवर! कैसा भी

मनुष्य क्यों न हो सबके मन में एक छिपी वासना होती है, आत्मसमर्पण की। किसी अव्यक्त शक्ति की शरण में जाने की कोई आस्तिक भाव से, कोई नास्तिक भावसे भगवान् को पुकारते हैं। मनुष्य बिना भगवान् के विषय में सोचे रह ही नहीं सकता। किसी के हृदय में यह इच्छा तीव्र होती है, किसी के हृदय में साधारण होती है और किसी के हृदय मे अत्यंत मंद होती है। अजामिल के मन मे भी भगवत् प्रवृत्ति की वासना छिपी हुई थी, अव्यक्त थी साधुओ को देखकर वह व्यक्त हो गई। वह साधुओं की शरण गया। महाराज ! जो पापी अपने को हृदय से पापी समझता है, उसका उद्धार तो हो जाता है, किन्तु जो पाप करने पर भी अपने को धर्मात्मा समझता है, अपने पाप को छिपाने के लिये यह कह देता है—अजी कितने भी पाप कर लो, जहाँ एक बार नाम लिया सब पाप नष्ट हो जॉयगे। ऐसे महापापियों का उद्धार अत्यंत कठिन है। अजामिल अपने को पापी समझता था साधुओ की पवित्र रहनी देखकर और अपने चोरी, जारी, डकैती, जूआ, हत्या आदि कर्मों को देखकर उसे भान हो गया कि मैं भगवान् का भजन करने का अधिकारी नहीं हूँ, मुझे कोई दूसरा उपाय बताया जाय, यही उसने संतो से प्रार्थना की। सन्तों ने बताया तो उसे भजन ही, किन्तु घुमा फिराकर उसकी पात्रता देखकर बताया। इसीलिये अंत समय मे उसके मुखमे भगवन्नाम निकल गया। यह मैं पीछे कई बार इसी प्रसंग में बता चुका हूँ, कि नाम के साथ उसका अर्थ रहता ही है। दूधके साथ उसकी धवलता, अग्नि के साथ जैसे दाहकता लगी हुई है वैसे ही गौ शब्द के साथ गौ का सम्पूर्ण भाव जुटा हुआ है। इसी प्रकार नारायण नाम मे नारायण के सब गुण, सब अर्थ साथ ही थे। इसीलिये नाम का फल हुआ।"

इस पर शौनकजी ने कहा—"सूतजी ! आप अपनी ब को सिद्ध करने के लिये अर्थ का अनर्थ कर देते हैं मानत हैं शब्द के साथ उसका अर्थ रहता ही है। उसने 'नारा यण' शब्द कहा तो नारायण का अर्थ हुआ, दो हाथ दो हँस मुख सुन्दर सा प्यारा-प्यारा उस वेश्या का बच्चा, मिल का दशवाँ पुत्र। यह तो मायिक पदार्थ था। उसके उस मायातीत श्रीमन्नारायण की प्राप्ति कैसे हुई ? नाम की मा हम मानते हैं।"

इस पर सूतजी ने कहा—"मुनिवर ! इस विषय को गम्भीरता से सोचिये। उस वेश्या के ६ पुत्रों के नाम तो खिच्चू, बिच्चू, रज्जू, धुरई आदि सुन ही लिये थे, यदि सब पुत्रों के एक से ही होते तो सत उससे नारायण नाम रखने कहते ही क्यों। जब उसने साधन पूछा और सत ने होने पुत्र का नारायण नाम रखने का आदेश दिया, तभी शब्द से यह भान हो गया कि नारायण नाम भगवान् का है उसी मिस से भगवान् का नाम उच्चारण होगा। इस मत भी तो जानते ही थे। अजामिल भी संभवतया होगा, कि नारायण भगवान् का नाम है। क्योंकि संसारी अपने पुत्र पुत्री का नाम राम, कृष्ण, नृसिंह, हरि, दुर्गा, कमला, भवानी आदि रखते हैं तो मूल में तो भगवान् की भावना रहती है। इसलिये नारायण शब्द का अर्थ पुत्र नहीं है। नारायण शब्द का अर्थ नारायण ही है। इसलिये इतना पापी होने पर भी उसकी नाम लेने से सद्गति गई।"

इस पर शौनकजी ने कहा—"महाभाग ! अजामिल की मुक्ति हो गई होगी, किन्तु आप की इस कथा से संसार

अनर्थ होने की संभावना है, इससे पापों को प्रोत्साहन मिलेगा।"

आश्चर्य के साथ सूतजी ने पूछा—"भगवन् ! यह आप कैसी बातें कर रहे हैं ? मैं तो नाम का माहात्म्य सुनाकर, भगवन्नाम का महत्व सिद्ध करके, उसका घर घर प्रचार और प्रसार करना चाहता हूँ और आप कह रहे हैं कि इससे पापों को प्रोत्साहन मिलेगा। यह कैसे ?"

शौनकजी ने कहा—"यह इसलिये कि लोग समझेंगे कि जब नाम का इतना महात्म्य है, तो फिर हम भर पेट पाप क्यों न करें। दिन भर पाप करेंगे, रात्रि में एक दो बार नाम ले लेंगे। आप ही कहते हैं नाम में वह शक्ति है कि उतने पाप मनुष्य करना भी चाहे तो नहीं कर सकता। एक तो लोगों की स्वभाव से ही पापों में प्रवृत्ति है, फिर आप की ये कथायें उन्हें प्रमाण के लिये मिल जायँगी। तब तो वे सब खुलकर खेलेंगे, पहिले से भी अधिक पाप करेंगे, तो यह नाम का प्रचार हुआ या पाप का प्रसार ?

यह सुनकर सूतजी बहुत गम्भीर हो गये और बोले—"मुनिवर ! आपका कहना यथार्थ है। पापी लोग अपने पापों को छिपाने और अपने को बड़ा सिद्ध करके के लिये महापुरुषों के वचनों को प्रमाण के लिये खोजते रहते हैं। जहाँ उन्होंने अपने अनुकूल कुछ वाक्यों को देखा, कि झट उनकी पूर्वापर की सगति मिलाये बिना उपस्थित कर देते हैं। ऐसे पापियों के लिये शास्त्र का उपदेश नहीं होता। अत्यन्त ज्ञानियों के लिये अत्यन्त पापी, मूढ पुरुषों के लिये शास्त्रीय साधन नहीं होते। ज्ञानी तो साधनों से परे ही हैं। उन्हें साधनों की अपेक्षा ही नहीं। जो अत्यन्त मूढतम हैं,

अस्त्र मात्र समझते हैं, जो नाम का आश्रय लेकर शास्त्र विहित धर्म कर्मों का आलस्य वश परित्याग कर देते हैं, वे तो नारकीय जीव हैं। वे तो नाम क आश्रय से अपने पापों की पुष्टि चाहते हैं, इससे उनके पाप और भी पुष्ट होते है। जो भगवान् के नामो को लेकर चौराहों पर बैठकर भीख माँगते हैं, वे ऐसा ही करते हैं जैसे चिन्तामणि रत्न को कोई शौचालय मे लगा दे। शौचालय में लगा देने से उसका उपयोग तो होगा ही, किन्तु यह उसका यथार्थ उपयोग नहीं है, भगवान् का नाम व्यर्थ तो जाने का नहीं। पात्र भेद से देर मे, सवेर मे, फल तो वह अवश्य देगा ही किन्तु योग पात्र में उत्तम से उत्तम फल देगा। सूयनारायण उदय होने पर अन्धकार तो सभी का नाश करेंगे, किन्तु जो अधिक खुला स्थान होगा, वहाँ अधिक प्रकाश दिखाई देगा, जो अधिक घिरा हुआ बन्द स्थान होगा वहाँ कम प्रकाश दृष्टि गोचर होगा। पापी भी नाम लेले तो धीरे-धीरे उसके भी पाप क्षय होंगे और क्षय होते-होते कभी उसे पापो से ग्लानि होगी, वह अपने किये कर्मों पर कभी न कभी दुखी होगा, पछतावेगा। जहाँ हृदय मे सच्चा पश्चात्ताप हुआ नहीं कि फिर पापों मे प्रवृत्ति होगी ही नहीं। जब तक पापो मे प्रवृत्ति है तब तक समझना चाहिये इसे नाम से अधिक पाप प्यारे हैं। भगवान् से अधिक विषयों मे इसकी प्रीति है। ऐसे आदमी को और भी अधिक से अधिक नाम लेना चाहिये। शास्त्रों मे यह तो कभी भी, कहीं भी नहीं कहा कि खुलकर पाप करो और नाम लो। बार-बार यही कहा गया है, कि तुमसे भूलमे पाप बन भी गये हैं, तो अब उनके लिये हृदय से पश्चात्ताप करो, अनन्यभाव से भगवान् का भजन करो। भगवान् और उनके नामों मे सम्यक् व्यवस्थिति करो, तुम्हारे सब पाप नष्ट हो जायँगे। आगे पाप करना भी

चाहो तो प्रवृत्ति न होगी। अजामिल का ही देख लीजिये, बच्चे के बहाने ही नारायण नारायण कहते-कहते उसका अन्तःकरण पवित्र हो गया। फिर नाम माहात्म्य सुनकर वह सर्वसङ्ग विनिर्मुक्त महात्मा बन गया। अतः नाम व्यर्थ कभी भी न जायगा। इस इतने बड़े उपाख्यान के कहने से मेरा यह अभिप्राय कभी भी नहीं है कि तुम दिन भर पाप करो और एक बार नाम ले लो। मेरा अभिप्राय इतना ही है कि जीव जन्म से ही पाप पुण्य साथ लेकर उत्पन्न हुआ है। पापों में प्रवृत्ति उसकी स्वाभाविक है। पापों में प्रवृत्ति न होती तो जन्म ही क्यों लेता। हम रोज भगवान् के सामने कहते हैं, मैं पापी हूँ, पापकर्मा हूँ, पापात्मा हूँ, पाप से ही उत्पन्न हुआ। आप सर्वपापों को हरने वाले हरि हैं अतः मेरे पापों को भी नाश कर दीजिये। जिनका पापों को हरने वाला ऐसा अतिमधुर दयामय नाम है, क्या वे कुछ भी सहायता न करेंगे? इस कथानक से मेरा तात्पर्य इतना ही है कि भगवान् बड़े भक्तवत्सल हैं। उनकी शरण में जाने पर पिछले पाप नष्ट हो जाते हैं। आगे पापों में प्रवृत्ति नहीं होती। देखिये, यह अजामिल मातृपितृ भक्त था। पूर्वजन्म के संस्कारों के वशीभूत होकर कुसंस्कारों के उदय होने से वह वेश्या के चक्कर में फँस गया। तो भी भगवान् का नाम नारायण है, इतना तो उसे ज्ञात ही था ज्यों ही उसने नारायण पुकारा एक पग भगवान् की ओर बढ़ाया। भक्त को असहाय, निर्बल समझकर, ९९ पग स्वयंबढ़कर अपनी भक्तवत्सलता के कारण, नाम की महिमा स्थापित करने के निमित्त भगवान् ने दौड़कर उसे अपना लिया। भगवान् ने कृपा कर दी। उसे अपना लिया। इसीलिये राजन्! सभी पुराण इस बात पर बल देते हैं कि नाम संकीर्तन में कोई नियम बन्धन नहीं। सभी जाति वर्ण के लोग सब काल में सब स्थानों

का प्रचार न करके नामापराधों का प्रचार कर रहे हैं। इन नामापराधों की गणना में इतना ही तात्पर्य है कि भरसक स्वधर्म पालन करते हुए शुद्ध चित्त होकर दुर्गुणों का परित्याग करके ही नाम सङ्कीर्तन करना चाहिये।"

इस पर शौनकजी बोले—"महाभाग हमारी शका का समाधान हो गया।"

यह सुनकर हँसते हुए सूतजी बोले—"महाभाग ! आपको क्या शङ्का होनी थी, आपने तो लोकहित के लिये शङ्कायें उठाई थी। भगवन्नाम माहात्म्य के सम्बन्ध में मेरे गुरुदेव ने राजा परीक्षित से यह अजामिल का पावन आख्यान कहा था। इस आख्यान की प्राचीनता और परम्परा सुनने के अभिप्राय से राजा परीक्षित् ने श्रीशुकदेवजी से पूछा—"भगवन् ! यह इतिहास आपने सुना कहाँ से, किसी प्रामाणिक व्यक्ति के मुख से सुना या ऐसे ही किसी चलते फिरते विनोदी कथक्कड से ?'

इस पर श्रीशुक ने कहा—"राजन् ! मैंने ऐसे वैसे अहरे गहरे पचकल्यानी से यह इतिहास नहीं सुना है। जो सब ऋषियों से सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं, जो दक्षिण दिशा के स्वामी हैं, जिन्होंने इतने भारी खारी समुद्र के अथाह जल को एक चुल्लू में ही पान कर लिया था। उन भगवान् अगस्त्य के मुख से मैंने यह पुण्यप्रद इतिहास सुना था।"

राजा ने पूछा—"भगवन् ! देश का भी बड़ा प्रभाव पड़ता है, कहीं कीकर आदि देशों में तो आपने नहीं सुना ?"

इस पर कड़ककर शुकदेवजी बोले—"नहीं, राजन् ! मैंने तो पुण्यातिपुण्य मलयाचल पर्वत पर सुना था।"

इस पर राजा ने फिर कहा—"भगवन् ! कैसे भी योग्य महापुरुष हों । कैसा भो पवित्र देश क्यों न हो । यदि समय उचित न हो, तो उस बात का कोई महत्व नहीं रहता । हँसी में न जाने हम कितनी असत्य बातें कह जाते हैं । यदि ऐसी ही हँसी विनोद के समय यह चरित्र आप को प्रसन्न करने के लिये भगवान् अगस्त्य ने कह दिया हो, तो इसका कोई मूल्य नहीं रह जाता ।"

इस पर श्रीशुकदेवजी ने कहा—"नहीं राजन् ! ऐसी बात नहीं है । भगवान् अगस्त्यने परम पवित्र मलयाचल पर्वत पर गम्भीर होकर उस समय यह इतिहास कहा था, जब कि वे भगवान् की पूजा कर रहे थे । भगवान् शालग्राम को हाथ में लेक —मानों शपथपूर्वक—यह सब कहा था । इसमें अविश्वास के लिये स्थान ही नहीं ।"

यह सुनकर महाराज परीक्षित ने कहा—"भगवन् ! इस नाम महात्म्यवर्धक इतिहास को सुनकर मुझे बड़ी आन्तरिक शाँति हुई । अब मुझे भी विश्वास होने लगा है कि घोर ब्रह्म शाप से मेरा भी उद्धार हो जायगा । भगवन् ! पहिले आपने सृष्टि का क्रम अत्यन्त संक्षेप में ही वर्णन किया था । अब मैं उसी को विस्तारपूर्वक सुनना चाहता हूँ । यदि मैं उसके श्रवण का अधिकारी होऊँ, तो कृपा करके मुझसे उसे कहिये ।"

यह सुनकर श्री शुकदेवजी बड़े प्रसन्न हुए । राजाके प्रश्न का अभिनन्दन किया, उनकी प्रशंसा की और हँसते हुये मेघ गम्भीर

वाणी से कहने लगे —"राजन् ! मैं आपके प्रश्नों का उत्तर दूँगा । आप मेरी ओर ही चित्तवृत्ति को लगाकर आगे के पुण्य प्रसग को श्रवण कीजिये ।

छप्पय

कहैं परीक्षित प्रभो ! सुनाई सरस कहानी ।
कथा अजामिल सुनी नाम महिमाहू जानी ॥
ताप शाप सताप नाम ध्वनि सुनि भगि जावें ।
सब मिलि ऐसे भगे लौटिके फिर नहि आवें ॥
सुनी नाम महिमा प्रभो ! प्रकृत कथा चालू करो ।
सृष्टि प्रसग सुनाइकें, मेरे सब सशय हरो ॥

प्रचेताओंके पुत्र दक्ष का प्रजा लिये तप

(३७०)

तमबृंहितमालोक्य प्रजासर्गं प्रजापतिः ।
विन्ध्यपादानुपव्रज्य सोऽचरद् दुष्करं तपः
(श्रीभा० ६ स्क० ४ अ० २०

छप्पय

बोले शुक—सुनु नृपति ! दक्ष प्राचेतस प्रकटे ।
करी सृष्टि तिन विविधि देव नर कर्मनि लिपटे ॥
तऊ सृष्टि नहिं बढ़ी दक्ष अतिशय घबराये ।
विन्ध्याचल के निकट तपस्या हित तब आये ॥
अघमर्षण इक विमल वर, तीर्थ ताहि तट जाइकें ।
कीन्हों तप अति उग्र तहँ, कन्दमूल फल खाइके ॥

भगवान् ने जिस व्यक्ति को जिस कार्यके लिये भेजा है, उसी कार्य में अत्यंत ही आसक्ति होगी । जिसकी नियुक्ति प्रचार के लिये हुई है, वह अनेक युक्तियों से, विविध नाना प्रकार की क्रियाओं से अधर्म को ही धर्म कर उसका प्रचार जनता में करेगा । यदि इस

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! प्रचेताओं के पुत्र दक्ष ने जब प्रजासर्ग की वृद्धि न देखी, तब वे विन्ध्याचल जाकर दुष्कर तप करने लगे ।"

की जीवों की कर्मों में आसक्ति नहीं, तब तो यह सृष्टि का ढर्रा आगे चले ही नहीं, किन्तु यह सृष्टि तो अनादि काल से ऐसी ही है और अनंत काल तक ऐसी ही रहेगी, क्योंकि भगवान् इससे खेलते हैं। प्राणिमात्र उनके खिलौने हैं। शुभाशुभ कर्मों की आसक्ति द्वारा ही यह संसार चक्र चल रहा है।

श्री सूतजी कहते है—"मुनियो! राजा परीक्षित् ने भगवान् श्री शुकसे आदि राजा महाराज स्वायंभुव मनुके वंश का विस्तार पूछा था। इस पर मेरे गुरुदेव ने उन्हें मनु पुत्र प्रियव्रत और उत्तानपाद के वंश का उस वंश में होनेवाले मुख्य मुख्य प्रसिद्ध प्रसिद्ध राजाओं का वर्णन किया। प्रियव्रत के वंश का वर्णन करते करते उनके वंश के प्रसिद्ध धार्मिक राजा विरज तक के वंश के पुरुषों के चरित्र सुनाये। महाराज उत्तानपाद के पुत्र परम भागवत ध्रुवजी हुए। वे महान् भगवद्भक्त थे। वे अब तक ध्रुव लोक मे निवास करके महाराज उत्तानपाद के यश को बढ़ा रहे हैं। उनके पुण्य यश का वर्णन प्रचेताओं के यज्ञ मे नारदजी ने किया था। इसपर महाराज परीक्षित् ने पूछा—"महाराज! ये प्रचेता कौन थे?" इस प्रश्न को सुनकर ध्रुवजी से लेकर प्रचेता तक के उत्तानपाद वंश का वर्णन भगवान् शुक ने किया। अंत मे बताया कि उन दस प्रचेताओं को सिन्धु समुद्र के संगमपर तपस्या करते समय भगवान् के दर्शन हुए। भगवान् ने उन्हें आज्ञा दी कि तुम लोग कंडु मुनि के गर्भ से प्रम्लोचा नामक अप्सरा मे जो कन्या उत्पन्न हुई है, जिसका पालन वृक्षों ने किया है, इसोलिए वह वार्क्षी के नाम से प्रसिद्ध है, उसके साथ पाणिग्रहण कर लो। भगवान् की आज्ञा से उन्होंने उस कन्या से विवाह कर लिया। उसी से प्रचेताओं से वे ही ब्रह्मा के पुत्र प्रजापति दक्ष—शिवजी के शाप से—आकर

फिर उत्पन्न हुए, जिन्होंने इतनी सृष्टि बढ़ायी की इस मन्वन्तर मे सम्पूर्ण संसार को फिर से जीवों द्वारा भर दिया। इतना कह कर यह कथा प्रसंग छोड़ दिया था। अब राजा परीक्षित् फिर वहीं से प्रश्न उठाते हैं। उन्होंने श्रीशुकसे कहा—"भगवन्! आपने बताया था, कि चाक्षुस् मन्वन्तर में जो ब्रह्मा के पुत्र दक्ष थे, उन्होंने इस स्वायम्भुव मन्वन्तर मे देवता, असुर, मनुष्य, सर्प, मृग, पशु, पक्षी आदि की सृष्टि की। सो, प्रभो! मैं इस सृष्टि क्रम को विस्तार के साथ सुनना चाहता हूँ। आपने पहले तो अत्यन्त ही संक्षेप मे संकेत मात्र ही कर दिया था। अब इस विषय को विस्तार से वर्णन करें।"

यह सुनकर हँसते हुए भगवान शुकने कहा—"राजन्! तुम बार बार सृष्टि का ही प्रश्न क्यों पूछते हो? इस नीरस प्रसङ्ग मे आपको क्या आनन्द आता है?"

यह सुनकर राजा परीक्षित् बोले—"भगवन्! नीरस हो चाहे सरस! सोते जागते उठते बैठते आठों पहर यह सृष्टि तो हमारे हृदय पर नृत्य करती ही रहती है। यह सृष्टि चक्र ही तो हमे घुमाता रहता है। इसका मूल कारण मालूम हो जाय तो, इस चक्कर से छूट भी जॉय। फिर भगवन्! सुन्दर चित्ताकर्षक बच्चों को देखकर उनकी माता के विषय में जिज्ञासा होना स्वाभाविक ही है। यह चित्र विचित्र रंग की चित्त को हठात् अपनी ओर खीचनेवाली सृष्टि स्वतः अपने आप ही तो उत्पन्न हो नहीं गयी। भगवान् की शक्ति से ही तो यह उत्पन्न होती है और बढ़ती है। उस शक्ति का परिचय हो जाने से शक्तिमान् का भी पता लग जायगा। सर्व शक्तिमान् तो श्रीहरि ही हैं। अतः मेरा प्रश्न इन कंकड पत्थर, हाड़ मांस के देहवाले प्राणियों के सम्बन्ध को लेकर नहीं है मैं तो सृष्टि प्रश्न

सुष्टिमान् के ज्ञान के निमित्त पूछता रहता हूँ।"

राजा की ऐसी बात सुनकर भगवान् शुक हँस पड़े और बोले—"राजन्! मैं सब समझता हूँ आप कृष्ण कथाश्रय सम्बन्धी प्रश्न को छोडकर अन्य इधर उधर के विषय सम्बन्धी प्रश्न कर ही नहीं सकते। अच्छी बात है, सुनिये, मैं स्वायम्भुव मन्वन्तर की सृष्टि का संक्षेप मे आपका वृत बताता हूं। महाराज! विस्तार से इस इतनी बडी सृष्टि का वर्णन तो ब्रह्माजी की समस्त आयु मे भी नहीं हो सकता। हॉ तो महाराज प्राचीनबर्हि—जिन्हें नारद जी ने पुरजन पुरजनी का उपाख्यान सुनाकर ज्ञान प्रदान किया था—उनके १० प्रचेता पुत्र हुए, पिता की आज्ञा से वे दशो समुद्र के जलमे घुसकर तपस्या करने लगे। उनके तप से भगवान् ने प्रसन्न होकर वार्क्षी कन्या से विवाह करने को कहा। वे ज्यो ही समुद्र जल से निकलकर आये, तो देखा सम्पूर्ण पृथ्वी पर झाड झकार खड़े हैं। वृक्षों की सृष्टि के अतिरिक्त और कोई सृष्टि दिखायी ही नहीं देती तब तो उन्हे कुछ क्रोध-सा आ गया। अपने तपसे अग्नि उत्पन्न करके वे समस्त वृक्षों को जलाने लगे। बहुत से वृक्ष जल गये। पृथ्वी वृक्षों के जल जाने से बसने के योग्य सुन्दर हो गयी, किन्तु प्रचेता सम्पूर्ण वृक्षो का नाश करने पर ही उतारू थे। उनकी ऐसी हठ देखकर बूढे बाबा ब्रह्माजी अपने सफेद हंस पर बैठकर, सफेद पगड़ी बॉधकर, सफेद पुष्पो की माला पहिनकर, सफेद कमल घुमाते हुए, दौड़कर प्रचेताओं के पास आये और बोले—"अरे, राजकुमारो! तुम लोग यह क्या उपद्रव मचा रहे हो? छिः छिः! ऐसा क्रोध क्या? भैया! तुमतो प्रजापति हो, सृष्टि के भर्ता हो। भर्ता उसे कहते हैं जो भरण पोषण करे। पति उसे कहते हैं, जो कष्टो से रक्षा करे पालन करे।

जैसे माता पिता बालको के पति हैं। बच्चों की कैसी रेख देख रखते हैं। माता बेटी तो रहती है कथा में, किन्तु उसकी दृष्टि रहती है बच्चे की ओर। उसकी गतिविधि पर ध्यान उसका जमा रहता है। जब तक सुख-पूर्वक खेलता रहता है, तब तक माँ कुछ नहीं बोलती। जहाँ उसने साँप, बिच्छू, शस्त्र, अग्नि आदि का स्पर्श किया नहीं, कि दोड़कर पहुँच जाती है, उसकी रक्षा करती है, गोदी में उठाकर दूध पिलाती है। इसी प्रकार स्त्री का रक्षक पति है। घर से बाहर कहीं भी जाय, किन्तु उसका चित्त फँसा रहेगा घरवाली में ही। उसका भरण पोषण अन्न वस्त्र, चूड़ी बिछियाँ सभी की चिन्ता पति को करनी पड़ती है। राजन्! ये बाबाजी कहने को बनते तो सबके बाप के बाप हैं। चाहे साधु छोटा ही हो। जहाँ उसने घर छोड़कर भिक्षा पर निर्वाह करना आरंभ कर दिया तो हम उसे बाबा कहेंगे। हमारे बाबा कहेंगे, बाप के बाप भी बाबा कहेंगे। ऐसे इस जगत् के बाबाओं के भी पति हैं गृहस्थी। जहाँ दिन चढ़ा नहीं तहाँ गृहस्थी ही याद आते हैं। उसके यहाँ जाने से भिक्षा मिलेगी। यह बड़ा साधु सेवी है। इन साधु भिक्षुकों का भरणपोषण पालन गृहस्थियोंके द्वारा ही होता है अतः गृहस्थीको सब आश्रमों का भर्ता पालनकर्ता कहा है। जो अज्ञानी है उनके पति ज्ञानी हैं। छोटे छोटे बच्चोंको पकड़कर ज्ञानी गुरु के समीप कर आते हैं। वे गुरु जैसा नाच नचावें, कभी तड़ातड कोड़े जमाते हैं, कभी बेंत मारते हैं, कभी आँख निकाल कर धमकाते हैं, कभी किसी काम के लिये कहते हैं, इसे कर लेना, कभी किसी काम को निषेध कर देते हैं। ऐसा कभी मत करना भला!" बच्चों को मानना पड़ता है। इसी प्रकार बेटाओ! सब प्रजा का पति राजा है, राजा को सबकी रक्षा करनी चाहिये। ये वृक्ष भी तुम्हारी प्रजा हैं, पालनीय और रक्षा

होते ही ये सृष्टि वृद्धि में तत्पर हो गये। उन्होंने पहिले मन से ही देव, असुर मनुष्य आदि की सृष्टि बढ़ायी। किन्तु मन के मोदकों से कुछ काल के लिये मानसिक प्रसन्नता भले ही हो जाय, भूख तो नहीं मिट सकती। इसी प्रकार जलचर, थलचर तथा नभचर आदि अनेकों जीवों की मानसिक सृष्टि करने पर भी प्रजा की वृद्धि न हुई।

श्री शुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! अपनी इच्छानुसार प्रजा सर्ग को बढते देखकर दक्ष प्रजापति ने निश्चय किया। मैं तपस्या द्वारा शक्ति प्राप्त करके इस सृष्टि की वृद्धि करूँगा।" ऐसा निश्चय करके वे विन्ध्याचल पर्वत की तलेटी में जाकर परम पवित्र अघमर्षण नामक तीर्थ में जाकर घोर तप करने लगे। वे वहाँ बड़े नियम सयम से रहते। कुछ दिन फल फूल खाकर उन्होंने निर्वाह किया। फिर कुछ दिन जल पीकर रहे, कुछ दिन वायु पीकर ही तप किया। वे तपस्या में निरत रहकर कमल नयन भगवान् वासुदेव की हस गुह्यनामक स्तोत्र से स्तुति किया करते थे।"

इस पर शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! हस गुह्य नामक स्तोत्र कौन सा है, उसका वर्णन आप हमसे व्याख्या सहित कीजिये।"

इस पर सूतजी ने उत्तर दिया—"महाभाग! मैं इन सब स्तोत्रों का वर्णन पृथक् ही एक साथ करना चाहता हूँ, इस समय तो आप आगे की कथा को ही सुनिये।"

यह सुनकर शौनकजी बोले—"अच्छी बात है, जैसी आपकी इच्छा, किन्तु संक्षेप में कुछ सार बात तो सुना ही दीजियेगा। हाँ तो फिर क्या हुआ ?"

सूतजी बोले—"तनिक ठहरिये, जो हुआ होगा, सब सुनाऊँगा। इस गुह्यस्तोत्र की याद आते ही मुझे भगवान् के रूप का स्मरण हो आया। तनिक देर ध्यान करके तब कथा कहूँगा।"

छप्पय

करें प्रजापति कठिन तपस्या तीर्थ वास करि।
प्रजा सृष्टिके हेतु नाम लें राम कृष्ण हरि॥
इस गुह्य को पाठ करें तप नियमनि साधे।
गुण अभिव्यजक नाम लेइ श्रीहरि आराधें॥
धर्म अर्थ अरु मोक्ष वा, होइ वासना कामकी।
सब इच्छा पूरन करें, शरन गहें जे रामकी॥

प्रजापति दक्ष को भगवद्दर्शन

(३७१)

इति स्तुतः संस्तुवतः स तस्मिन्नघमर्पणे ।
आविरासीत्कुरुश्रेष्ठ भगवान् भक्तवत्सलः ॥*
(श्रीभा० ६ स्क० ५ अ० ३५ श्लो०)

छप्पय

दक्ष भावकूँ समुझि भावग्राही वनवारी ।
प्रकट तुरत तहँ भये विष्णु पीताम्बर धारी ॥
मुकुट कटक कर अगुलीय कङ्कण नूपुर पग ।
त्रिभुवन मोहन रूप निरखि मोहित होवे जग ॥
परे लकुट सम भूमिमहँ, दक्ष निरखि घनश्यामकूँ ।
बार बार निरखें मुदित, श्रीहरि शोभा धामकूँ ॥

श्री भगवान् कल्पद्रुम के समान हैं, उन्हें जो जिस भाव से भजते हैं, उन्हें वे वैसा ही फल देते हैं। जो उन्हें अर्थार्थी होकर भजते हैं, उन्हें अर्थ प्रदान करते हैं, जो धर्म की वृद्धि की भावना से भजते हैं, उनकी धर्मवृद्धि करते हैं। जो कामना की पूर्ति के लिये उनकी आराधना करते हैं, उन्हें काम सुख देते हैं और जो

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! इस प्रकार दक्षगुरु स्वाद से स्तुति किये जाने पर उस अघमर्षण तीर्थ में दक्ष के सम्मुख भक्तवत्सल भगवान् प्रकट हुए ।"

मोक्ष की इच्छा से उनकी आराधना करते हैं उन्हें मोक्ष प्रदान करते हैं। उन सर्वेश्वर के यहाँ किसी वस्तु का कमी नहीं है। वे सामार्थी पर क्रोध भी नहीं करते, क्योंकि उसने कामना पूर्ति के लिये भी किसी सांसारिक शक्ति का आश्रय न लेकर प्रभु का ही आश्रय लिया है, इसलिए सकाम भक्त के सम्मुख भी वे प्रकट होते हैं और उसे अभीष्ट वरदान देते हैं। फिर जो सब कर्मों को कृष्णाज्ञा समझकर करते हैं उन निष्काम भक्तों की तो इच्छा में भगवद् इच्छा ही है, उनकी पूर्ति करना तो भगवान् का कार्य ही हो जाता है।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! प्रचेताओं के पुत्र दक्ष ने अघमर्षण तीर्थ जाकर भगवान् की प्रजा वृद्धि के निमित्त उपासना आरम्भ की। वे नियमपूर्वक रहकर हंस गुह्यस्तोत्र का निरन्तर जप पाठ करने लगे। वे भगवान् से प्रार्थना करते—"हे प्रभो, आपकी महिमा अपार है। आपको नमस्कार है। जो कुछ हुआ है, हो रहा है, होगा, वह सब ब्रह्म है, ऐसे सर्व व्यापक आपको प्रणाम है। जो प्रकृति नाम रूपसे रहित है। फिर भी अपने चरण कमलों का भजन करनेवाले पुरुषों पर कृपा करके जिन्होंने अपने दिव्य जन्म और कर्मों द्वारा दिव्य नाम रूपों का धारण किया है, वे परात्पर प्रभु पामर पर प्रसन्न हों। जो अन्तर्यामी अनन्त प्राकृतिक ज्ञान मार्गों द्वारा मनुष्य के भावानुसार भिन्न भिन्न देवता, इष्ट और अर्चा विग्रह के रूप में प्रतीत होते हैं वे प्रभु मेरी कामना पूर्ण करें।"

इस प्रकार दक्ष की स्तुति से प्रसन्न होकर गरुडध्वज भगवान् अष्टभुज रूप से प्रजापति दक्ष के सन्मुख प्रकट हुए। उस समय उनकी शोभा निराली थी, वे अपने चारु चरण को

श्यामवर्ण का था। उस पर आकाश मे विद्युत् के समान पीताम्बर उसी प्रकार फहरा रहा था। जिस प्रकार नील वसनधारी नायक अपनी पीत वसनधारिणी नायिका के सहित शोभा देता है। पूर्ण चन्द्रमा के समान उनका मनोहर मुख खिला हुआ था। नेत्र शीतल उत्फुल्ल कमल के समान प्रसन्न, मधुमय अनुराग पराग से युक्त थे। वे विशाल मुकुट, किरीट, झिलमिलाते हुए मकराकृत, कुडल, काञ्ची, अगुलीय, ककण, नूपुर और अङ्गदादि आभूषणों से विभूपित थे। उनकी शोभा अवर्णनीय है। अस्त्र और आयुधो को धारण किये नारद, नन्द, सुनन्द आदि अपने प्रिय पार्षदों से घिरे हुए वे उसी प्रकार शोभा दे रहे थे, मानो सिद्धचारण गन्धर्वों से घिरे हुए अप्राकृतिक अद्वितीय सम्राट हों।

सहसा अपने सम्मुख भगवान् के ऐसे त्रिभुवन मोहन रूप का प्रादुर्भाव देखकर प्रजापति दक्ष हक्के-बक्के से रह गये, वे किंकर्तव्य विमूढ बने, बिना पूजा क उपहार लिये हाथ जोडे हुए भगवान् की ओर देखते के देखते ही रह गये। सहसा भगवान् को सम्मुख देखकर उन्हें अपने नेत्रों पर विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने आखे मलीं, और फिर भी उसी त्रिभुवन कमनीय अनुपम रूप माधुर्यपूर्ण मूर्ति को देखा, तो वे सहम गये, और प्रेम भार से भरित हृदय से मानसिक कृतज्ञता प्रकट करते हुए दड के समान पृथ्वी पर लेट गये। राजन्! उस समय की दक्ष की अवस्था का वर्णन मैं किन शब्दों म करूँ। वह अवर्णनीय विषय है, वाणी की वहाँ पहुँच नहीं। भाषा बिचारी गूँगी हो जाती है। भाव उन बातों को व्यक्त करने म अपने को असमर्थ पाते हैं। जिस प्रकार गधमादन पर्वत पर भगवती अलकनन्दा में एक साथ ही अनेकों कल-कल करते हुए पहाडी झरने इधर-उधर से आकर उनमें गिर जाते हैं, उनके गिरने और मिलने से जैसे उनका

गरुड़ के कन्धे पर रखे हुए थे। जानुपर्यन्त लम्बी सर्प के शरीर के समान चिकनी आठ भुजाओं में शख, चक्र, ढाल, तलवार,

धनुष, वाण, गदा और पाश ये आठ अस्त्र धारण किये हुए थे। उनका सम्पूर्ण सुन्दर शोभायुक्त शरीर सजल जलधर के समान

श्यामवर्ण का था। उस पर आकाश मे विद्युत् के समान पीताबर उसी प्रकार फहरा रहा था। जिस प्रकार नील वसनधारी नायक अपनी पीत वसनधारिणी नायिका के सहित शोभा देता है। पूर्ण चन्द्रमा के समान उनका मनोहर मुख खिला हुआ था। नेत्र शीतल उत्फुल्ल कमल के समान प्रसन्न, मधुमय अनुराग पराग से युक्त थे। वे विशाल मुकुट, किरीट, झिलमिलाते हुए मकराकृत, कुंडल, काञ्ची, अगुलाय, ककण, नूपुर और अङ्गदादि आभूषणा से विभूषित थे। उनका शोभा अवर्णनीय है। अस्त्र और आयुधा को धारण किये नारद, नन्द, सुनन्द आदि अपने प्रिय पार्षदो से घिरे हुए वे उसी प्रकार शोभा दे रहे थे, मानों सिद्धाचारण गन्धर्वा से घिरे हुए अप्राकृतिक अद्वितीय सम्राट हो।

सहसा अपने सम्मुख भगवान् के ऐसे त्रिभुवन मोहन रूप का प्रादुर्भाव देखकर प्रजापति दक्ष हक्के बक्के से रह गये, वे किंकर्तव्य विमूढ बने, बिना पूजा के उपहार लिये हाथ जोडे हुए भगवान् की ओर देखते के देखते ही रह गये। सहसा भगवान् को सम्मुख देखकर उन्हे अपने नेत्रा पर विश्वास नहीं हुआ। उन्होने आख मलीं, और फिर भी उसी त्रिभुवन कमनीय अनुपम रूप माधुर्यपूर्ण मूर्ति को देखा, तो वे सहम गये, और प्रेम भार से भरित हृदय से मानसिक कृतज्ञता प्रकट करते हुए दड के समान पृथ्वी पर लेट गये। राजन्! उस समय की दक्ष की अवस्था का वर्णन में किन शब्दो म करूँ। यह अवर्णनीय विषय है, वाणी का वहाँ पहुँच नहीं। भाषा बिचारी गूँगी हो जाती है। भाव उन बातों को व्यक्त करने म अपने को असमर्थ पाते हैं। जिस प्रकार गधमादन पर्वत पर भगवती अलकनन्दा म एक साथ ही अनेकों कल कल करते हुए पहाडी झरने इधर उधर से आकर उनम गिर जाते हैं, उनके गिरने और मिलने से जैसे उनमा

प्रवाह और वेग-पूर्ण हो जाता है, उसी प्रकार परमानन्द के वेग से मन और इन्द्रियों की गति रूँध जाने से वे स्तुति की इच्छा रखते हुए भी स्तुति न कर सके, वाणी गद्गद् होगयी प्रयत्न करने पर भी प्रेमातिरेक के कारण वे कुछ कह न सके।

भगवान् ने देखा, मेरा भक्त कुछ कहना चाहता है, किन्तु प्रेम में ऐसा विह्वल हो रहा है, कि कुछ कहने मे समर्थ नहीं हो रहा है, तब बात चलाने के निमित्त उन्होंने ही उसके संकोच को दूर करते हुए मेघ गंभीर वाणी मे कहना आरंभ कर दिया।

भगवान् बोले—"प्रजापते! दक्ष! तुम अब निश्चिन्त हो जाओ। तुम कृतकार्य हो। जिस कामना के निमित्त तुम तप कर रहे थे, तुम्हारी वह कामना पूर्ण होगयी। तुम्हें अब संसिद्धि प्राप्त हो चुकी। मेरे में दृढ़ अनुराग हो जाना यही समस्त साधनों का एक मात्र सर्वोत्तम फल है। तुम्हारा तप सर्वश्रेष्ठ तप है।"

यह सुन कर बड़े कष्ट से प्रजापति दक्ष बोले—"भगवन्! मेरा तप काहे का है। मैं तो व्यापारी वणिक हूँ। कामी हूँ मन में कामना रखकर सकाम आराधना कर रहा हूँ।"

भगवान् ने हँसते हुए कहा—"नहीं भैया! तुम्हारा तप अपने निमित्त थोड़े ही है, तुम इस तप से अपने शरीर की, अपने इन्द्रिय सुखों की अभिवृद्धि तो चाहते ही नहीं। तुम तो इस विश्व की वृद्धि करना चाहते हो। इसीलिये मैं तुमसे अत्यंत प्रसन्न हूँ। परोपकार की इच्छा होना यह स्वार्थ नहीं परमार्थ है।"

प्रजापति दक्ष ने हाथ जोड़कर विनीत भाव से कहा—"महाराज! मैं अपनी वासनाओं को भीतरी इच्छाओं को प्रजाओं की वृद्धि हो इस भावना को दबा नहीं सका हूँ।"

भगवान् यह सुनकर हस पड़े, और बोले—"राजन् !" यह मेरी इच्छा ही थी। मैं चाहता था, कि सब प्राणियों की अभिवृद्धि हो। मेरी इच्छा से ही समस्त प्राणियों की उत्पत्ति के हेतु भूत, ब्रह्मा, रुद्र, मनु, प्रजापति और इन्द्र आदि उत्पन्न होते हैं। ये सब मेरी विभूतियाँ हैं मुझसे ये भिन्न नहीं पृथक-सत्तावान् नहीं। मेरे ही अस्तित्व से इनका प्रादुर्भाव संभव है। इस सब विश्व को तुम मेरा रूप समझो। दक्ष प्रजापति ने कहा—"महाराज ! किस प्रकार आपके रूप का चिन्तन स्मरण करें।"

भगवान् ने कहा—"मेरे अनेक रूप है, अनेक भाव हैं। अनेक आकृतियाँ हैं। तप को तुम मेरा हृदय जानो। विश्व मेरा शरीर है। आकृति कर्म है। यज्ञों को तुम मेरे शरीर का अग मानों। धर्म मेरा मन है। ये समस्तदेवता वृन्द मेरे प्राण स्थानीय हैं। इस समस्त दृश्यवान् सृष्टि के आदि मे आरम्भ में चिन्मात्र अव्यक्त और सर्व ओर से सुप्त के समान एक मात्र मैं ही मैं था। मेरे अतिरिक्त भीतर बाहर दृष्टा दृश्य कुछ भी नहीं था। मेरे साथ लोकपितामह अज सृष्टिकर्ता ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई।"

प्रजापति दक्ष ने पूछा—"प्रभो ! आप से स्वयभू भगवान चतुरानन की उत्पत्ति किस प्रकार हुई ?"

भगवान् ने कहा—"राजन् ! जिस काल मे मुझ अनन्त गुणोंवाले अच्युत अनन्त मे माया के योग से गुणमय ब्रह्माण्ड शरीर प्रकट हुआ उसी समय इस ब्रह्माण्ड रूप कमल से अयोनिज कमलासन कमलनाभ भगवान् ब्रह्मदेव का प्रादुर्भाव हुआ। जब वे देव श्रेष्ठ मेरे वीर्य से उत्पन्न होकर अभिवृद्धि को प्राप्त हुए,

तो वे मेरी इच्छा के वशीभूत होकर सृष्टि कार्य करने के लिये उद्यत हुए। उनके मनमें प्रजा सृजन की बलवती इच्छा तो जागृति हुई। किन्तु उन्होंने अपने को इस कार्य मे असमथ सा पाया।"

इस पर दक्ष प्रजापति ने पूछा—"हाँ! तो भगवन् फिर क्या हुआ। आपने उनकी इच्छा की पूर्ति किस प्रकार की ?"

भगवान् ने कहा—"जब चतुरानन ब्रह्मा किंकर्तव्यविमूढ हो गये तो मैंने अव्यक्त वाणी मे उनके प्रति दो शब्द कहे उनमें पहला तो "त" शब्द था, दूसरा 'प' शब्द था। वे मेरे अभिप्राय को समझ गये, और तप करने लग गये। जब दिव्य सहस्र वर्षों तक वे घोर तपस्या करते रहे तब उनमे सृष्टि रचने की स्वतः ही सामर्थ्य आ गयी। सर्व प्रथम उन्होंने मनसे तुम ९ प्रजापतियो को उत्पन्न किया। तब सृष्टि की वृद्धि होने लगी।"

इस मन्वन्तर मे अब प्राचीन सृष्टि-सी हो गयी है, उसकी तुम मेरी प्रेरणा से पुनः अभिवृद्धि करना चाहते तो, तुम मेरा बात मानो।

हाथ जोडकर दक्ष ने कहा—"भगवन्! जैसी आपकी आज्ञा हो। मुझे कर्तव्य कर्म का आदेश मिलना चाहिये।"

भगवान् ने कहा—"तुम जो मानसिक सृष्टि कर रहे हो इससे कभी सृष्टि की वृद्धि न होगी। मानसिक सृष्टि वाले वैसे ही शुद्ध अन्तःकरण के होते हैं। वे सृष्टि झंझट मे क्यों पड़ने लगे। तुम मैथुनी सृष्टि उत्पन्न करो। स्त्री का पुरुष में पुरुष का स्त्री मे जब स्वाभाविक आकर्षण हो जायगा, तो यह सृष्टि

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् इस प्रकार दक्ष प्रजापति को उपदेश देकर भगवान् तुरन्त वहीं के वहीं अन्तर्धान हो गये। दक्ष देखते के देखते ही रह गये।

छप्पय

बोले हरि, तुम प्रजा हेतु क्यों कष्ट उठाओ।
मन ते बढे न सृष्टि मैथुनी सृष्टि बनाओ॥
पञ्चजन्य की सुता असिक्नी बहू ब्याहिके।
संतति करि रति धर्म बढाओ उभय जाइकें॥
बिनु आकर्षण सृष्टि नहिं, कबहुँ बढे हिय महँ धरो।
तातें चटपट जायकें, वर विवाह बेटा करो॥

मैथुन धर्म से दक्ष के हर्यश्व नामक पुत्रों की उत्पत्ति

[३७२]

तस्यां स पाञ्चजन्यां वै विष्णुमायोपबृंहितः ।
हर्यश्वसंज्ञानयुतं पुत्रानजनयद् विभुः ॥❀
(श्रीभा० ६ स्क० ५ अ० १ श्लो०)

छप्पय

ब्याह दक्ष ने करयो विष्णु आज्ञा सिर धारी ।
अति प्रसन्न मन भयो बहू लखि अति सुकुमारी ॥
सुधी प्रजापति दक्ष तपस्वी दृढ़ व्रतधारी ।
दश सहस्र सुत जने पिता के आज्ञाकारी ॥
सब समान गुण रूप रँग, शील एक सी वय नई ।
तातैं सबकी एकई, हर्यश्व हि संज्ञा भई ॥

भगवान् की माया कैसी प्रबल है, ज्ञानी अज्ञानी, पंडित मूर्ख छोटे बड़े, पशु पक्षी, देव, तिर्यक मनुष्य सभी उनकी माया के वशीभूत होकर कार्य कर रहे हैं। उनकी माया के बिना सृष्टि नहीं, सम्बन्ध नहीं, संसार नहीं, दुःख नहीं, क्लेश नहीं, जन्म नहीं, मरण नहीं, बन्धन नहीं, मोक्ष नहीं। यह नहीं, वह नहीं,

❀ श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित् से कहते हैं—"राजन्! तब विष्णु-माया से उपबृंहित उन विभु प्रजापति दक्ष ने उस पञ्चजन प्रजापति की पुत्री असिक्नी में हर्यश्व संज्ञा वाले दस हजार पुत्र उत्पन्न किये।

मैं नहीं, तू नहीं, कहाँ तक कहें कुछ नहीं है। वे ही वे हैं। इस ठगिनी माया ने बीच में पड़कर यह बवंडर पैदा कर दिया है। बच्चे पैदा करो, सृष्टि करो, ब्याह करो, त्याग करो, ग्रहण करो सब इसी में सम्भव है। यह ऐसी गुणमयी नई बहू है, कि जबसे इसका इस विश्व रूपी ससुराल में पदार्पण हुआ है तबसे नित्य नई साड़ियाँ बदलती रहती है। न कभी बूढ़ी होती है, न बीमार न इसके शरीर में कभी झूर्रियाँ पड़ती हैं न वृद्धा अवस्था जन्य कुरूपता ही इसके पास फटकती है। सदा बनी-ठनी सजी-बजी नित्य नूतन नित्य नये आकर्षण के सहित पदार्पण करती है। यह ऐसी विचित्र है कि हम ऐसे अज्ञानियों की तो बात ही क्या है बड़े-बड़े अद्वैत वेदान्त के ज्ञानी सद् असद् का विवेचन करनेवाले इसके घूँघट को उठाकर उसके यथार्थ रूप को जानना चाहते है, वे भी किसी निश्चित निर्णय पर नहीं पहुँचते। उनमें पूछे क्यों जी, यह बनी ठनी नवेली नववधू 'सत' है तो वे सिर हिला देते हैं। फिर पूछते हैं, क्यों जी यह ठगिनी यदि 'सत्' नहीं है तो असत् होगी किसी ने धातु को रंग कर कलई कर रंग बिरंगी साड़ी पहिनाकर मूर्खों को भ्रम में डालने के लिये झूठी "असत्" ही बना दी होगी। तब भी वे सिर हाथ दोनों को हिलाकर गम्भीर मुद्रा बनाकर आँखे फाड़कर कहते हैं—"ना भैया! यह असत् नहीं है।" तब तो हम चक्कर में पड़ जाते हैं। पूछते हैं—'न सत् न असत् तो कुछ मिली जुली होगी, कुछ दाल चावल ऐसी खिचड़ी होगी। तब वे हँसकर कहते है—'न भैया! यह खिचड़ी भी नहीं क्या कहे कैसे कहें इसका निर्वचन हो ही नहीं सकता "अनिर्वचनीया है। प्रतीत होता है इसके बाप ने दो नाम रख दिया होगा एक माया एक अनिर्वचनीया। नहीं तो अनिर्वचनीया का तो कोई

अर्थ है ही नहीं। "है" शब्द का तो अर्थ है। सो उसे ज्ञानी ही जाने। अपने अज्ञानी लोग तो इस देवी का दर से डडोत करके इसके पति के पादपद्मों में प्रणाम करते हैं। इसके सम्बन्ध में कुछ पूछते ही नहीं। क्या स्त्री की चर्चा करना इतने बड़े पूज्य के सम्मुख। वह जैसे हो बनी रहे कोई जब अपना स्वभाव छोड़ता नहीं तो हम इसके स्वभाव की जाति कुलगोत्र की चर्चा क्यों करें। साधु का भिक्षा के अतिरिक्त और इस अनिर्वचन याजी से क्या काम? उस माया का ही आश्रय लेकर माया पति इस सृष्टि की रचना करते हैं ऐसी बात हम सदा से सुनते आ रहे हैं। उसी माया के वशीभूत होकर भगवान की इच्छा से समस्त प्रजापति सृष्टि रचना में आग्रह और उत्सुकता के सहित प्रवृत्ति होती हैं। ये पुरुष, प्रकृति के बिना पगु हैं, एक पग आगे नहीं बढ़ सकते। अतः प्रकृति रूप नारी का सृष्टि ब्रह्मा सर्व प्रथम पुरुष के साथ ही करते हैं। जहाँ १ और १ मिले वहाँ ११ हुए। इसीलिए विवाह के समय वेद की आज्ञा है कि स्त्री को आदेश दिया जाता है कि तू एक है और तेरा पति एक है दोनों मिल जाना और पति का ग्यारहवाँ बना देना। जब तक एक अद्वितीय बने रहते हैं तब तक गुम्म सुम्म सन्न बने पड़े रहते हैं। जहाँ दो हुए वहाँ गोविन्दाय नमो नमः होने लगा। इसका नाम है जगत् प्रवाह।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—'राजन्! प्रजापति दक्ष को जब भगवान् ने विवाह करने की आज्ञा दी, तब उन्होंने उनकी आज्ञा को शिरोधार्य किया। प्रजापति पञ्चजन्य की परम सुशीला गुणवती, रूपवती, लज्जावती, दुहिता के साथ उन्होंने विधि विधान के साथ विवाह कर लिया। विवाह के अनन्तर वे अपनी पत्नी को पाकर परम प्रसन्न हुए। वे साधारण विषयी पुरुष तो

थे ही नहीं। परम यशस्वी तपस्वी और विष्णु शक्ति से परिवृंहित परम ऐश्वर्यशाली थे। उन्होंने मैथुन के साथ मंत्र-तंत्र और यंत्रों के प्रभाव से सर्वप्रथम दश हजार पुत्रों को उत्पन्न किया।"

इस पर शौनकजी ने पूछा—"सूतजी ! यह बात कुछ हमारी समझ में नहीं आती। १-२ होते २-४ भी होते तो भी विश्वास किया जा सकता था। एक साथ एक पत्नी से दश हजार लड़के पैदा हो गये, यह तो कुछ विचार बुद्धि दोनों के ही परे की बात है। यों आप श्रद्धा करने के लिये कहें तो कर भी सकते हैं। किन्तु महाभाग ! यह बात मनमें बैठती नहीं।"

इस पर सूतजी ने कहा—"भगवन् ! देखिये। वे लोग साधारण मनुष्य तो थे नहीं। जो मन से ही असंख्यों भाँति की सृष्टि रच सकते हैं। उनके लिये मंत्रो के बल से १० हजार पुत्रों का उत्पन्न होना कोई बड़ी बात नहीं। धृतराष्ट्र के गान्धारी से १०० पुत्र उत्पन्न हुये। एक तूमासो में १०० बीज से उत्पन्न हुये उन्हें पृथक् पृथक् घृत के घड़ों मे रख दिया गया। उसमें वे बढ़ते रहे, जब बच्चे पैदा हो गये तो उन्हें विधि विधान पूर्वक निकाला गया। कलियुग मे भी वैज्ञानिक उपायो से रजवीर्य को लेकर मातृगर्भ से पृथक संतति उत्पन्न करने की चेष्टा लोग करगे। प्राणशक्ति का सचार तो उनमे सम्भव है किन्तु वे इन कृत्रिम उपायो से मनुष्यों को पैदा नहीं कर सकते। उन दिनो के लोग सामर्थ्यवान् सत्य संकल्प होते थे, वे अपने अमोघ वीर्य को जितने भी भागो मे विभक्त कर देते उतनी ही संतानें हो जाती थी। इसी सकल्प द्वारा सृष्टि के लिये उतावले प्रजापति दक्ष ने शुद्ध मन से रति की इच्छा के ही बिना वीर्य संसर्ग से १० हजार पुत्र उत्पन्न किए।

रजवीर्य का तो ससर्ग मात्र था, वास्तव मे तो वे शुद्ध चित्त से उत्पन्न किये, मानसिक पुत्र ही थे। उनमे माया का लेश भी नही था, विशुद्ध अन्त.करण से वे पवित्र थे। उनम छल, कपट, रति कामना कुछ भी नहीं थी। जैसे अत्यन्त छोटा दूध पीने वाला शिशु होता है, वैसे वे भोले-भाले थे। पिता के तप के प्रभाव से वे उत्पन्न होते ही कुछ समय मे युवक हो गये। वे वडे नम्र, सुशील और सरल स्वभाव के थे। उन्होंने हाथ जोड कर वाल सुलभ भोलेपन से पिता जी से पूछा—"पिता जी ! हम क्या करें ?"

पिता ने प्यार से कहा—'देखो, वेटा ! सामने तुम देख रहे हो, यह क्या है ?"

उन्होंने कहा—"हमे तो पिता जी ! पता नहीं क्या है ?"

प्रजापति दक्ष ने अत्यन्त ममता के स्वर मे प्यार से इनके मुँह चूमते हुए कहा—"अरे, तुम वडे भोले लड़के हो रे ! भैया, यह सृष्टि है। भगवान् की आज्ञा है कि इसे वढाना चाहिये। देखो, भैया जैसे मैंने एक ने तुम दशसहस्र को उत्पन्न किया है, वैसे ही तुममें से प्रत्येक दशसहस्र को उत्पन्न करने मे समर्थ हो सकता है। तव कितने मनुष्य हो जायँगे। यह वन शैल, कानन पूर्ण पृथ्वी मनुष्यों से भर जायगी।"

लडकों ने कहा—'महाराज ! इतने लोग वढ जायँगे, तो क्या होगा फिर ?"

दक्ष ने प्यार के साथ कहा—"अरे, होगा क्या भैया ! सव उत्पन्न होकर नद नदी, वन पर्वतों के समीप घर वना वना कर

रहेंगे। भगवान् के निमित्त यज्ञ याग करेंगे, बड़े बड़े उत्सव हुआ करेंगे। कथा कीर्तन का बड़ा आनन्द रहेगा। सब मिल कर प्रेमपूर्वक एक दूसरे से बातें करेंगे हृदय से हृदय मिला कर स्नेह प्रकट करेंगे। भगवान् के गुणानुवादों को गायन करेंगे। भगवत् चर्चा होगी। इससे तुम्हें भी बड़ा पुण्य होगा।"

उन हर्यश्व नामक पुत्रों ने पूछा—"तब पिताजी! यह शक्ति हमें कैसे प्राप्त हो कि इतने बच्चे पैदा कर सकें?"

दक्ष प्रजापति ने प्रेम से कहा—"देखो, कोई भी मनुष्य अपनी शक्ति से कुछ नहीं कर सकता भैया! सब को शक्ति देने वाले श्री हरि ही हैं। तुम सब मिलकर उन्हीं की शरण में जाओ। उन्हीं को घोर तपस्या से प्रसन्न करो। मैंने घोर तप करके भगवान् को प्रसन्न किया था। उनकी आज्ञा पाकर ही मैंने विवाह किया और तुम सब को उत्पन्न किया। अब तुम सब भी उनकी ही सृष्टि कामना से आराधना करना।

हर्यश्वों ने पूछा—"पिताजी! कहाँ जाकर हम तप करें?"

प्रजापति दक्ष ने कहा—"तुम यहाँ से पश्चिम दिशा की ओर चले जाओ। चलते-चलते जहाँ भी शान्त एकान्त, स्वच्छ पवित्र तीर्थ स्थान देखो, वहीं रहकर भगवान् की प्रजा वृद्धि के संकल्प से आराधना करना।"

हर्यश्वों ने अपने पिता की आज्ञा शिरोधार्य की। सब ने क्रमशः उनके चरण छुए। प्रदक्षिणा की और सबके सब पश्चिम दिशा की ओर चल दिये।

वन उपवन नदी पर्वतों को नाँघते हुए वे आगे बढ रहे थे। इस चित्र विचित्र सृष्टि को वे बडे कुतूहल से देखते हुए जा रहे थे। चलते-चलते वे उस स्थान पर पहुँचे जहाँ पुण्यतोया भगवती सिन्धु नदी समुद्र मे जा मिली है। उस कच्छ देश मे परम पवित्र नारायण सरोवर नाम का एक परम पुण्यप्रद तीर्थ है। वह तीर्थ देवता, सिद्ध चारण, ऋषि मुनि तथा अन्य पुण्यजनों द्वारा सेवित है। वहाँ की शोभा निहार कर सभी भाई परम प्रसन्न हुए। उन्होंने जाते ही तीर्थ मे स्नान किया। स्नान करते ही उन सबका शरीर फूल के समान हलका हो गया, चित्त अत्यन्त ही प्रसन्न हुआ। मार्ग का सभी श्रम मिट गया। अन्त - करण का समस्त मायिक मल धुल गया। शुद्ध चित्त तो वे थे ही, जो भी कुछ पिता के ससर्ग और सङ्कल्प से मनमे कुछ प्रवृत्ति मार्ग की यत्किञ्चित् वासना उत्पन्न हो गई थी, वह तीर्थ स्नान करते ही मिट गइ। उनकी बुद्धि पारमहस्य धर्म में लग गई। उन्हे सृष्टि आदि की वृद्धि के चक्कर मे पडना रुचिकर प्रतीत नहा होने लगा। फिर भी पिता की आज्ञा है, कि सृष्टि वृद्धि के ही निमित्त तप करना। इसी विचार से वे उसी सङ्कल्प से अनिच्छापूर्वक पिता की आज्ञा समझकर तप करने के निमित्त प्रवृत्त हुए। जो मोक्ष धर्म का अधिकारी हो चुका है, वह इन क्षुद्र ससारी विषयों मे फँसकर प्रवृत्ति मार्ग मे अग्रसर हो, यह बात मोक्ष धर्मावलम्बी नारदजी को बुरी लगी वे इन बच्चों के कल्याण की बात सोचने लगे।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! कृपालु पुरुषों का यह स्वभाव होता है कि बिना कहे भी वे अधिकारी पर कृपा करते हैं बिना कृपा किये उनसे रहा ही नहीं जाता। इसीलिये नारदजी के मन

में ऐसी इच्छा उत्पन्न हुई। अब आगे जो अत्यंत सुखद मनोरंजक सम्वाद होगा उसे दत्तचित्त होकर आप सब श्रवण करें।

छप्पय

पिता कह्यो हर्यश्व! करो तप वंश बढ़ाओ।
पुत्र पौत्र करि अधिक जगत् महँ कीर्ति कमाओ॥
पितु आयसु सिर धारि चले तपकूँ सब भैया।
नारायण सर बसे मिले मुनि बीन बजैया॥
श्रद्धा संयम के सहित, जाय तीर्थ जे न्हात हैं।
होत हृदय तिनिको विमल, फिरि सतगुरु मिलि जात हैं॥

नारदजी के हर्यश्वों से दशगूढ़ प्रश्न

(३७३)

प्रजा विवृद्धये यतान् देवर्पिस्तान् ददर्शह ।
उवाच चाय हर्यश्वाः कथं स्रक्ष्यथ वै प्रजाः ।
अदृष्टान्त भुवो यूय बालिशा बत पालकाः॥॥*

(श्रीभा० ६ स्क० ५ अ० ६ श्लो०)

छप्पय

आये नारद तहाँ दक्ष पुत्रनितैं बोले ।
सृष्टि करो कस बिना भूमि सगरी पै डोले ॥
एक पुरुष को राष्ट्र मार्ग बिनु बिल तुम देख्यो ।
उभय बाहिनी नदी, नारि कुलटा पति पेख्यो ॥
घर पच्चीस पदार्थ को, बहुरगी इक हसकूँ ।
बिनु जाने छुर चक्र तुम, वृद्धि करो कस वशकूँ ॥

ससार में जो जैसी प्रकृति का होता है, वह वैसी प्रकृति के पुरुषों से प्रेम करता है। सभी चाहते हैं, ससार मे सभी लोग हमारे जैसे विचार के हो। हमारे मत की अभिवृद्धि हो।

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! इस प्रकार प्रजा की वृद्धि के लिये तत्पर हुए उन दक्ष पुत्रो को नारदजी ने देखा। नारदजी ने उनके समीप जाकर कहा—"अरे हर्यश्वो! बड़े दुख की बात है, तुम प्रजापालक होने पर भी बड़े मूर्ख हो। अरे, जब तक तुम इस पृथ्वी का अत नहीं देख लेते तब तक प्रजा की सृष्टि किस प्रकार कर सकते हो?"

त्यागी चाहता है, सभी त्यागी हों। रागी चाहते हैं, सभी
हो। वच्चा चलते चलते गिर पड़े, रपट पड़े, कोचड़ में
जाय तो दयालु पुरुष उसे गिरने से उठाते हैं, विपत्ति से ब
हैं और अच्छे मार्ग पर लगाते हैं। वे किसी स्वार्थ के वश
होकर नहीं, किसी पारितोषक की इच्छा से नहीं। उनका स्व
होता है, कि वे भूले भटको को सीधा सच्चा मार्ग दिखावें।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—'राजन्! ब्रह्मलोक में वि
वाले महामुनि नारद ने जब देखा कि वे दक्ष के दस सहस्र
सबके सब विशुद्ध अन्तःकरण वाले है, इनमें यत् किञ्चित
का अंश आगया था, वह नारायण सरोवर में स्नान करने से
गया। ऐसे शुद्ध चित्तवाले वालक पिता की आज्ञा के वशीभूत
कर ससार बन्धन मे फॅसे यह उचित नहीं। इतने भोले भाले
कहाँ किचि पिचि में फॅसगे। कभी यह नहीं कभी वह
आज वह मुँह फुलाय बैठी है, कल भृत्य ने ही अपराध
दिया उसी पर क्रोध आगया। कभी बच्चा ही नहीं होता।
भी तो बीमार पड गया। औषधि लाओ, यन्त्र, मन्त्र, जादू,
कराओ। दिन रात्रि हाय हाय में फॅसे रहना। गृहस्थ में
का तात्पर्य ही यह है चिन्ताओं की गठरी को स्वेच्छा से
पर रख लेना। ये बच्चे भूले भटके हैं। इन्हें मार्ग पर ल
चाहिये।" अब क्या था नारदजी के मनमें जहाँ यह
आई नहीं, कि बेडा पार हुआ नहीं। नारदजी को कुछ
तो सजाना ही नहीं था। बिस्तरा पेटी तो लेनी ही नहीं,
उठाई वीणा और उतर पडे। क्षणभर मे नारायण सरो
समीप पहुँच गये।

नारदजी ने सोचा—"इनसे सीधे-सीधे यह कहें कि
घर गृहस्थी के झंझट में प्रजावृद्धि के चक्कर में मत

तो ये मानेंगे नहीं। क्योंकि ये तो पिता की आज्ञा में बँधे हैं, उसे पालन करना अपना परम धर्म समझते हैं। इनसे कुछ तिकड़म भिड़ानी चाहिये। इन्हें ऐसी युक्ति से समझाना चाहिये कि स्वयं ही ये विचार करके इस झंझट से मुक्त हो जायँ, मुझे सीधे सीधे कहना ही न पड़े। यह सोच कर वे उनके और निकट पहुँचे। ये सब तो स्नान करके नारायण सरोवर के जल में खड़े हुए मंत्र जप रहे थे। सबके नेत्र बन्द थे, अतः उन्होंने अपने समीप आते हुए नारदजी को नहीं देखा। नारद जी ने अपनी स्वर ब्रह्म विभूषिता वीणा पर तान छोड़ते हुए कहा—दक्ष के प्यारे पुत्रो! हर्यश्वों! जय जय श्री सीताराम। नमो नारायणाय।"

इतना सुनते ही सब के सब शीघ्रता से आचमन करके दौड़े और सब ने नारदजी के पैर छूने आरम्भ किये अब एक दो हों तो शीघ्रता से छूलें, पूरी दश हजार सैनिकों की सेना थी। प्रेम में ऐसे बेसुधि हो गये कि वह उसे ढकेलता, वह उसके आगे पैर छूना चाहता था। नारदजी अपनी वीणा को सम्हालते हुए कहते थे—"अरे, भैया शनैः शनैः प्रणाम करो, एक दूसरे को ढकेलो मत।" इस प्रकार जब सब पैर छू चुके तब नारदजी उनके दिये हुए तृण के आसन पर सुख से बैठ गये और बड़े प्रेम से कुशल प्रश्न पूछने लगे।

कुशल प्रश्न के अनन्तर नारदजी ने कहा—"पुत्रों, तुम सब तो भैया, बड़े सुकुमार हो। तुम सब की आकृति प्रकृति, शील स्वभाव, सदाचार, रहन सहन, बोली वाणी सब एक सी है। तुम अपने पिता के घर को छोड़कर यहाँ जंगल में क्यों आये हो? क्यों इस बीहड़ वन मे भटक रहे हो?"

उन सबोंमें से एकने कहा—"भगवन्! हम अपने पूज्य पिता की आज्ञा से इस सृष्टि की वृद्धि करना चाहते हैं। जब सृष्टि

की वृद्धि हो जायगी तो इस पृथ्वी की प्रजा का प्रजापति बनकर प्रेम पूर्वक पालन करेंगे।"

नारदजी ने हँसकर कहा—"प्रजा का पालन बुद्धि से होता है या बातें बनाने से ही काम चल जाता है ?"

उन्होंने कहा—"नहीं, महाराज ! प्रजा पालन के लिये तो बड़ी बुद्धि की आवश्यकता है।"

इस पर हँसकर नारदजी ने कहा—"तब फिर तुम पृथ्वी की प्रजा का पालन कैसे कर सकते हो। कहते तो तुम अपने को प्रजापति हो, किन्तु हो सब के सब पूरे घोंघा बसन्त। तुम्हें इतनी भी बुद्धि नहीं कि जब तक इस सम्पूर्ण पृथ्वी का तुम अन्त न देख लो, तब तक इस पर रहने वाली प्रजा का पालन कैसे करोगे। प्रथम पूर्ण पृथ्वी का अन्त देख डालो।"

यह सुनकर हर्यश्व तो विचार में पड़ गये। बेचारे सरल चित्त तो थे ही। बोले—"हाँ, महाराज ! इस पृथ्वी का अन्त तो हमने नहीं देखा।"

नारदजी ने रोष के स्वर में कहा—"तो क्या देखे हैं, तुमने पत्थर ! अरे, जब तक तुम जान न लो पृथ्वी क्या है, कैसे बनी इससे पार कौन वस्तु है, एक पाद में यह सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड है, इससे परे विशुद्ध त्रिपाद विभूति है। बिना जाने सृष्टि को मे तत्पर हो गये इससे लाभ क्या ? अच्छी बात है हम तुम्हारी बुद्धि की परीक्षा लेने के लिये तुम से १० प्रश्न करते हैं। उनके विचार कर उत्तर दे दोगे, तो हम समझ लेंगे तुम सृष्टि करने में समर्थ हो सकते हो।"

सूतजी कहते हैं—मुनियो ! यह परीक्षा देना सबसे अधिक कार्य है। पग पग पर सन्देह ही बना रहता है। जिसने कभी परीक्षा दी हो वही इसका अनुभव भली भाँति कर सकता है। भगवान् सब विपत्ति डाले, किन्तु परीक्षा के

चक्कर में न फँसावें। परीक्षा में उत्तीर्ण होने वाला तो फँस जाता है। अनुत्तीर्ण होने वाला न घर का रहता है न घाट का उसे निरंतर विचार में ही निमग्न रहना पड़ता है।

श्री शुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! जब नारदजी ने उन्हें परीक्षा की सूचना दे दी, तब तो वे हाथ जोड़कर परीक्षा देने को सन्नद्ध हुए। और बोले—"हाँ ब्रह्मन्! आप हमसे जो पूछना चाहें पूछें।"

यह सुनकर नारदजी गंभीर होकर पूछने लगे—अच्छा देखो, दश प्रश्नों में से हमारा प्रथम प्रश्न तो यह है, कि तुम लोगों ने इस भूमि का अंत देखा है?

उन सबने हाथ जोड़कर कहा—"नहीं, भगवन्! हमने तो इस भूमि का अंत देखा नहीं।"

इस पर नारदजी बोले—"तब तुम कैसे सृष्टि कर सकते हो इस बात को स्वयं अपनी बुद्धि से विचारो। अब हमारे द्विती प्रश्न का उत्तर दो। तुम लोग जानते ही हो, कि मेरी चौदह भुवनों में अव्याहत गति है। एक बार मैं घूमता फिरता एक ब भारी देश में पहुँचा। उस इतने बड़े राष्ट्र में एक ही पुरुष था उसे चाहें राजा कहलो या प्रजा, मन्त्री कहलो या पुरोहित। व पुरुष नपुंसक जो चाहो सो कहलो। तुम लोग उस राष्ट्राधि एकाकी अद्वितीय पुरुष को जानते हो?"

हर्यश्वों ने कहा—"नहीं, भगवन्! हमें तो ऐसे राष्ट्र का पता नहीं, फिर उस पुरुष को कैसे जान सकते हैं।"

नारदजी ने रोष में कहा—"तब बस इतनी ही बुद्धि के ब पर प्रजा की वृद्धि करने का साहस कर रहे हो। उस पुरु को जाने बिना तो सब कार्य व्यर्थ है। अब हमारे तीसरे प्रश

का उत्तर दो। एक बार हम एक बिल में घुस गये। उसमें और भी बहुत से जीव घुसे हुए थे। हम घुस ता गये, किन्तु निरंतर चक्कर काटते रहने पर उसमे से निकलने का किसी का मार्ग हा नहीं मिलता। जो घुस जाता है, उसी मे घूमता रहता है। घुसने का मार्ग तो बिल मे है, किन्तु निकलना अत्यन्त कठिन है। क्या ऐसे बिल को तुमने देखा है ?"

हर्यश्वों ने कहा—"नहीं, प्रभो! हमने तो उस बिल को देखा नहीं।"

नारदजीने प्यार से कहा—"अरे, बच्चो! बिना उस बिल का मर्म जाने तुम सृष्टि करो भी तो व्यर्थ है। उसका कोई महत्व नहीं। अब हमारे चौथे प्रश्न का उत्तर दो। हमने एक ऐसी स्त्री देखी जो क्षण क्षण मे रूप बदलती रहती है। कभी नीली साड़ी पहिन लेती है, तो क्षण भरमे रक्त चूँनरी ओढ़ लेती है, कभी शुभ्र स्वच्छ बगुले के पख के समान श्वेद चद्दर ओढ़-लेती है। कभी बालों की लम्बी वेणी बना लेती है, कभी उन्हे घुँघराले बनाकर इधर-उधर बिखेर लेती है। कभी पीछे के बालों को कटवाकर नूतनता का प्रचार करती है। कभी घूँघट मार लेती है। कभी चन्द्रमा से मुख को खोल देती है। कभी सिरनंगा करके इठलाती हुई निर्लज्ज होकर स्वच्छन्द घूमती है। कभी काजर, बेंदी सुरमा लगाती है, कभी पूरी वेश्या बन जाती है, कभी कुलवती का सा अभिनय करने लगती है। कभी हँसती है, कभी नाचती है, कभी गाती है, कभी खाती है, कभी पान करती है। क्षण-क्षण में पल-पल मे निमिप-निमिप मे रूप बदलती रहती है। उस बहुरूपिणी ललना को तुमने कभी देखा है ?"

हर्यश्वों ने कहा—"महाराज, हमारे सामने तो वह कभी आई नहीं।"

नारदजीने झिडक कर कहा—"तुम पगले हो, अरे बच्चो! वह ठगिनी तो किसी की भी लाज नहीं करती। सबके सामने नाचती है, तुम उसे देखकर भी नहीं देखते यही तो मूर्खता है। अब हमारा पाँचवा प्रश्न सुनो। हमने एक ऐसे पुरुष को देखा जो अपने को बडा कुलीन सदाचारी मानता है, किन्तु उसकी स्त्री उसके सामने ही व्यभिचार वृत्ति करती है, वह उसे देखता है, देखकर भी कुछ नहीं कहता।"

हर्यश्वों ने कहा—"महाराज! हमने तो ऐसे निर्लज्ज पुरुष को कभी देखा नहीं।"

नारदजी ने कहा—"तब तुमने कुछ नहीं देखा। अच्छा हमारे छटे प्रश्न का भी उत्तर दे सकते हो तो दो। हमने एक ऐसी नदी देखी जो उत्तर की ओर भी वह रही है और दक्षिण की ओर भी। तुमने उसे कभी देखा है।"

हर्यश्वों ने आश्चर्य चकित होकर कहा—"भगवन् आप कैसे प्रश्न कर रहे हैं। सब नदियों को उत्तर से दक्षिण की ओर बहते हुये तो हमने देखा है किन्तु दोनों ओर बहने वाली उभय वाहिनी नदी को तो हमने अभी तक नहीं देखा।"

नारदजी ने कहा—"तभी तो मैं कहता हूँ, तुम अभी बच्चे हो, बुद्धि के कच्चे हो, हृदय के सच्चे हो। मेरे प्यारे बच्चो! मेरे इन प्रश्नों पर मनन करो, विचार करो। अब मेरा सातवाँ प्रश्न भी सुनलो। हमने एक ऐसा सुन्दर चित्र विचित्र रंगवाला २५ तत्त्वों का बना एक घर देखा है, कि उसमें प्रवेश करते ही प्राणी अपने यथार्थ तत्त्वको भूल जाता है। तुमने भी उसे देखा है। बताओ वह क्या है?"

हर्यश्वो ने सोचकर कहा—"महाराज ! देखा होगा। अब तो हमे उसका स्मरण आ नहीं रहा है।"

नारदजी ने कहा—"यही तो अज्ञान है तभी तो मैं कहता हूँ, इस अल्प बुद्धि के सहारे तुम सृष्टि कैसे कर सकते हो? अब मेरे आठवें प्रश्न का उत्तर दो। तुमने समीप ही उडने वाले ऐसे हंस को देखा है, जिसके पङ्ख चित्र विचित्र हो अनेकों रङ्गो से वह रङ्गा हुआ हो ?"

हर्यश्वो ने कहा—"कृपानाथ ! हमने सफेद हंसो को तो बहुत देखा है, किन्तु चित्र विचित्र पङ्खो वाले हंस को तो आज तक देखा नहीं।"

नारदजी ने कहा—"अरे भैया, देखकर भी न देखना यही तो मूर्खता है, इसी का नाम तो अज्ञान है। अज्ञानी पुरुषो के सिर पैर सींग थोडे ही होते हैं। न उनके पूँछ होती है न चार पैर ही। अच्छा, अब नौवे प्रश्न का उत्तर दो।

एक ऐसा चक्र है, जो अपने आप घूमता ही रहता है। वह वज्र तथा छूरे से बना हुआ है। बड़ा तीक्ष्ण है कभी भी नहीं रुकता।"

हर्यश्वो ने कहा—"दयासागर ! हम लोगो ने तो उस चक्र का साक्षात्कार किया नहीं।"

नारदजी ने कहा—"अरे, तुम तो भैया सट्ट पट्ट से ही दिखाई देते हो। अच्छा, तुम अपने सर्वज्ञ पिता की वास्तविक आज्ञा को समझने मे समर्थ हो कि नहीं ?"

हर्यश्वों ने कहा—"महाराज ! हमारे पिता सर्वज्ञ हैं, कि नहीं हैं इसका तो हमे पता नहीं और हम यह भी पता नहीं कि जो आज्ञा दी है वह वास्तविक है या अवास्तविक। उन्होंने

हर्यश्वों का नारदजी के कूटवचनों पर विमर्श

(३७४)

तन्निशम्याथ हर्यश्वा औत्पत्तिकमनीषया ।
वाचः कूटं तु देवर्षेः स्वयं विममृशुर्धिया ॥❀
(श्रीभा० ६ स्क० ५ अ० १० श्लो०)

छप्पय

नारद के सुनि कूट प्रश्न मिलि ध्यान लगायो ।
लिंग देह ई भूमि अत कन जाको पायो ॥
नित्य मुक्त हरि लखे बिना फल कमनिको नहिं ।
ब्रह्मरूपनिल प्रविशि लौटि फिर आयो को कहि ॥
बुद्धि स्वैरिणी नारि है, पति अज्ञानी जीव है ।
उभयवाहिनी नदी जिह, माया जिहि पति शीव है ॥

सद्गुरु प्रत्यक्ष उपदेश कम किया करते हैं । क्योंकि योग्य बुद्धिमान अधिकारी शिष्य के लिये संकेत ही यथेष्ठ होता है । एक कथा है—देव, असुर, तथा मनुष्य तीनों मिलकर लोक पितामह ब्रह्माजी के समीप गये और बोले—हमें सर्वोत्तम उपदेश दीजिये । ब्रह्माजी ने यह सुनकर तीन बार द, द, द, ऐसा कह दिया ।

❀ श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! भगवान् नारदजी के इन कूट वचनों का श्रवण करके उन दक्ष पुत्र हर्यश्व ने अपनी स्वभाव की विवेक शाल बुद्धि द्वारा स्वय ही इन सब प्रश्नों का उत्तर सोचने लगे । विचार करने लगे यह क्या बातें हैं ।"

जो जैसे अधिकारी था उसने उसका वैसा ही अर्थ लगा लि देवता प्रायः अजितेन्द्रिय होते हैं, अतः उन्होंने समझा ब्रह्म हमसे कह रहे हैं 'दम' का आश्रय लो। असुर प्रायः दया होते हैं, उन्होंने अर्थ लगाया—कमलासन हमसे दया करने कहते हैं। मनुष्य प्रायः फल के हेतु से काम करने वाले कृ होते हैं, अतः उन्होंने 'द' का अर्थ समझा कि हंसवाहन भगव चतुरानन हमें दान का उपदेश कर रहे हैं। इस प्रकार अप बुद्धि से विमर्श करके जो जैसा अधिकारी होता है उसका वै ही अर्थ निकालता है। अनधिकारी को उपदेश करना व्यर्थ वह उसे कभी भी ग्रहण नहीं कर सकता।

श्री शुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! नारदजी के गूढ अभि प्राय से युक्त कूट वचनों को सुनकर हर्यश्वगण अपने आप हं अपनी स्वाभाविक विचारशीला बुद्धि से पुनः पुनः उनका अर्थ सोचने लगे। वे अब प्रजा की वृद्धि के निमित्त तप करना तो भूल गये, देवर्षि ने जो आकर बीच में अन्तःकरण में १० गुत्थियाँ डाल दीं उन्हीं के सुलझाने में वे लोग लग गये।"

उन्होंने सोचा—नारदजी ने कहा है—तुम पृथ्वी का अन्त बिना देखे किस प्रकार प्रजा उत्पन्न करोगे। तो यह इस पृथ्वी से उनका अभिप्राय क्या है? अन्त देखना क्या है और प्रजा की उत्पत्ति क्या? सोचते-सोचते उनके शुद्ध अन्तःकरण में इन तीनों बातों का अर्थ प्रस्फुटित होने लगा। यह षोडश कलाओं से युक्त जीव नाम लिंग, शरीर ही भूमि है, यही नित्य शुद्ध मुक्त आत्मा का अनादि बन्धन है। जब तक इसका अन्त न देख लें इसका परिणाम न समझ लें कि कर्म करने से ८४ का चक्कर तैयार हो रहा है, तब तक असत् कर्मों के करने से जो

कार्य मोक्ष मार्ग में उपयोगी नहीं है उनके आचरण से लाभ ही क्या ? अतः पहले हमें जीव और ब्रह्म का विवेचन करके इन कर्मों का यथार्थ स्वरूप समझ लेना चाहिये। यही वीणापति भगवान् नारद के प्रथम गूढ प्रश्न का भावार्थ है।

अब दूसरी बात देवर्षि ने यह कही थी कि 'एक ऐसा राष्ट्र है जिसमें एक ही पुरुष है।' राष्ट्र तो यह नाना रूपों में दिखाई देने वाला जगत् है, इसमें जो हमें यह विभिन्नता दिखाई दे रही है यह हमारा भ्रम है। वास्तव में तो सर्वत्र वही एक ईश्वर तत्त्व ही व्याप्त है वही—"एकमेवाद्वितीयम्" है। ब्रह्म के अतिरिक्त दूसरा कुछ है ही नहीं। इस जगत् रूपी राष्ट्र में ब्रह्म पुरुष एक ही है। जब तक उसका ज्ञान नहीं होता, तब तक अज्ञानी बन कर असत् कार्यों को करते रहना व्यर्थ है। अतः सर्वप्रथम उन जाग्रत स्वप्नादि सम्पूर्ण अवस्थाओं के साक्षी अपने ही आश्रय से रहने वाले, स्वय प्रकाश, प्रकृति आदि से अतीत नित्य मुक्त उन परब्रह्म प्रभु को ही जानना चाहिये। उसके प्रथम ही कार्यों में प्रवृत्ति होने से कुछ भी लाभ नहीं।

तीसरी बात नारदजी ने यह कही थी, कि 'एक ऐसा बिल है जिसम से निकलने का मार्ग ही नहीं। तो यह बिल यथार्थ में क्या है। सोचते-सोचते वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे। अरे, ब्रह्मवित् पुरुष ब्रह्म ही हो जाता है, फिर वह ब्रह्म रूप बिल में जाकर लौटता नहीं, उसकी पुनरावृत्ति समाप्त हो जाती है। उस ब्रह्मरूप बिल का बिना पता लगाये कार्य करना अनुचित है।

चौथी बात नारद जी ने पूछी थी, तुम एक बहुरूप धारण करने वाली स्त्री को जानते हो, तो वह स्त्री यह बुद्धि ही है। यही

जो जैसे अधिकारी था उसने उसका वैसा ही अर्थ लगा लिया। देवता प्रायः अजितेन्द्रिय होते हैं, अतः उन्होंने समझा ब्रह्माजी हमसे कह रहे हैं 'दम' का आश्रय लो। असुर प्रायः दयाहीन होते हैं, उन्होंने अर्थ लगाया—कमलासन हमसे दया करने को कहते हैं। मनुष्य प्रायः फल के हेतु से काम करने वाले कृपण होते हैं, अतः उन्होंने 'द' का अर्थ समझा कि हंसवाहन भगवान् चतुरानन हमें दान का उपदेश कर रहे हैं। इस प्रकार अपनी बुद्धि से विमर्श करके जो जैसा अधिकारी होता है उसका वैसा ही अर्थ निकालता है। अनधिकारी को उपदेश करना व्यर्थ है, वह उसे कभी भी ग्रहण नहीं कर सकता।

श्री शुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! नारदजी के गूढ़ अभिप्राय से युक्त कूट वचनों को सुनकर हर्यश्वगण अपने आप ही अपनी स्वाभाविक विचारशीला बुद्धि से पुनः पुनः उनका अर्थ सोचने लगे। वे अब प्रजा की वृद्धि के निमित्त तप करना तो भूल गये, देवर्षि ने जो आकर बीच में अन्तःकरण में १० गुत्थियाँ डाल दीं उन्हीं के सुलझाने में वे लोग लग गये।"

उन्होंने सोचा—नारदजी ने कहा है—तुम पृथ्वी का अन्त बिना देखे किस प्रकार प्रजा उत्पन्न करोगे। तो यह इस पृथ्वी से उनका अभिप्राय क्या है? अन्त देखना क्या है और प्रजा की उत्पत्ति क्या? सोचते-सोचते उनके शुद्ध अन्तःकरण में इन तीनों बातों का अर्थ प्रस्फुटित होने लगा। यह षोडश कलाओं से युक्त जीव नाम लिंग, शरीर ही भूमि है, यही नित्य शुद्ध मुक्त आत्मा का अनादि बन्धन है। जब तक इसका अन्त न देख ले इसका परिणाम न समझ ले कि कर्म करने से ८४ का चक्कर तैयार हो रहा है, तब तक असत् कर्मों के करने से जो

कार्य मोक्ष मार्ग मे उपयोगी नहीं हैं उनके आचरण से लाभ ही क्या ? अतः पहले हमे जीव और ब्रह्म का विवेचन करके इन कर्मों का यथार्थ स्वरूप समझ लेना चाहिये। यही वीणापति भगवान् नारद के प्रथम गूढ प्रश्न का भावार्थ है।

अब दूसरी बात देवर्षि ने यह कही थी कि एक ऐसा राष्ट्र है जिसमे एक ही पुरुष है।' राष्ट्र तो यह नाना रूपो में दिखाई देने वाला जगत् है, इसमे जो हमे यह विभिन्नता दिखाई दे रही है यह हमारा भ्रम है। वास्तव मे तो सर्वत्र वही एक ईश्वर तत्त्व ही व्याप्त है वही—"एकमेवाद्वितीयम्" है। ब्रह्म के अतिरिक्त दूसरा कुछ है ही नहीं। इस जगत् रूपी राष्ट्र मे ब्रह्म पुरुष एक ही है। जब तक उसका ज्ञान नही होता, तब तक अज्ञानी बन कर असत् कार्यो को करते रहना व्यर्थ है। अत' सर्वप्रथम उन जाग्रत स्वप्नादि सम्पूर्ण अवस्थाओं के साक्षी अपनेही आश्रय से रहने वाले, स्वय प्रकाश, प्रकृति आदि से अतीत नित्य मुक्त उन परब्रह्म प्रभु को ही जानना चाहिये। उसके प्रथम ही कार्यों मे प्रवृत्ति होने से कुछ भी लाभ नहीं।

तीसरी बात नारदजी ने यह कही थी, कि 'एक ऐसा बिल है जिसमे से निकलने का मार्ग ही नहीं। तो वह बिल यथार्थ मे क्या है। सोचते-सोचते वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे। अरे, ब्रह्म वित् पुरुष ब्रह्म ही हो जाता है, फिर वह ब्रह्म रूप बिल मे जाकर लोटता नहीं, उसकी पुनरावृत्ति समाप्त हो जाती है। उस ब्रह्मरूप बिल का बिना पता लगाये कार्य करना अनुचित है।

चौथी बात नारद जी ने पूछी थी, तुम एक बहुरूप धारण करने वाली स्त्री को जानते हो, तो वह स्त्री यह बुद्धि ही है। नही

नाना प्रकार के रूप रखकर जीवन को भ्रम में डाल देती है। यह कृष्ण वर्ण, श्वेतवर्ण और रक्तवर्ण की चुनरी ओढ़ने वाली गुणमयी बुद्धि ही जीव को एक योनिसे दूसरी योनिमें घुमाती फिरती है। अज्ञान रूपी घूँघट में यह अपनी "अप्रसूदस" मुख छिपाये रहती है। सूक्ष्मदर्शी पुरुष जब तक इसके मुख का घूँघट उठा कर देख न ले इससे पूर्ण परिचय प्राप्त न हो जाय, तब तक प्रजा की वृद्धिरूप असत् कार्यों मे प्रवृत्त होना पशुता है।

नारदजी का पाँचवाँ प्रश्न था "व्यभिचारिणी स्त्री के पति से तुम्हारा परिचय है।" तो यह व्यभिचारिणी स्त्री यह गुणमयी बुद्धि ही है। इसका पति जो मायामोहित जीव है, वह इसके ससर्ग से—सङ्गदोष से पतित हो गया है। अपने स्वरूप को भूल गया है। अपनी पद प्रतिष्ठा खो बैठा है। ऐश्वर्य से भ्रष्ट होकर वह उसका आज्ञाकारी किङ्कर बन गया है, वह जैसा कहती है वैसा करता है। वह सुखी होती है, तो अपने को भी यह सुखी अनुभव करता है। वह दुखित होती है, तो यह भी अपने को दुखी समझता है। जब तक इस स्वैरिणीके पति माया-मोहित जीव को यथार्थ रूप से न जान ले, तब तक पुरुष का इस ससार मे विवेक शून्य होकर मिथ्या कर्म कलापों में फँसे रहने से लाभ ही क्या ? उसे इन असत् कार्यों के करने से असत् लोकों की प्राप्ति होगी।"

देवर्षि भगवान् ब्रह्म का छटा प्रश्न था "तुम लोग दोनों ओर बहने वाली नदी को जानते हो ?" तो यह माया ही उभय वाहिनी नदी है। इस मोहिनी माया से ही जगत् की उत्पत्ति सम्भव हो सकती है, इसी के द्वारा सहार की भी कल्पना की जाती है। शब्द रूप रस गन्ध और स्पर्श जन्य इहलोकिक सुख तथा विमान, अप्सराय, सुधा तथा कल्पवृक्ष आदि आदि

पारलौकिक सुख ये दोनों ही इस मायारूपी सरिता के प्रवाह हैं। यह निरन्तर बिना विश्राम के वेग से बहती रहती हैं। इस नदी का जिसे यथार्थ परिचय प्राप्त नहीं हुआ और इसे बिना जाने उन्मत्त हाथी की भांति इसमें घुस कर क्रीड़ा करता है, उसे यह नदी अपने प्रबल वेग से तीक्ष्ण धारा मे बहा ले जाती है। ऐसे प्रमत्त पुरुष के कार्यों से क्या लाभ ?

नारद जी का, सातवॉ प्रश्न था—"तुम लोगों ने २५ पदार्थ के बने विचित्र घरको देखा है ?" तो ये ५ ज्ञानेन्द्रियॉ ५ कर्मेन्द्रियॉ ५ भूत, पंचतन्मात्राये तथा मन बुद्धि अहंकार प्रकृति और पुरुष ये ही २५ तत्व हैं। इन २५ तत्वों का अद्‌भुत आश्रय अन्तर्यामी पुरुष है। कार्य कारण संघात के अधिष्टाता उस पुरुष सत् स्वरूप को बिना जाने व्यापार मे प्रवृत्ति होने का ही नाम असत् व्यापार है। उस असत् व्यापार के करने से कोई लाभ नहीं, कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता।

आठवॉ प्रश्न नारदजीने यह किया था कि "तुम चित्र विचित्र पंखो वाले किसी हंस को जानते हो ?" तो हम समझते हैं यह शास्त्र ही चित्र विचित्र हंस है। इसी के द्वारा प्रवृत्ति मार्ग का ज्ञान होता है, इसीके द्वारा निवृत्ति मार्ग का। इसीसे बन्धन जाना जाता है। इसी से मोक्ष का विवेक होता है। इस ईश्वर प्रतिपादित शास्त्र का परित्याग करके जो भाव से कर्मों मे प्रवृत्तहोता है, वह सिद्धि को प्राप्त नहीं हो सकता, न उसे सुख ही मिलता है और न परागति ही। शास्त्र ही तो यह बताता है, यह जड है, यह चैतन्य है। यह ग्राह्य है, यह त्याज्य है। यह श्रेय है, यह प्रेय है, यह निषिद्ध है,यह विधेय है। बिना इन सबके ज्ञानके बहिर्मुख कर्मों के करने से लाभ क्या ? इसीलिये

भगवान् की आज्ञा है कि कार्य और अकार्य की व्यवस्था में शास्त्र ही प्रमाण है।

नारदजी का नवाँ प्रश्न यह था कि "तुम लोगों ने छुरे और वज्र के बने हुये स्वयं ही घूमने वाले चक्र को देखा है?" सो, यह निरंतर विना विश्राम के घूमने वाला काल चक्र ही तीक्ष्ण क्षुरप्रचक्र है। यही सम्पूर्ण जगत् को घुमा रहा है, इसीने सबको आकर्षित कर रखा है। यह अति स्वतन्त्र परम दुर्निवार कभी व्यर्थ न होने वाला तीखी धारों वाला चक्र है। इसकी गति विधि को जाने विना कर्मों मे प्रवृत्त होना मानों दुःख को स्वयं सर्वस्व देकर मोल लेना है।

दशवाँ देवर्षि का प्रश्न था "तुम सर्वज्ञ पिता की वास्तविक आज्ञा को विना जाने बूझे उसके अनुरूप सृष्टि कैसे कर सकते हो? सो यह शास्त्र ही वास्तव मे सच्चा पिता है। इसमे प्रवृत्ति वाक्य भी हैं, किन्तु वह इसकी वास्तविक आज्ञा नहीं है। निवृत्ति परक वाक्य ही शास्त्र क मुख्य और उद्देश्य वाक्य है। उन निवृत्ति मार्ग के वाक्य को विना जाने बूझे गुणों मे आस्था रखने वाला पुरुष किस प्रकार निवृत्ति मार्ग मे प्रवृत्त हो सकता है?"

श्री शुकदेवजो कहते हैं—राजन्! इस प्रकार सोचकर वे सव हाथ जोड़कर नारदजी के समीप गये और वोले—"गुरूजी! हमें निवृत्ति मार्ग की दीक्षा दे दीजिये। यथार्थ पिता तो आप ही हैं, जो आपने शास्त्र का मर्म समझाया।"

नारदजी तो आये ही थे इसी काम के लिये उन्होंने सोचा—"यह तो बड़ी अच्छी वात हो गई। एक साथ दश हजार शिष्य मिल गये। सव को लंगोटी पहिना उन्हे भी वावाजो वना

दिया। उन्होंने श्रद्धा भक्ति सहित अपने गुरुदेव की प्रदक्षिणा की और उनकी आज्ञा लेकर वे उस मोक्ष मार्ग की ओर चल पड़े, जिसमें जाकर फिर कोई लौटता नहीं।

नारदजी ने जब देखा मेरा काम पूरा हो गया, तो वे भी वीणा के तारों को झनकारते हुए वहाँ से चले गये।

छप्पय

आश्रय पुरुष पचीस तत्व के क्षेत्र गेह भल।
हरि प्रतिपादक शास्त्र हंस है अति ई निर्मल॥
काल चक्र अति तीक्ष्ण शास्त्र ई पिता सरिस है।
निवृति मार्ग ई मुख्य कही ताको आयसु है॥
यों मन तें सब सोचिकें, नारद के चेला भये।
मोक्ष धर्म की राह गहि, बाबाजी सब बनि गये॥

पुत्र वियोग से दुःखित दक्ष द्वारा पुनः पुत्रों की उत्पत्ति

(३७५)

नाशं निशम्य पुत्राणां नारदाच्छीलशालिनाम् ।
अन्वतप्यत कः शोचन्सुप्रजस्त्वं शुचां पदम् ॥
स भूयः पाञ्चजन्यायामजेन परिसान्त्वितः ।
पुत्रानजनयद्दक्षः शबलाश्वान्सहस्रशः ॥*
(श्रीभा० ६ स्क० ५ अ० २३-२४ श्लो०)

छप्पय

नारायण सर माहिं भई नारद त भेंटा ।
सुनी दक्ष जिह बात बने नाबाजी बेटा ॥
भयो हृदय अति दुःख बहुत मन महँ पछितायो ।
जैसे तैसे धर्यो धीर जब विधि समझायो ॥
पाचजनी ने फिर सहस, जने पुत्र शबलाश्व वर ।
पितु आयसु तें गये वे, तप हित नारायण सुसर ॥

आशा का भग होना ही महान् दुःख है । अपनी आशा वेलि को पल्लवित पुष्पित तथा फलित हुआ देखना ही सब से बड़ा सुख

---

* श्री शुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! जब प्रजापति दक्ष ने अपने शील सम्पन्न पुत्रों को नारदजी के उपदेश से कर्तव्यच्युत हुआ सुना, तो वे बहुत शोकाकुल हुए । कभी सत्सतान भी शोक का कारण हो जाती है । फिर ब्रह्माजी की सान्त्वना देने से उन्होंने अपनी पाञ्जनी पत्नी में शबलाश्व नामक सहस्र पुत्र और उत्पन्न किये ।"

शीघ्रता के साथ मुनि ने कहा—"राजन्! उनकी मृत्यु नहीं हुई, उन्होंने तो अमृतत्व प्राप्त कर लिया है। मृत्यु के सिर पर भी पैर रख दिया है। वे सबके सब मोक्ष धर्मावलम्बी बन गये हैं। सब के सब चुटिया कटाय लँगोटी लगाय बाबाजी बन गये हैं, बाबाजी। नारदजी ने उन सबको मूड़ लिया है। उनमें से एक भी सृष्टिवृद्धि के काम का नहीं रहा। राजन्! अब आप उनके लौटने की आशा छोड़िये।"

यह सुनकर दुखित मन से दक्षजी ने कहा—"महाराज! क्या आपने किसी के मुख से यह बात सुनी है या उन्हें आपने कहीं देखा है। नारदजी ने मेरे साथ यह घोर अन्याय किया। उन्होंने किस जन्म के वैर का मुझसे बदला लिया है। मैंने तो उनका कुछ बिगाड़ा नहीं है।"

प्रजापति दक्ष की ऐसी बात सुनकर वे वृद्धि मुनि बोले—"राजन्! आप इतने ज्ञानी ध्यानी बुद्धिमान होकर ये कैसी भूली भूली सी बातें कर रहे हैं। नारदजी ने तो उनके साथ बड़ा उपकार किया। आपका भी उन्होंने बड़ा उपकार किया जो आपके कुल को तार दिया। महाराज! आप इस विषय में चिन्ता न करें न संदेह। हमने स्वयं नारायण सर पर उन्हें नारदजी से दीक्षा लेते हुये देखा था। हमारे सम्मुख उन्होंने अपने अमूल्य वस्त्रों को फेंक कर लँगोटियाँ लगाई थीं। हमारे सम्मुख वे नमोनारायणाय-नमोनारायणाय कहते हुये, नारदजी की परिक्रमा करते हुये गये थे। इतना कहकर और दक्ष प्रजापति को भाँति-भाँति से समझा बुझाकर उनके द्वारा सत्कृत होकर मुनिगण इच्छापूर्वक आगे को चले गये, किन्तु दक्ष के मन में किसी भी प्रकार से शान्ति नहीं होती थी। वे सदा उदास बने रहते थे। अब वे सृष्टि

अमुख से हो गये। यह देख कर ब्रह्मलोक से लोक-पितामह ब्रह्माजी अपने हंस पर चढ़कर दक्ष को समझाने के निमित्त उनके समीप आये।

लोक पितामह को अपनी ओर आकाश मार्ग से उतरते देख कर दक्ष सहसा संभ्रम के साथ उठकर खड़े हो गये। ब्रह्माजी के उतरने पर दक्षने उनकी विधिवत् पूजा की, और अपने भाग्य को सराहा।

दक्ष की पूजा को स्वीकार करके भगवान कमल-योनि बोले—"राजन्! आप इतने उदास क्यों हैं? किसलिये आप इतना मानसिक दुःख उठा रहे हैं? अपने दुःख का कारण मुझे बताओ।"

यह सुनकर दक्ष ने कहा—"प्रभो! मेरे सर्वगुण-सम्पन्न दश हजार पुत्र थे। उन सब का इन तूमडिया, नारदने बाबाजी बना दिया। एक भी नामलेवा पानी देवा नहीं छोड़ा। भगवन्! मुझे इस बात से बड़ा दुःख हो रहा है। हाय! भगवन्! वे कैसे होन-हार यशस्वी तेजस्वी बालक थे।

ब्रह्माजी ने कहा—"राजन्! जो होनाथा सोहोगया, तुम इसके लिये इतनी चिन्ता क्यों करते हो। नारद बिचार का क्या दोष? उन सबका प्रारब्ध ही ऐसा था। उनके भाग्य में ही बाबाजी होना बदा था, अब कोई बात नहीं अबके फिर तुम पुत्रोंको उत्पन्न करो।"

प्रजापति दक्षने उदास मन से कहा—"भगवन्! अब क्या पैदा करूँ? पहिले जैसे पुत्र अब थोड़े ही उत्पन्न हो सकते हैं।"

ब्रह्माजी ने कहा—"नहीं, तुम चिन्ता मत करो पहिले उस ही पुत्र उत्पन्न हो जायँगे। फिर तुम एक बार प्रयत्न करो।"

पितामह के बहुत समझाने बुझाने पर उनकी आज्ञा शिरोधार्य करके प्रजापति दक्षने अपनी पाञ्चजनी नामक पत्नी मे फिर सहस्र पुत्रों को उत्पन्न किया। अब के उन सबका नाम रखा शबलाश्व। वे सब बड़े ही सरल, सदाचारी और सद्गुण सम्पन्न थे। उन्होंने हाथ जोडकर अपने पिता से पूछा—"प्रभो! हम क्या करें।"

यह सुनकर अत्यन्त स्नेह के साथ दक्षने कहा—"पुत्रो! तुम सब प्रजावृद्धि के निमित्त जाकर तपस्या करो और तपस्या से श्रीहरि को प्रसन्न करके सृष्टि वृद्धि में सहयोग दो।"

यह सुन करके पिता की आज्ञा शिरोधार्य करके वे सबके सब शबलाश्व नामक दक्ष-सुत उसी पश्चिम दिशा की ओर चल दिये, जिस दिशा की ओर उनके पूर्वज हर्यश्व भाई गये थे। ये सब भी चलते चलते उसी नारायण सर के समीप पहुँचे जिस पर उनके अग्रजों ने सिद्धि प्राप्ति की थी।

उस परम पावन तीर्थ में उन सब शबलाश्वो ने सविधि स्नान किया। स्नान करते ही उनका अन्तःकरण शुद्ध हो गया। जो कुछ यत्किंचित मल था, वह तीर्थ के प्रभाव से धुल गया। उन सबका हृदय परम निर्मल बन गया। वे बड़ी सावधानी से प्रणव सहित इस मंत्र को जपने लगे। जिसका आशय यह था"उन ओंकार स्वरूप परम पुरुष परमात्मा नारायण को नमस्कार है, उन विशुद्ध सत्त्वगुण के आश्रय परम हस स्वरूप परमेश्वर का हम ध्यान करते हैं। इस प्रकार वे परब्रह्म का जप करते हुए घोर तपस्या करने लगे।। कुछ काल तो फल फूलों पर निर्वाह किया। कुछ काल केवल जल पीकर ही रहे और कुछ काल वायु के ही आधार पर रह कर उन्होंने भोजन-पानी सभी का परित्याग कर दिया।

इस प्रकार उन्हें घोर तप में प्रवृत देखकर नारद जी ने सोचा—"चलो, देखें, इनकी भी नाड़ी टटोलें। ये भी किसी प्रकार मुड़ जायँ, तो आनन्द आ जाय। ग्यारह हजार शिष्य हो जायँ, तो कुलपति बन जायँ।

श्री शुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! लाभ से लोभ बढ़ता है। एक बार दाढ़ गढ़क जाने पर बार बार उस वस्तु को पाने की अभिलाषा होती है। इसीलिये नारद जी उन्हें मूड़ने के लिये पुनः उन शबलाश्वों के समीप गये।"

छप्पय

करत तहाँ स्नान भये हिय पावन सबके।
जब सब तप मिलि करें निहारे नारद अबके॥
ये बालक हू सौम्य मोक्ष पद के अधिकारी।
देखूँ चलि के तहाँ ध्यान तें इनकी नारी॥
पर उपकारक व्रतनिरत, चले देवऋषि तुरत तहँ।
करें कठिन नियमादि व्रत, पहुँचे मुनि शबलाश्व जहँ॥

शबलाश्वों को भी शिष्य बनाने पर दक्ष का नारदजी को शाप

(२७६)

इति तानपि राजेन्द्र प्रतिसर्गधियो मुनिः।
उपेत्य नारदः प्राह वाचः कूटानि पूर्ववत्॥*
(श्रीभा० ६ स्क० ५ अ० २९ श्लो०)

छप्पय

प्रश्न पुराने करे दक्षसुत सहस फँसाये।
फिरि दश वे ही कूट वचन कहि कहि समुझाये॥
ज्येष्ठ बन्धु जिहि गैल गये तुम सबहू जाओ।
श्रेष्ठ मार्ग महँ जाय नित्य सुख तुम सब पाओ॥
सृष्टि वृद्धि विपरीत या, पट्टी तुरत पढ़ाइकें।
नारद मुनि चम्पत भये, वीना मधुर बजाइकें॥

जिनका स्वभाव परोपकार करने का होता है, उन्हें चाहे कितना भी कष्ट हो, वे परोपकार किये बिना रह नहीं सकते। सन्त स्वभाव को दुस्त्यज बताया है। रावण से जब बार-बार सीता लौटा देने का आग्रह किया गया, तो उसने गर्ज कर दृढ़त

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन्! उन शबलाश्वों को भी सृष्टि वृद्धि की इच्छा से तप करते हुए देखकर उनके सम्मुख पहिले की भाँति नारदजी ने आकर उनसे भी वे ही कूटवचन कहते हुए ये बातें कहीं।"

के स्वर म कहा—' चाहे मेरे सिर के सहस्रो टुकडे क्यो न हो जायॅ, मैं सीता को नही लोटाऊँगा। राम के सम्मुख कभी भी नतमस्तक न हूगा। मैं क्या करूँ, मैं भी विवश हूँ। यह मेरा सहज दोष है, क्योंकि स्वभाव को दुरतिक्रम बताया है।

एक बडी प्रसिद्ध कथा है। कोई जन्म का चोर था। अत मे चोरी करते करत वृद्धावस्था मे उसे पश्चात्ताप हुआ। किसी जमात के महन्त जी से उसने दीक्षा लेली और साधुओं की जमात मे रहने लगा। रात्रि म जब साधु सो जायॅ, तो किसी का चिमटा उठाकर उधर रख दे। किसी का पूजा पार्षद कहीं छिपा दे। किसी के तुम्बा को उठाकर दूसर के सिर क समीप रख दे। सब के तुम्बे बदल दे। प्रात.काल साधु उठकर एक दूसरे से लड। तूने हमारा तुम्बा क्या चुराया। वह क्रोध करके कहता—' मैंने कब चुराया ?" यों नित्य युद्ध हो। एक दिन किसी बुद्धिमान् साधु ने भूठी नींद में जागकर उसका सब कृत्य देखा। पकडा गया। महन्तजी के सम्मुख उपस्थित किया गया। महन्तजी ने उसे डॉटते हुए कहा— क्यों रे, तूने अभी तक आचरण ठीक नही किया मूर्ख कहीं का। साधु होकर भी अभी चोरी नहीं छोडता।" वह लज्जित होकर बोला—' महाराज ! चोरी मैंने छोड दी तो क्या अब तूमाफेरी भी न करूँ ? इसके बिना तो महाराज ! मुझसे रहा नहा जाता। अपने स्वभाव से विवश हूँ।' यही दशा नारदजी की है। जहा भी किसी को मोक्षधर्म का अधिकारी देखते है उसके पाछे वैसे ही पड जाते हैं, जसे काशी म रेशमी साडी क्रय करने वालों क पीछे दलाल लग जाते हैं।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! वे शवलाश्व नेत्र बन्द किये हुए परब्रह्म मन्त्र का जप करते हुए घोर तपस्या कर रहे थे।

इतने मे ही वीणा की तानों पर राग अलापते हुए, रामकृष्ण गुनगाते हुए, भूरी-भूरी जटाओं को हिलाते हुए, खड़ाऊँ चटखाते हुए नारदजी उनके समीप पहुँच गये और उनका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने के लिये बोले—'शबलाश्वो! जय-जय सीताराम! नमो नारायणाय! नमो नारायणाय।'

वीणापाणि भगवान् नारद को निहार कर वे सबके सब तुरन्त जलसे निकले और अपनी भीगी जटाओं से नारदजी के चरणों को गीलाकर दिया। सब के सिर पर हाथ रख कहते हुए, दूसरे हाथ में वीणा को हिलाते हुए नारदजी ने उन सब की कुशल पूछी।"

शबलाश्वों ने भी देवर्षि की विधिवत् पूजा की और कहा—"प्रभो! बड़ी कृपा की जो आपने हम अबोध बालकों को स्वय ही दर्शन दिया।"

नारदजी ने गम्भीरता के साथ कहा—"हाँ, बच्चो! मैंने सोचा—"तुम सब मार्गभ्रष्ट हो रहे हो, तुम्हें चलकर सन्मार्ग दिखा दूँ।"

शबलाश्वों ने कहा—"नहीं भगवन्! हम लोग पथच्युत तो नहीं हुए। पिता ने हम जो आज्ञा दी है उसी को बड़ी सावधानी के सहित पालन कर रहे हैं। प्रजा वृद्धि के निमित्त घोर तप कर रहे हैं।"

नारदजी ने खेद के स्वर में कहा—'अरे, बेटाओ! यही तो तुम्हारी भूल है। यथार्थ पिता तो मेरे प्यारे बच्चो! शास्त्र है। शास्त्र की जो वास्तविक आज्ञा है वही समीचीन पथ है। उसपर से जाने से कल्याण हो सकता है। और सब तो कटका कीर्ण मार्ग हैं। उनमें क्षेम नहीं, प्रेम नहीं सुख नहीं, शाश्वती शान्ति नहीं और इससे ससार-चक्र की निवृति भी नहीं।

जन्म मरण रूप चौरासी के चक्कर में घूमते रहना है।"

शवलाश्वों ने कहा—"तब महाराज! हमें उस सन्मार्ग को दिखाइये। उपदेश दीजिये, हम सब क्या करें? किस मार्ग का अनुसरण करें?"

नारदजी ने कहा—"अच्छा, हम तुम लोगों से यह पूछते हैं, कि अपने ज्येष्ठ श्रेष्ठ जिस मार्ग से गये हैं, वह मार्ग समीचीन होगा या नहीं?"

शवलाश्वों ने कहा—"अवश्य ही भगवन्! बड़े लोगों का निर्धारित पथ परम पुण्यप्रद ही होगा।"

यह सुनकर प्रसन्नता प्रकट करते हुए नारदजी बोले—"हे भ्रातृवत्सलो! तुम सब बड़े धर्मात्मा शुद्ध अन्तःकरण वाले हो। देखो, तुम्हें जो मैं बताता हूँ, उसे ही तुम करो। तुम अपने बड़े भाइयों के मार्ग का ही अनुसरण करो। वही निष्कंटक श्रेयस्कर कल्याणप्रद, सर्वोत्तम, वास्तविक मार्ग है। उस मार्ग पर चलने से न श्रम होगा, न ग्लानि, अपने गन्तव्य स्थान में सरलता के साथ पहुँच जाओगे। क्योंकि श्रेष्ठ पुरुषों का मार्ग श्रेष्ठ ही होता है। तुम्हारे सभी ज्येष्ठ भ्राता श्रेष्ठ और विचारवान् थे। जो भाई अपने भाइयों के श्रेष्ठ मार्ग का अनुकरण करता है, वह पुण्यप्रद पुरुष परलोक के मरुद्गणों के साथ आनन्द करता है। तुम्हार भाइयों का मार्ग तो पुनरावृत्ति से रहित मार्ग है।"

श्री शुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! इतना कहकर नारदजी अपनी वीणा उठाकर चलते बने। इधर शवलाश्व नारदजी से १० कूट वचन रूप गुत्थियों को सुलझाने में प्रवृत्त हुए। उन्हें भी इन संसारी विषयों से-सृष्टि वृद्धि कार्य-से वैराग्य हो गया और वे भी अपने भाइयों के उसी मार्ग का अनुसरण करने लगे

जिसका उपदेश उन्हें पूर्व में नारदजी ने दिया था। ये भी सबके सब बाबाजी बन गये। अब वे प्रजा की वृद्धि के निमित्त तप न करके उस समीचीन और परमेश्वर की प्राप्ति के अनुकूल मार्ग में चलने लगे जिसकी प्राप्ति अन्तर्मुखी वृत्ति से ही सम्भव हो सकती है। उस मार्ग मे गये सो गये। वह तो ऐसा बिल है जिस मे जाने से फिर कोई निकल कर इस संसार में फिर नहीं आ सकता।

इधर प्रजापति दक्ष ने भी किसी के मुख से सुन लिया कि हमारे इन पुत्रों को भी नारदजी ने फुसलाकर बाबाजी बना दिया। तब तो उनके शोक का ठिकाना नहीं रहा। वे सोचने लगे—"भगवान जाने यह नारद हमारे पीछे क्यों पड़ा है। सृष्टि को आगे बढ़ने ही नहीं देता। मेरे बेटों को बार-बार बाबाजी बना देता है। पहिले तो मैंने पितामह पद्मयोनि के कहने से उसे क्षमा कर दिया था, अबके वह निर्लज्ज कभी मुझे दीख जाय, तो उसे अपने किये का फल चखाऊँ। उसे ऐसा दंड दूँ, कि वह भी क्या समझे कि दूसरे के बेटों को बाबाजी बनाने का फल कैसा कटु होता है।"

इधर दक्ष प्रजापति तो ये बातें सोच रहे थे, किन्तु नारदजी दूसरा ही विधान बना रहे थे। वे सोच रहे थे, जिसका एक पुत्र चला जाता है, उस पिता को भी संसार से वैराग्य हो जाता है। दक्ष के तो ११ हजार पुत्र विरागी बन गये। अवश्य ही उसे संसार से विराग हो गया होगा। यदि वह भी मुक्ति मार्ग का अधिकारी हो गया हो तो उसे भी मूड लें। ११००१ चेले हो जायें।" यही सब सोच विचारकर वीणा बजाते राम-कृष्ण गुण गाते, नारदजी दक्ष प्रजापति की सभा में पहुँचे। दक्ष ने दूर से ही नारद जी को देखा। देखकर आगबबूला हो गये। कहाँ का पाद्य,

कैसा अर्घ्य, स्वागत, सत्कार, शिष्टाचार सभी को भूल गये।

क्रोध के कारण काँपते हुए, लाल लाल आँखें निकालकर नारदजी के ऊपर टूट ही पड़े। रोष के कारण उनके वचन स्पष्ट नहीं निक-

लते थे। उनके अधरपुट कँप-कँपा रहे थे। दाँतों से ओठ को काटते हुए बोले—"क्यों वे तूमड़िये ! तू बड़ा दुष्ट है। अरे ! हम तो समझते थे, तू साधु है। भगवत्भक्त है, किन्तु तू तो ढोंगी, पाखण्डी, धूर्त, ठग, विश्वासघाती निकला।"

नारदजी सरलता के साथ कहा—"राजन् ! मैंने आपका कौन-सा अनिष्ट किया है ?"

दक्ष ने अत्यन्त रोष के स्वर में हँसी उड़ाते हुए कहा—"अहा हा ! बड़े भोले बन गये हो ? तुम्हें ऐसा प्रश्न करने में लज्जा भी नहीं आती। इससे बढ़कर और क्या तू अनिष्ट करेगा। हमारे घर में आग दे देना और हमारे सिर को काट लेना यही शेष है, सो इसे भी करले। पूछता है अनिष्ट क्या किया। तू तो है जन्म का वैरागी। वन्ध्या क्या जाने प्रसव की पीड़ा। तुझे क्या पता पिता का पुत्र के प्रति कितना प्रेम होता है। पुत्र पिता का हृदय है, बाहरी प्राण है। दस पुत्रों में से कोई एक भी माँगे तो न दिया जायगा। बीस उँगलियों में से कोई एक भी छोटी सी उँगली माँगे तो कौन देने को उद्यत होगा। तैंने तो एक नहीं, दो नहीं, दस नहीं, बीस नहीं, सौ नहीं, हजार नहीं,मेरे पूरे ११ हजार पुत्रों को लँगोटिया, भिखारी, बाबाजी बना दिया, फिर भले मनुष्योंकी भाँति पूछता है—मैंने आपका क्या बिगाड़ा। तैंने मेरा सर्वस्व बिगाड़ दिया। मेरे मनोरथ रूप महल को छिन्न-भिन्न करके नष्ट कर दिया।"

नारदजी ने धैर्य के साथ कहा—"महाराज ! आप क्रोध न करें। देखिये, परमहंस आश्रम सबसे श्रेष्ठ है गृहस्थाश्रम से भी लाखों गुना श्रेष्ठ है। उसी परमहंस्य धर्म का मैंने आपके पुत्रों को उपदेश दिया है। इसमें मैंने कोई बुरा काम किया, यह तो मेरी बुद्धि में बैठता नहीं।"

अत्यन्त क्रोध के स्वर में दक्ष ने कहा—"बैठे कहाँ से तेरी बुद्धि होती तो बैठता। बुद्धि के स्थान में तो तेरे मस्तिष्क में गोबर भरा है। अरे, सोच तो सही, तू बड़ा विरक्त बना घूमता है! जब तक मनुष्य के सिर पर ऋषि ऋण, देव ऋण और पितृ ऋण ये तीन ऋण लदे हुए हैं, तब तक वह परमहंस्य धर्म का कभी अधिकारी बन ही नहीं सकता। प्रथम ब्रह्मचर्य व्रत धारण करके वेदाध्ययन और गुरु सुश्रूषा के द्वारा ऋषि ऋण से मुक्त हुआ जाता है। फिर योग्य भार्या का पाणिग्रहण करके अग्निहोत्र पंच महायज्ञ तथा और भी बड़े-यज्ञ करके देव-ऋण से मुक्ति मिलती है। अपनी धर्म पत्नी से योग्य पुत्र उत्पन्न करके पितृ ऋण से उऋण हुआ जाता है। जिसके पुत्र नहीं उसको स्वर्ग प्राप्त हो ही नहीं सकता। यह शरीर हमारे पिता पितामह तथा सभी ऊपर के पितरों की धरोहर है। न्याय है कि जब तक हम अग्रिम वंश बढ़ाने के लिये अपने स्थान पर पुत्र को उत्पन्न करके स्थान की पूर्ति नहीं कर लेते, तब तक हमें कोई भी अधिकार नहीं, फिर ज्ञानवैराग्य की बातें बनावें। मेरे पुत्रोंने अभी संसारी सुख देखा नहीं, कर्म के विषय में उन्होंने कुछ विचार किया नहीं उन्हें तुमने लंगोटी पहिनादी, भिखारी बना दिया। न इधर के रहे, न उधर के हुए। उभय भ्रष्ट बन गये। न इह-लोक का सुख भोगा, और न परलोक में होने वाले श्रेय को ही प्राप्त कर सके।"

नारदजी ने कहा—"राजन्! आपके बच्चे बड़े सरल थे। उनका अन्तःकरण अत्यन्त ही निर्मल था, वे सर्वथा सन्यास मार्ग के अधिकारी थे। मैं अनधिकारी को कभी भूलकर भी त्याग पथ दीक्षा नहीं दे सकता। इसका आप विश्वास करें।"

यह सुनकर झिड़कते हुए दक्ष ने कहा—"चुपर हृ! बक बक:

कर रहा है व्यर्थ में। तुझे क्या पता, कौन किस मार्ग का अधिकारी है। तू तो बालकों को बहकाना जानता है। उनकी बुद्धि बिगाड़ना तैंने सीखा है। लोक मे प्रसिद्धि तो ऐसी है तू बड़ा दयालु है, किन्तु मैं कहता हूँ तुझसे निर्दयी संसार मे स्यात् ही कोई और हो। लोग कहते हैं तू भगवान् का पार्षद है, मैं कहता हूँ तुझ से निर्लज्ज को भगवान् अपना पार्षद बनाये हुए हैं यह उनके लिये भी अत्यन्त अपयश की बात है। तू उनके यश को कलंकित करने वाला कपटी क्रूर कापुरुष है। तुझे तो स्वयं ही भगवान् का पार्षदत्व छोड़ देना चाहिये था, किन्तु शील संकोच तो तेरे समीप होकर भी नहीं निकला। तू निर्लज्जता पूर्वक उनके पार्षदों में बना हुआ है। लोग कहते हैं, नारद भक्त हैं भक्त। भक्त ऐसे थोड़े ही होते हैं। भक्त तो सदा परोपकार के लिये व्यग्र बने रहते हैं। वे सदा सर्वदा सम्पूर्ण प्राणियों पर कृपा करने के लिये प्रतिक्षण लालायित रहते हैं। क्रियाशील बने रहते हैं। तू तो सौहार्द्र का नाशक और अकारण वैर करने वाला है ?"

नारदजी ने कहा—"राजन्! मैंने किससे वैर किया ?"

क्रोध में दक्ष ने कहा—'और वैर कैसा होता है ? मैंने कभी किसी समय भूल में भी तेरा अपकार किया है क्या ? फिर तैंने मुझसे किस वैर का बदला लिया ? क्यों मेरे अबोध बच्चों को फुसलाकर बहकाकर बाबाजी बना दिया।"

नारदजी ने कहा— महाराज! आप क्रोध को छोड़कर गंभीरतापूर्वक विचार करें। देखिये, जीव मात्र का चरम लक्ष्य शाश्वती शान्ति है, इस जन्म मरण रूप चक्र से छूट कर कभी नाश न होने वाले नित्य सुख को चाहते हैं। यह तब तक

प्राप्त नहीं हो सकता जब तक ससारी स्नेह बन्धन का मूलोच्छेद न हो। ससार बन्धन, बिना त्याग वराग्य के कट नहीं सकता। अतः वैरागी बनाकर मैंने तो उनके साथ महान् उपकार ही किया है।"

दक्ष ने अत्यन्त ही गम्भीर होकर रोष के स्वर मे कहा—तू बाते करता है बडी बड़ी, किन्तु उनको समझने की तुझमे बुद्धि नही। देख केवल लॅगोटी लगाने से—अवधूत वेष मात्र धारण करने से—न तो स्नेह बन्धन का ही उच्छेद होता है और न शाश्वती शान्ति की ही प्राप्ति होती है। क्योंकि बिना ज्ञानोदय हुए, केवल तेरे बहकाने से ही उन्हें वैराग्य नहीं हो सकता है। जब वैराग्य ही नही तो उपशम कैसे होगा। उपशम के बिना स्नेह बन्धन का उच्छेद होना त्रिकाल मे भी सम्भव नही।'

नारदजी ने कहा—'ससार की वासना मनमे न उठे, यही तो वैराग्य है। विषयों को ग्रहण न करके उनका उपभोग न करना यही तो त्याग कहलाता है, इसके तो वे सब अधिकारी थे ही।"

दक्ष ने क्रोध के स्वर में कहा—"अरे, तूमुडिया। तेरी बुद्धि तो हो गई है भ्रष्ट। देख, मनुष्य जब तक विषयो का अनुभव नहीं करता, तब तक उनकी कटुता को नहीं जान सकता। इसलिये उनकी दुःख रूपता का स्वय अनुभव करने पर उसे जैसा वैराग्य होता है, वैसा दूसरो से सुनकर अनुभव नही हो सकता। क्योंकि स्वय अनुभव करने से उनका सब रहस्य समझा जाता है। तू तो है जन्म का वैरागी। तैंने कभी स्त्री सुख का अनुभव नहीं किया। तू क्या जाने, तेरा कौन विश्वास कर सकता है। हमारे यहाँ नगरो मे बिना स्त्री वाले को कोई ठहरने नही देता। जो बिना विवाह किये साधु बन जाते हैं, उनका प्रायः पतन होता है, वे प्रलोभन आने पर फिसल

जाते हैं। हम लोग मर्यादा का पालन करने वाले गृहस्थ हैं। तू ने पहिले हमारा बड़ा अपकार किया था। हमारे दस हजार पुत्रों को तैंने पहिले *बाबाजी बना दिया था।* हम मन मसोस कर बैठ गये। सोचा—साधु से कौन छेड़खानी करे। किन्तु तू तो अब हमारे विनाश पर ही उतारू हो गया है। अतः आज मैं तुझे बिना शाप दिये न मानूँगा। मैं तुझे यह शाप देता हूँ कि तेरे ठहरने का कोई निश्चित स्थान न होगा, तैंने मेरा घर द्वार बिगाड़ दिया है, इसलिये तेरा कहीं घर द्वार न रहेगा। चक्र की तरह सदा तू चौदह भुवनों में घूमता ही रहेगा। तेरे एक स्थान पर पैर न टिकेंगे। तू *घनचक्कर बना चक्कर काटता* फिरेगा।"

यह सुनकर नारदजी हँस पड़े और बोले—"अच्छी बात है, आपका शाप मुझे सिरसे स्वीकार है। एक स्थान पर हमें क्या लेना। एक आश्रम में रहने से मोह भी हो जाता है। साधु को तो घूमना शाप नहीं वरदान है। यह कहकर नारदजी हँस पड़े।

यह सुनकर आश्चर्य के साथ राजा परीक्षित् ने पूछा—"प्रभो! नारदजी तो सर्वसमर्थ हैं, भगवद्भक्त हैं, भगवान् के अवतार ही हैं। उन्होंने कोई अपराध तो किया नहीं था। दक्ष पुत्रों का कल्याण ही किया था। उन निरपराध साधु समाज में सम्मानित महापुरुष को दक्ष ने न कहने योग्य बातें कहीं, न करने योग्य व्यवहार किया। इतनी कड़ी कड़ी बातें सुनकर भी नारदजी हँसते ही क्यों रहे। ऐसा कठिन शाप सुनकर भी उन्होंने उलटकर उस अभिमानी दक्ष को शाप क्यों नहीं दे दिया?"

यह सुनकर शुकदेवजी बोले—"राजन्! त्यागी में और

रागी मे यही तो अन्तर है। विषयियो मे और वैरागियो में यही तो विशेषता है। संसार मे साधु वही कहलाता है, जो समर्थ होकर भी दूसरे के अपराध को सहन कर लेता है।" एक बात उसने कही, उसके बदले मे उलटकर दो बातें हमने कह दीं। उसने थप्पड़ मारा, हमने डंडा जमा दिया। उसने ढेला फेंका, हमने उस पर पत्थर गिरा दिया, यह तो संसारी लोगो की नीति है। सहनशीलता जिसमे है, वह अपकारी का भी अपकार न करके उलटा उसका उपकार करता है, वही सच्चा भगवत् भक्त है। भगवान के भक्त वृक्षों से भी अधिक सहनशील और अपने को तृण मे भी अधिक नीचा मानते हैं, इसीलिये समर्थ होने पर भी नारदजी ने प्रजापति दक्ष को शाप नहीं दिया।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! क्रोधित दक्ष के शापको शिरोधार्य करके विना दुखित हुए, प्रसन्नचित्त से वीणा बजाते हरिगुण गाते हुए नारदजी वहाँ से चले गये और इच्छानुसार अन्य लोको मे विचरण करने लगे। यह मैंने प्रजापति दक्ष के हर्यश्व और शवलाश्व पुत्रों के वैराग्य की कथा सुनाई अब आगे आप और क्या सुनना चाहते हैं?"

छप्पय

सुनिकें सब शवलाश्व भये भिक्षुक गृहत्यागी।
दक्ष सुन्यो सब वृत्त हृदय कोपानल जागी॥
आग बबूला भयो क्रोध व्यापो नस नस महँ।
तुरत दयो तिनशाप रह्यो नहिं मननिज वशमहं॥
कहें दक्ष—तू जगत महँ, कबहुँ न कुटी बनाइके।
थिर न रहे घूम्यो करे, तूमड़ी तान बजाइकें॥

दक्ष की साठ कन्यायें

(३७७)

ततः प्राचेतसोऽसिक्न्यामनुनीतः स्वयम्भुवा।
षष्टिं सञ्जनयामास दुहितृः पितृवत्सलाः ॥*

(श्रीभा० ६ स्क० ६ अ० १ श्लो०)

छप्पय

विधि आज्ञा तें साठि दक्ष कन्या उपजाई।
तरह कश्यप लई चन्द्र सत्ताइस ब्याई॥
भूत अंगिरा कृशाश्व दई द्वै द्वै सुकुमारी।
शेष तार्क्ष्यसग चारि बिवाहीं पुत्री प्यारी॥
पुत्र पौत्र सबके बहुत, भये जगत सब भरि गयो।
बहु सतति लखि दक्ष को, हृदय सरोरुह खिलि गयो॥

पुत्र और पुत्री म कोई अतर नहीं। दोनों ही हृदय से उत्पन्न होते हैं अपना आत्मा ही हैं। अतर इतना ही है कि पुत्री पर घर म जाकर वश वृद्धि करती है और पुत्र अपने ही घर म रह कर वश परम्परा को अक्षुण्ण बनाय रखता है। जिनके पुत्र नहीं होते अथवा होकर वानप्रस्थी बन जाते हैं, या मर जाते हैं, तो वे पुत्रियो से ही अपने को पुत्रवान् समझते हैं। जिनके पुत्री भी

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—'राजन्! इसके अनन्तर ब्रह्माजी के समझाने बुझाने पर दक्ष प्रजापति ने अपनी पत्नी असिक्नी म ६० कन्याये उत्पन्न कीं। वे सबकी सब पिता की प्यारी थीं।'

नहीं होती वे अन्य के पुत्र को गोद ले लेते हैं। इस प्रकार वंश को लुप्त नहीं होने देते। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में मोह ममता संतति वृद्धि की कामना अधिक होती है। पुरुष तो प्रायः नीरस प्रकृति के होते हैं, उनमें सरसता का सचार तो वामेक्षणाओं द्वारा ही होता है। संतति के प्रति अत्यधिक अनुराग मातृ हृदय में ही होता है। राक्षसियों में कामवासना अधिक होने से उनमें संतान के प्रति अनुराग न्यून होता है, वे कामवासना के वशीभूत होकर संतान का परित्याग तथा उसको हत्या भी कर देती हैं, किन्तु साधारण मातृ हृदय बच्चे के लिये सब कुछ कर सकती है। इसीलिये सृष्टि कार्य में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों का अधिक हाथ है। ये ही प्रकृति का प्रतिनिधित्व करती हुई इस प्राकृत जगत् को बढ़ा रही हैं, चला रही हैं, नचा रही हैं, हँसा रही हैं और फँसा रही हैं। ये महामाया हैं, जगज्जननी हैं, लोकमाता हैं।

श्री शुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! अपने ११ हजार पुत्रों के बाबाजी बन जाने पर दक्ष को बड़ा क्रोध आया, उस क्रोध में ही उन्होंने नारदजी को शाप दे दिया। नारद जी ने सोचा—राजा के पास आये थे, खाली हाथ नहीं लौटे, राजा ने कुछ न कुछ तो दिया ही, शाप ही सही, साधु को श्रद्धा से जो भी कोई कुछ दे वही उसे स्वीकार है। इस प्रकार सोचकर शाप को शिरोधार्य करके वे तो वहाँ से चले गये। दक्ष अपने माथे को पकड़ शोक सागर में निमग्न हुए, उदास मन से बैठे ही रहे। उनकी दृष्टि में सम्पूर्ण संसार सूना ही सूना दिखाई देता था। इतने में ही हंस पर चढ़कर ब्रह्माजी उनके समीप आ पहुँचे। ब्रह्माजी को आया हुआ देखकर प्रजापति दक्ष ने उनका आदर सत्कार किया, विधिवत् पूजा करके साष्टाङ्ग प्रणाम की।

दक्ष की पूजा स्वीकार करके ब्रह्माजी ने पूछा—"दक्ष, भैया ! तुम इतने अधिक उदास क्यों हो ?"

दक्ष ने खिन्न मन से कहा—क्या बताऊँ महाराज ! उदासी की बात ही है। यह तूमड़िया नारद न जाने क्यों मेरे पीछे पड़ा है। पता नहीं किस जन्म के बैर का बदला यह ले रहा है। पहिले मेरे १० हजार हर्यश्व नामक पुत्रों को उलटी पट्टी पढ़ा कर बाबाजी बना दिया, जब फिर मैंने हजार शबलाश्व सुत उत्पन्न किये, तो उन्हें भी उन्हीं का रास्ता दिखा दिया। बताइये, मैं सृष्टि कैसे बढ़ाऊँ ? मेरी तो प्रार्थना है मेरा त्यागपत्र आप स्वीकार करलें, किसी और योग्य पुरुष को प्रजापति बना दें। मैं सृष्टि बढ़ाने में असमर्थ हूँ। मेरी धर्मपत्नी तो बड़ी अच्छी है किन्तु अच्छी क्या करे, यह तूमड़िया तो मेरे पीछे पड़ गया है।

यह सुनकर दक्ष को प्रेमपूर्वक समझाते हुए ब्रह्माजी कहने लगे—"देखो, बेटा ! श्रेय कार्यों में सदा से बहुत विघ्न होते आये हैं। मैं ही जब कमल से उत्पन्न हुआ था, तो मधु और कैटभ असुर आकर मुझे डराने धमकाने लगे, मेरे कार्य में विघ्न करने लगे। तब मैं भगवान् की शरण गया। भगवान् ने कृपा करके उन्हें मार डाला। विघ्न टल गया, मैं सृष्टिकार्य में पुनः प्रवृत्त हो गया। इसलिये भैया, विघ्न आ जाने पर घबड़ाना नहीं चाहिये, धैर्य धारण करना चाहिये।"

दुःख प्रकट करते हुए दक्ष ने कहा—"महाराज ! धैर्य की भी सीमा होती है कहाँ तक धैर्य धारण करे। बार-बार अपने कार्य में विघ्न होने से उत्साह भङ्ग हो जाता है फिर चित्त उस कार्य को करना ही नहीं चाहता, उससे वैराग्य हो जाना स्वाभाविक ही है।"

इस परलोक पितामह ब्रह्माजीने कहा—"देखो, बेटा! संसार
में तीन तरह के लोग होते हैं एक तो ऐसे होते है, कि कार्यारम्भ
से पूर्व ही सोचने लगते हैं इसमें अमुक विघ्न हो सकते है, ये
अड़चनें पड़ सकती हैं, ऐसे बातों को सोचते २ ही रह जाते हैं,
विघ्नों के भय से कार्य को आरंभ नहीं करते है। वे अधम हैं।
एक ऐसे पुरुष भी होते हैं जो कार्य का आरंभ तो बड़े उत्साह
के साथ करते हैं, किन्तु विघ्न पडते ही धैर्य को खो बैठते हैं,
बीच में ही कार्य को छोड़ देते हैं, वे मध्यम कहलाते हैं।
किन्तु उत्तम पुरुष तो चाहे कितने भी विघ्न क्यों न आवें, आरंभ
किये हुए कार्य को पूर्ण करके ही विश्राम लेते हैं। वे निराश
होना जानते ही नहीं। तुम भैया, उत्तम पुरुषों में से ही हो। जूआ
मत डालो। साहस को मत खोओ, निराश मत होओ। पुनः सृष्टि
वृद्धि के निमित्तप्रयत्न करो। अबके पुत्रों कोउत्पन्न मत करो,अबके
लड़कियों की सृष्टि करो, ये बाबाजी लड़कों को तो बहका लेते हैं
किन्तु लड़कियों के पास नहीं फटकते। खुटका लगा रहता है।
कहीं उलटे न बहक जाँय। उन्हें फसाने के चक्कर में स्वयं
न फँस जायँ। उन लड़कियों के पास नारद आवेगा ही नहीं।
जहाँ किसी ने इनके साथ गँठबन्धन किया दोनों मनोनुकूल
जोड़ी पाकर पति पत्नी बन गये, फिर नारद नहीं नारद का
बाप मैं स्वयं भी उनसे बाबाजी बनने को कहूँ
तो नहीं बन सकते। सो, भैया! यही उपाय ठीक है। छोड़ो इन
लड़कों के झंझट को। ये लड़के तो विवाह होने के
पूर्व निर्मोही होते हैं। स्वतंत्र सिंह शावक की तरह उछलते-कूदते
हैं। दशों दिशाओं मे चाहे जिधर भाग जायँ। किन्तु जहाँ बहू-
रूपी जंजीर पैरों पडी, तहाँ सिंहसे गीदड बन जाते हैं। सब
चौकड़ियाँ भूल जाते हैं। अपने को परवश मान कर म्याऊँ बन

जाते हैं। और उस जंजीर को खनकाते हुए उसके मधुर शब्द से मोहित होकर उसीके संकेत पर नाचते रहते हैं। इसलिये भैया, संसार बन्धन को बढ़ाना हो तो बेड़ो तैयार करो बेड़ी। समझे मेरे प्यारे बच्चे! इतनी सुन्दरी कन्यायें उत्पन्न करो कि लोग आकर तुम्हारी स्वयं अनुनय विनय करें।

दक्ष अब क्या करते! गुरुओं की आज्ञा का पालन तो सिर झुका कर बिना विचारे करना ही पड़ता है। अतः अबके उन्होंने अपनी पत्नी असिक्नी में ६० कन्याओं को उत्पन्न किया। उन सबके नेत्र कमल के समान थे। सुवर्ण के समान उनके शरीर की कांति थी। उनके अंगों से दिव्य गंध निकलती रहती थी। वे कन्याओ मे रत्नरूपा थीं। उनके अनवद्य सौंदर्य को जो भी एक बार निहारता वही अपने मन को खो बैठता। विवाह के योग्य हो जाने पर दक्ष ने सुयोग्य वरों के साथ प्रसन्नता पूर्वक उनका विवाह किया। उन दिनों विवाह करने वाले लोग कम थे। इस लिये सृष्टि वृद्धि के लिये एक-एक पुरुष बहुत-बहुत विवाह करता था। इस लिये दक्षने उन साठ में से २७ तो चन्द्रमा को दे दीं। १० धर्म देव को १३ कन्याओं का विवाह भगवान् कश्यप के साथ कर दिया। दो भूत नामक ऋषि को, दो अङ्गिरा को, दो कृशाश्व मुनि को। कितनी हुईं? २७ और १३ हुईं ४० और १० धर्म को, इस प्रकार ५० हो गईं। भूत, अंगिरा और कृशाश्व इन तीनोंको दो दो, तो ६ हुईं ५० और ६ हुईं ५६। अब शेष रहीं चार। सो, वे चार तार्क्ष्य मुनि को दे दीं। इसप्रकार दक्षने अपनी ६० कन्याओं का विवाह कर दिया। अबके दक्ष का बाण लक्ष्य पर लगा। उन्हें सफलता हुई। इन ६० कन्याओं का इतना वंश बढ़ा कि उस मन्वन्तर की समस्त प्रजा इन कन्याओं की

संतति से ही भरगई। इनके पुत्र पौत्र और प्रपौत्रो ने ही इस सम्पूर्ण त्रैलोक्य को पूर्ण कर दिया।

श्री शुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! इन साठ कन्याओं का इतना वंश बढ़ा कि सब का वर्णन करने लगूँ, तो कल्पान्त में भी पूर्ण न हो सकेगा। अतः मैं अब अत्यन्त ही संक्षेप में संकेत रूप में इन साठो के वंशो का वर्णन करूँगा। तुम ध्यान पूर्वक इन्हें श्रवण करना। उब मत जाना कि इसके पुत्र वे हुए, उसके वे हुए। इससे हमे क्या लाभ? नहीं, इनके नाम कीर्तन का भी बड़ा महात्म्य होता है।

छप्पय

भानु, मुहुर्ता, ककुप्, जामि, वसु, लम्बा, साध्या।
मरुत्वती, सकल्प, धर्म की ये सब भार्या॥
स्वधा सती ये नारि अगिरा मुनि की प्यारी।
विनता, कद्रू, और पतगी यामिनि नारी॥
तार्क्ष्य बहू ये चारि हैं, धिषणा, अर्चा गुणवती।
पत्नी कहीं कृशाश्व की, सबई सुन्दरि सब सती॥

दक्ष की कन्याओं के वंश का वर्णन

(३७८)

नामधेयान्यमूषां त्वं सापत्यानां च मे शृणु ।
यासां प्रसूतिप्रसवैर्लोका आपूरितास्त्रयः ॥*
(श्रीभा० ६ स्क० ६ अ० ३ श्लो०)

छप्पय

अब कश्यप की नारि त्रयोदश की संतति सुनि ।
अदिती, दिति, दनु, इला अरिष्टा, सुरसा अरु मुनि ॥
काष्ठा, सरमा, सुरभि, कहीतिमि, क्रोधवशापुनि ।
ताम्रा पत्नी पाइ भये अति आनन्दित मुनि ॥
लोकमात ये जगत की, सब इनकी सन्तान हैं ।
देवासुर पशु पक्षि नर, लघु बड़, क्षुद्र महान हैं ॥

ऋषि वंश श्रवण करने की प्रथा सनातन है, हमारे यहाँ एक श्रावणी का पर्व होता है, उसमें ऋषिवंश का कीर्तन करना, ऋषियों के वंश श्रवण करने का ही माहात्म्य होता है। ये वंश श्रवण हमें विभिन्नता के स्तर से उठाकर एकता की ओर ले जाते हैं। संकुचित परिधि से पृथक् करके विशाल वंश में बिठा

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! उन दक्ष कन्याओं के तथा उनकी सन्तानों के नामों को तुम मुझसे श्रवण करो। जिनकी सन्तानों की सन्तानों से ये तीनों लोक भर गये हैं।

देते हैं। जीवों ने अपने को परिधि की अनेक पंक्तियों में विभक्त करके संकुचित बना रखा है। हम ब्राह्मण हैं, शेप सब हमसे नीचे हैं। हम द्विज हैं, द्विजेतर अधम हैं। हम मनुष्य है मनुष्यों से भिन्न सभी मोक्ष के अनधिकारी हैं। हम बुद्धि जीवी पुरुष हैं, बुद्धिहीन सभी हमारी आजीविका के साधन हैं। इत्यादि भेद भावों से जो जीव को भक्षण करने उसे नीचा दिखाने के लिये सर्वदा उद्यत रहता है। ऋषि वंशों का कीर्तन इस क्षुद्रता को मिटाता है, वह हमें बताता है, मनुष्य, पशु, पक्षी, सिंह, व्याघ्र, सर्प, देवता, असुर सभी एक ही कश्यप मुनि की संतान हैं। हम सबके पूर्व पिता एक ही थे, माताओं की विभिन्नता से ये जातियाँ हो गई पृथक् पृथक् वर्ग बन गये। इसीलिये ऋषियों के वंश के नित्य श्रवण का परम माहात्म्य बताया है।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! अब मैं प्रजापति दक्ष की ६० कन्याओं के वंश का वर्णन करता हूँ। देखिये दक्ष ने अपने ६० कन्याओं में से १० धर्म को दीं। उनके नाम ये हैं—भानु, लम्बा, ककुप्, जामि, विश्वा, साध्या, मरुत्वती, वसुमुहूर्ता और सङ्कल्पा। अब इनकी जो सन्तान हुईं उनके भी नाम सुन लीजिये।

धर्मकी प्रथम पत्नी भानुका पुत्र देवऋषभ था और उसका पुत्र इन्द्रसेन। दूसरी लम्बा का पुत्र विद्योत हुआ और उसके स्तनयित्नु। तीसरी ककुभ का पुत्र सङ्कट हुआ और सङ्कट का पुत्र कीकट हुआ। कीकट के असंख्यों पुत्र हुए, वे सब दुर्गों के अभिमानी देवता हुए चौथी पत्नी जामि के स्वर्ग नामक पुत्र हुआ और स्वर्ग का पुत्र हुआ नन्दि। पाँचवीं विश्वा के विश्वदेव नामक देव हुए। विश्वदेवों का वंश आगे चला ही नहीं। वे सबके सब निः-सन्तान हैं। छठी साध्या से साध्यगण नामक देव हुए उनके अर्थ

सिद्ध नामक पुत्र हुआ। सातवीं मरुत्वती से मरुत्वान् और जयन्त नामक ये दो पुत्र उत्पन्न हुए ये जयन्त ही उपेन्द्र कहलाये ये भगवान् विष्णु के अंशावतार है। आठवीं मुहूर्ता से मुहूर्तों के अभिमानी देवता हुए, जो प्राणियों को उनके कर्मानुसार अपने-अपने समय पर यथायोग्य फल देते हैं। धर्म की नवीं पत्नी सङ्कल्पा से सङ्कल्प नाम का पुत्र हुआ। इस सङ्कल्प का ही पुत्र कामदेव है जो सब प्राणियों के शरीर मे अशरीरी रहकर पीड़ा देता है। कामकी उत्पत्ति सङ्कल्पसे ही होती है। अध्यवसाय इसका सहकारी है। यह बड़ा बली और दुर्जेय है। दसवीं पत्नी वसु के द्रोण, प्राण, ध्रुव, अर्क, अग्नि, दोष, वसु और विभावसु नाम वाले अष्टवसु उत्पन्न हुए। राजन्! ये धर्म के १० पत्नियों में जो संतानें हुईं वे सबके सब देवों के गण हैं। सबके शरीर दिव्य हैं। ये मृत्युलोक के स्थूल आँखों से दिखाई देने वाले स्थूल प्राणी नहीं हैं। इनके अस्तित्व में शास्त्र ही प्रमाण हैं और ये योगियों को दिव्य दृष्टि से दिखाई भी देते हैं।

अष्ट वसुओं में से जो प्रथम द्रोण नाम वसु थे उनका विवाह अभिमति (इच्छा) नामक पत्नी से हुआ। जिससे हर्ष, शोक, भय आदि पुत्रों का जन्म हुआ। ये ही द्रोणवसु द्वापर में आकर व्रज मे गोपराज नन्द के रूप में प्रकट हुए जिनके आत्मज बनकर आनन्दकन्द वृन्दावन चन्द्र नन्दनन्दन श्रीकृष्णचन्द्रजी प्रकट हुए। दूसरे प्राण नामक वसु की उर्जस्वती नाम की भार्या में सह, आयु और पुरोजव नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुए तीसरे ध्रुव नामक वसु की धरणी नाम्नी पत्नी में असंख्यों देवता उत्पन्न हुए। चौथे अर्क नामक वसुकी वासना नामकी पत्नी में तप आदि अनेकों पुत्र हुए। पाँचवें अग्नि नामक वसुधारा पत्नी में द्रविणकादि कई पुत्र हुए। देवताओं के सेनापति

षडानन स्कन्द भी अग्नि के ही पुत्र हैं जो कि कृत्तिकाओं के पुत्र मानने से कार्तिकेय कहे जाते हैं। इनका वर्णन प्रसङ्गानुसार होगा। इन्हीं स्कन्द से विशाख आदि पुत्र उत्पन्न हुए। छठे दोषनामक वसु से उनकी शर्वरी नामकी भार्या मे शिशुमार चक्र उत्पन्न हुए, जो भगवान् के अंशावतार हैं सातवें वसु जिनका नाम भी वसुही है उनकी अङ्गिरसी नाम की भार्या, में देवताओ के वढ़ई शिल्पकारो के अधिपति विश्वकर्माजी का जन्म हुआ। इन्हीं के पुत्र चाक्षुस मनु हुए और मनु के विश्वेदेवा और साध्यगण इन देवताओ की उत्पत्ति हुई। आठवें वसु विभावसु की ऊषा नाम्नी पत्नी से व्युष्ट, रोचिष और आतप ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें से आतप के पाँचो प्रहरों के पाँच अभिमानी देवता हुए। उन प्रहरों के विभाग से जीव कर्मों में तत्पर वने रहते हैं। यह तो धर्म की पत्नियों का वंश हुआ अव दक्ष की अन्य कन्याओं के वंश को श्रवण कीजिये।

प्रजापति दक्षकी एक कन्या सरूपा थी वह भूतको विवाही गई उससे करोड़ों रुद्रों की उत्पत्ति हुई। जिन रुद्रों में एकादश रुद्र प्रधान माने जाते हैं उनके रैवत, अज, भव, भीम, वाम, उग्र, वृषाकपि, अजैकपाद, अहिर्बुध्न्य, वहुरूप और महान् ये नाम हैं। भूतकी दूसरी पत्नी में भयङ्कर भूत, प्रेत विनायकादि का जन्म हुआ जो रुद्र पार्षद कहे जाते हैं।

दक्ष की दो कन्यायें सती और स्वधा अंगिरा नाम महर्षि को विवाही गईं। उनमें से स्वधा ने तो पितृगणों को उत्पन्न किया और दूसरी सती ने अथर्वाङ्गिरस नामक वेद को उत्पन्न किया। इसी प्रकार दो कन्याये दक्ष प्रजापति ने कृशाश्व नामक ऋषि को दीं। जिनमें से प्रथम पत्नी अर्चि ने धूम्रकेश नामक पुत्र को उत्पन्न किया और दूसरी धिषणा नामक पत्नी ने वेदशिरा देवल,

वयुन और मनु नामक मुनियों को उत्पन्न किया। इन चार पुत्रियों से ऋषि वंश की उत्पत्ति हुई।

दक्ष प्रजापति ने विनता, कद्रू, पतङ्गी और यामिनी इन चार कन्याओं का विवाह तार्क्ष्य मुनि के साथ किया। मुनि ने सोचा कि देवता, ऋषि, भूत-प्रेत, पिशाच, पितर तथा मनुष्य आदि को तो सभी उत्पन्न करते हैं। हम तो पशु पक्षियों की सृष्टि करेंगे। इसलिये विनता ने तो पक्षियों के राजा गरुड़को जो भगवान् के वाहन हुए तथा सूर्य के सारथी अरुण को उत्पन्न किया। कद्रू ने नागों को उत्पन्न किया। पतङ्गी ने समस्त पक्षियों को उत्पन्न किया तथा यामिनी ने शलभ पतंगे आदि जीव जन्तुओं को पैदा किया।

इस पर शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! ये विनता, कद्रू, पतङ्गी तथा यामिनी जो दक्ष प्रजापति की कन्या और तार्क्ष्य मुनि का पत्नियाँ बताई हैं ये मनुष्यों जैसी थीं या कद्रू सर्पिणी थी, पतङ्गी पक्षी के आकार की थी। यदि मनुष्य की सी थी तो इनसे पशु पक्षियों की उत्पत्ति कैसे हुई?

यह सुनकर सूतजी हँस पड़े और बोले—"महाराज! अब आप भी ऐसा प्रश्न करते हैं। भगवन्! ये तो सब लोग मातायें हैं। इनमें सर्वसामर्थ्य होती है, ये जैसा चाहे रूप बना सकती हैं दक्ष प्रजापति की कन्या थीं इसलिये आकार तो इनका मानवीय स्त्रियों जैसा था, किन्तु ऋषि का जब जैसा सङ्कल्प हुआ वैसा ही रूप रखकर वैसी ही गर्भ को धारण कर लिया। इनके लिये कोई बात कठिन नहीं।

इस पर शौनकजी ने कहा—"हाँ, ठीक है सूतजी! अच्छा, हम अब यह पूछना चाहते हैं, कि आपने कहा, कि हम विनता के पुत्र गरुड़ को साक्षात् भगवान श्रीमन्नारायण ने अपना

वाहन बनाया, सो भगवान् ने उन्हें अपना वाहन क्यों बनाया ? भगवान् को और कोई वाहन ही नहीं मिला ? इन गरुडजी मे क्या ऐसी विशेषता थी कैसा इनका तेज पराक्रम था इन सब वातों को हमे विस्तार से वताइये । भगवान् के वाहन गरुड-जी का पावन चरित्र सुनाइये ।

यह सुनकर सूतजी गम्भीर होकर वोले—"भगवन् ! इस समय तो मैं दक्ष का कन्याओं के वश का वर्णन कर रहा हूँ । जिस प्रकार भगवान् विष्णु के चरित्र अनन्त हैं । उसी प्रकार उनके वाहन गरुडजी के चरित्र भी अनन्त हैं । यदि मैं यहाँ विस्तार से गरुडजी का चरित्र सुनाता हूँ तो तव तो यह प्रसङ्ग ही रुक जायगा । नया गरुड़पुराण वन जायगा । अत मैं वहाँ इस विपय का विस्तार न करके अत्यन्त ही सक्षेप मे श्री गरुड जी के सम्बन्ध मे वताता हू आप ध्यानपूर्वक इस पुण्य प्रसङ्ग को श्रवण करें ।"

छप्पय

देव ऋषभ सुत 'भानु' जन्यो 'लम्बा' विद्योतहिँ ।
'ककुभ' वशमहँ भये देव जो दुर्गनिमहँ रहि ॥
देव 'मुहूर्ता' जने मुहूर्तनि के अभिमानी ।
मरुत्वती के पौन जयन्त उपेन्द्र सुज्ञानी ॥
'सकल्पा' सकल्प सुत, जाके सुत ये नाम हैं ।
अष्ट वसू 'वसु' ने जने, द्रोणादिक जिन नाम हैं ॥

तार्क्ष्य गरुड़ और अरुण

(३७६)

सुपर्णासूत गरुडं साक्षाद्यज्ञेशवाहनम् ।
सूर्यसूतमनूरुं च कद्रूर्नागाननेकशः ॥*

(श्रीभा० ६ स्क० ६ अ० २२ श्लो०)

छप्पय

'साध्या' के सुत साध्य 'विश्व' के विश्वेदेवा ।
भूत 'सरूपा' नारि रुद्रगण जने कुदेवा ॥
दूसरि पत्नी पुन भूत प्रेतादि विनायक ।
स्वधा, अङ्गिरा नारि पितृगण जने प्रभावक ॥
'सती' सुमाता वेद की, 'धिषणा' अर्चि कृशाश्व की ।
नारि पतङ्गी यामिनी, विनता कद्रू तार्क्ष्य की ॥

जगत् की उत्पत्ति, विनाश को जब हम श्रीहरि की नित्य की क्रीड़ा मान लेते हैं, तो फिर किसी भी विषय में शङ्का नहीं रह जाती। "ऐसा क्यों हुआ ? ऐसा होना संभव नहीं।" ये प्रश्न तभी उठते हैं जब हम असत् का सत् की तथा अनित्य में नित्य

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! तार्क्ष्य मुनि की पत्नी सुन्दर पङ्खवाली विनता ने साक्षात् यज्ञ के ईश श्रीविष्णु भगवान् के वाहन श्री गरुड़जी को और सूर्यदेव के सारथी अरुणजी को उत्पन्न किया था कद्रू ने अनेकों नागों को उत्पन्न किया।"

की भावना कर लेते हैं। जब इस दृश्य प्रपंच को प्रभु का विनोद, उनकी स्वाभाविक क्रीड़ा मान लेते हैं तो कह देते हैं, वह उनकी माया है और माया में कुछ भी असम्भव नहीं, सब सम्भव ही सम्भव है। शंका तथा चिन्ता हम स्वयं मोल ले लेते हैं। अपने आप मान अपमान, भला बुरा, त्याज्य ग्राह्य आदि द्वन्दों की कल्पना करके दुखी सुखी होते हैं। तुम सर्वत्र अपने श्याम-सुन्दर का स्वरूप ही क्यों नहीं देखते। यह क्यों नहीं धारणा कर लेते कि वे गरूड़ध्वज ही अपने विनोद के लिये कहीं हार-जाते हैं कहीं दूसरों को हरा देते हैं। कहीं कछुआ बन जाते हैं, कहीं पशुपक्षी हो जाते हैं, वे ही सब में रम रहे हैं, वे ही क्रीड़ा कर रहे हैं, उन्हीं का सब विनोद है उन्हीं की माया का पसारा है।

श्रीसूतजी कहते हैं—"मुनियो! जैसे हमारे मनुष्यों के दिनों में नित्य नई सृष्टि होती रहती है, वैसे ही ब्रह्माजी के प्रत्येक दिन नई सृष्टि होती है। किसी सृष्टि में कुछ थोड़ा बहुत हेर फेर हो जाता है। इसे कल्प सृष्टि कहते हैं। कश्यपजी की किसी कल्प में १७ पत्नी बताई, किसी में विनता, कद्रू, पतङ्गी और यामिनी ये ४ तार्क्ष्य मुनि की पत्नी बताकर शेष कश्यप की बताई हैं। कहीं-कहीं तार्क्ष्य कश्यप का ही पर्याय प्रतीत होता है। कल्प भेद से ही यह कुछ भेद सा प्रतीत होता है। आपने मुझसे यह प्रश्न किया था, कि गरुड़जी भगवान् के वाहन कैसे बने मैं सक्षेप में गरुड़जी की उत्पत्ति बताकर उनका अग्रिम चरित्र कहूँगा। विनता और कद्रू ये दोनों बहिन थीं और एक ही पति के साथ इनका विवाह हुआ था। बहिन-बहिन में तो प्रेम होता भी है किन्तु जहाँ वे सौत हुईं वहीं खटपटी हो जाती है। भगवान् ने यह सौतिया डाह ऐसा बुरा बनाया है, कि इस डाह के वशीभूत होकर स्त्रियाँ न करने योग्य काम को कर बैठती हैं।

एक दिन विनता और कद्रू पर उनके पति प्रसन्न हुए और उन्होंने इन दोनों से वरदान माँगने को कहा। इसपर कद्रू ने वर माँगा —"मेरे एक सहस्र सुन्दर तेजस्वी नाग पुत्र हों।" तथा विनता ने परम पराक्रमी दो पुत्रों की याचना की। दोनों को पति की प्रसन्नता से वरदान मिल गया। नियमानुसार कद्रू ने हजार अडे और विनता ने दो बडे-बडे अडे उत्पन्न किये। दासियों ने इन अंडों को पृथक्-पृथक् गरम पात्रों में रख दिये।

मुनियों! ऐसा नियम है, बालक जितने दिन गर्भ में अधिक रहता है, उतना ही वह बली होता है। बहुत से बच्चे ७ महीने में ही पैदा हो जाते हैं, वे बहुत ही दुर्बल होते हैं। पाँच सौ वर्ष के पश्चात् कद्रू के सब अडे अपने आप फुट गये और उनमें से बडे-बडे बली, विषधर सर्प निकले। जो स्वभाव के बड़े क्रूर थे। प्रजा को पीडा पहुँचाने वाले थे। कद्रू के तो हजार पुत्र इधर-से उधर किलोल करने लगे। किन्तु विनता के अडे अभी तक ज्यों के त्यों रखे थे। विनता के मन में सौतिया डाह हुआ—"हाय! इसके तो हजार बच्चे इधर से उधर घूमकर इसे सुख पहुँचा रहे हैं। अपनी माँ को ये कितना प्यार करते हैं कभी गोद में बैठते हैं कभी कन्धों पर लटकते हैं, कभी सिर पर चढ़ते हैं। मेरे दो ही तो पुत्र होने वाले हैं वे भी अभी हुए नहीं। जितने दिनों की देरी से होंगे, उतने ही वे छोटे समझे जायँगे। मेरी सौत के बच्चे बड़े होंगे। इस सौतिया डाह के कारण उसने एक अडे को फोड़ दिया। फोडते ही उसमें एक परम तेजस्वी बालक उत्पन्न हुआ। उसके नाभि से ऊपर के सब अङ्ग तो पके थे। किन्तु नाभि से नीचे के पैर आदि बनेही नहीं थे। अधूरा बालक था। उस तेजस्वी बालक को अपनी माता की इस अधीरता और ईर्ष्या पर बड़ा क्रोध आया। उसने क्रोध में भरकर माता

को शाप दिया—माँ तूने मोह वश, ईर्ष्या के कारण मुझे पगु बना दिया अतः जिससे तू बढ़ना चाहती है, उसी की तुझे ५०० वर्षों तक दासी बनकर रहना होगा। यदि इस मेरे भाई के अंडे को तैंने बीच में न फोड दिया और धैर्य के साथ इसके जन्म की प्रतीक्षा करती रही, तो ५०० वर्ष के पश्चात् यह उत्पन्न होकर तुझे दासीपने से मुक्त कर देगा।" इतना कहकर वह आकाश मे उड़ गया। वहाँ सूर्य भगवान् की उसने आराधना की और त्रैलोक्य की परिक्रमा करने का वर माँगा। पगु पुरुष परिक्रमा कैसे करे। इसीलिये सूर्य भगवान् ने उसे अपने रथ का सारथी बना लिया। उन्हीं का नाम अरुण हुआ। मुनियों ! प्रारब्ध की कैसी विचित्र महिमा है। सूर्य मंडल कितना बडा है। भगवान् भुवन भास्कर का रथ कितना विस्तृत और दिव्य है, जिनमे सप्त छन्द ही घोडे हैं। उस इतने दिव्य अनुपम रथ का सारथी पगु है। वह सूर्य की ओर पीठ नहीं करता। अतः हाथ मे घोड़ो की बाग लिये हुये घोडो की ओर पीठ करके उन्हें हाँकता है। इस प्रकार रथ पर बैठे-बैठे ही वह पृथ्वी की प्रदक्षिणा करता रहता है। सूर्योदय के पूर्व नित्य ही पहिले अरुणोदय होता है। अरुण के दर्शन होने के अनन्तर सूर्य के दर्शन होते हैं। यह तो मैंने गरुड के बडे भाई अरुण की सक्षिप्त कथा सुनाई अब आप भगवान् गरुड़ की भी कमनीय कहानी सुनिये।

मुनियो ! समर्थ पुरुषों का शाप और अनुग्रह कभी व्यर्थ नहीं जाता। विचारी विनता को उसके तेजस्वी पुत्र अरुण ने शाप दे दिया था। उसे तो पूरा होना ही था। एक दिन दैव योग से विनता और कद्रू बैठी हुई थीं कि आकाश से—समुद्र मन्थन के समय निकला हुआ—दिव्य उच्चैःश्रवा नामक घोड़ा जा रहा

था। दुग्ध के फेन के समान वह अप्राकृत अश्व द्वितीय पूर्णचन्द्र के समान प्रतीत होता था। उसे देखकर कद्रू ने विनता से पूछा—"बहिन ! उच्चैःश्रवा का रङ्ग कैसा है ?"

हँसी-हँसी मे विनता ने कहा—"अरे, यह भी कोई पूछने की बात है। उच्चैःश्रवा तो सफेद है।

कद्रू ने पूछा—"अच्छा, इसकी पूँछ के बाल कैसे हैं ?

विनता ने कहा—"जैसा यह स्वयं शुभ्रवर्ण का है वैसी ही इसकी स्वच्छ शुभ्र पुच्छ है। सफेद रेशम के समान नीचे तक लटकती हुई कैसी इसकी मन मोहक पूँछ है।"

कद्रू ने कहा—"अरे, तू भी बहिन ऐसी ही रही, सट्ट पट्ट। अरी, इसकी पूँछ तो सम्पूर्ण काली है काली समझी ! इसपर विनता को रोष आ गया। वह बोली—"तू कैसी भूली-भूली बाते कर रही है। तैंने भाँग तो नहीं पी रखी है या तेरी आँखों मे कमला रोग के स्थान में कालिमा रोग तो नहीं हो गया है, जो तुझे सफेद वस्तु काली दिखाई देती है। या तेरा मन काला हो गया होगा।" इतना कहकर विनता ठठाका मारकर हँसने लगी।

विनता को हँसते देखकर कद्रू को क्रोध आ गया। अपनी असत्य बात पर अडते हुए वह बोली मैं एक बार नहीं हजार बार कहूँगी, उच्चैःश्रवा की पूँछ काली है काली है, फिर काला है। घर मे कहूँगी, बाहर कहूँगी, आकाश मे कहूँगी, पाताल म कहूँगी, डके की चोट के साथ कहूँगी।"

विनता को भी ताव आ गया। वह बोली—"तू बडी पगली है री। व्यर्थ की झूठी बात पर अड़ रही है। ये हमारी तेरी होड़ है, यदि उच्चैःश्रवा के बाल काले न हुए तो ?

कद्रू ने बात पर बल देते हुए कहा—"तो क्या ! यदि काले न हुए तो मैं जीवन भर तेरी दासी बनकर रहूँगी । तेरी सेवा करूँगी, जो कहेगी वह करूँगी । यदि काले ही हुए तो तुझे मेरी जीवन भर दासी बनकर रहना पड़ेगा । बोल स्वीकार है ?"

विनता ने दृढता के साथ कहा—'पक्की रही यही बात । पीछे मुकर मत जाना । हँसी वाली बात नहीं है । ऐसा करना पड़ेगा ।"

बातों ही बातो मे हँसी-हँसी मे बात बढ गई होड लग गई, अब कद्रु का चिन्ता हुई । वास्तव मे ता उच्चै:श्रवा के सभी अङ्ग अत्यन्त शुभ्र वर्ण के थ, उसकी पूँछ के बाल भी सफेद थे । कद्रु ने सोचा कोई तिकडम भिडानी चाहिये । उसने अपने पुत्र नागो से कहा—"देखो, बेटा ! आज मेरी विनता से होड लगी है । तुम सब कालेबाल के समान सर्प बनकर उच्चै:श्रवा की पूँछ मे लिपट जाओ । जिससे उसकी पूँछ काली हो जाय । इस प्रकार मेरी विजय हो सकती है ।" यह सुनकर उनमें से आधे सर्प माताकी अन्याय पूर्ण बात से सहमत नहीं हुए । इस पर कद्रू ने क्रुद्ध होकर उन्हे शाप दिया जाओ, तुम जनमेजय के यज्ञ मे भस्म हो जाओ ।" शेष डर गये और जाकर उच्चै:श्रवा की पूँछ मे लिपट गये ।

दोनो बहिन समुद्रपार करके उच्चै:श्रवा को देखने चलीं । वहाँ जाकर उन्होंने आकाश में स्थित चन्द्रमा की चाँदनी के समान उज्वल और चमकते हुए उच्चै:श्रवा को देखा । वह पाञ्चजन्य शंख के समान खिले हुए कुन्द के समान, दुग्ध के फेन के समान, हंसो के परो के समान, नवयौवना विरागा नारी के उज्वल दन्तों के समान, कलई से पुते स्वच्छ भवन के समान, परिश्रम से धोकर चावल का माड़ देकर धोये हुए शुभ्र वस्त्र के समान, बालक के मधुर हास्य के समान, आकाश म

उडती हुई बकुल के पक्ति के समान, तथा फूले हुए कास के पुष्पों के समान श्वेत रङ्ग का था। किन्तु उसकी पूँछ नागों के लिपट जाने से काली दिखाई देती थी। यह देखकर विनता को दुःख हुआ। उसे निवश होकर कद्रू की दासी बनना पडा। मुनिया! ईर्ष्या द्वेप वश मनुष्य अनुचित कार्य करके भी गर्व का अनुभव करता है, कद्रू ने विनता को क्षमा नहीं किया उसे अपनी दासी बना ही लिया और उससे मनमानी सेवा कराने लगी। इस प्रकार विनता को कद्रू की सेवा करते करते ५०० वर्ष व्यतीत हो गये।

अब तो गरुडजी के उत्पन्न होने का भी अवसर आगया। वे अडे को फोडकर स्वय निकल आये। वे महान् तेजस्वी, परम पराक्रमी और बडे ही डील डोल वाले जन्तु थे, सुवर्ण के समान उनकी परव थीं। वे दूसरे अग्नि के समान दमक रहे थे। उत्पन्न होते ही वे आकाश की ओर उडे। उन्हें आकाश में उडते देखकर देवताओं का तो सब सिटिल्ली भूल गई, वे डर के कारण थर थर काँपने लगे। इन्द्र की दशा शोचनीय थी। शीघ्रता के साथ वे अग्नि से बोले—"अग्नि देव, यह आपसे भी अधिक तेजस्वी कौन जीव है। ये हमारी ओर दौडे आ रहे हैं। ये स्वर्ग का विनाश करेंगे क्या ?"

तीनों लोक के स्वामी देवराज इन्द्र की ऐसी बात सुनकर अग्निदेव हँस पडे और बोले—"देवेन्द्र! आप डरें नहीं। वास्तव में ये मुझसे भी अधिक तेजस्वी हैं, किन्तु ये देवताओं के पक्षपाती हैं, ये तो असुरों राक्षसों तथा नाग आदि क्रूर कर्म करने वालों के विनाशक हैं। सभी देवता चलकर इनकी स्तुति करें।"

इतना सुनते ही हाथों में कल्पवृक्ष के पुष्प लिये हुए सब देवता गरुडजी की स्तुति करने आये और भाँति भाँति के स्तोत्र पाठ

से उनकी प्रशंसा करने लगे। अन्तमें कहा—"हे प्रभो ! हम आजसे आपको समस्त पक्षियों का इन्द्र बनाते हैं। आप अपने इस उग्र रूप को संवरण कर लीजिये। इस भयंकर शरीर को सिकोड़ कर लघु करलें और सदा हम पर कृपा करें। गरुड़जी ने देवताओं की प्रार्थना स्वीकार करली और वे छोटे बनकर अपनी माता की गोद में खेलने लगे।

ये कद्रू की दासी विनता के पुत्र थे। माँ दासी तो बेटा भी दास हुआ। इसलिये कद्रू के बेटे नाग गरुड़जी को आज्ञा दे हमें वहाँ पीठ पर चढ़ाकर ले चलो। हमारा यह काम करो वह काम करो। गरुड़जी अपनी माता के गौरव से यह सब कर तो देते थे, किन्तु उन्हें बड़ा क्रोध आता था। उनके मनमें आता, मेरी माँ कह दे तो इन सब दुष्टों को बीन-बीन कर चट कर जाऊँ। किन्तु क्या करते माता की आज्ञा में बँधे थे।

एक दिन उन्होंने अपनी माता से पूछा—"अम्मा ! ये नाग हमसे दासता के काम क्यों कराते हैं? तू नागों की माता कद्रू को चढ़ाकर इधर उधर क्यों लेजाती है।"

इस पर विनता ने आँखो में आँसू भरकर आदि से अंत तक सब कथा सुना दी और कहा—"बेटा, मेरे साथ इस प्रकार छल किया गया है, अब क्या हो सकता है। हमें तो जीवन भर इनकी दासता करनी पड़ेगी। हाँ, तू समर्थ है, चाहे तो मुझे दासता से छुड़ा सकता है।"

यह सुन कर गरुड़जी कद्रू और नागों से जाकर कहा—"तुम सब मिल कर मुझसे जो चाहो सो कार्य करा लो। मैं तुम्हारा कौनसा दुर्लभ से दुर्लभ कार्य करदूँ, जिससे तुम मुझे और मेरी माता को दासता से मुक्त करदो।"

नागो ने कहा—"यदि आप हमें स्वर्ग से अमृत लादें, तब

आप माँ बेटा दोनों ही हमारी दासता से मुक्त हो जायँ।"

गरुड़जी ने अपना रूप बढ़ाया और वे प्रचंड अग्नि के समान प्रज्वलित होकर आकाश मार्ग से स्वर्ग की ओर उड़े। उनके ऐसे भयंकर रूप को देखकर सभी जीव डर गये। पहिले उन्होंने सोचा इतनी दूर जा रहे हैं कुछ जलपान तो कर लें। यह सोचकर उन्होंने माता से पूछा—"माँ! कुछ जलपान कलेवा को वस्तु बताइँ।" माँ बोली—"बेटा! तू दूसरे हिमालय पहाड़ के समान तो बड़ा है साधारण वस्तुओं से तेरा पेट भरने का नहीं। इस द्वीप में दस्यु, अधर्मी, क्रूरकर्मी, लुटेरे बहुत से आभीर निषाद रहते हैं इन्हें ही तू खाकर अपना पेट भर। किन्तु ब्राह्मण को मत खा जाना। जो तेरे गले में दाह करे अग्नि के समान जले उसे उगल देना। यह सुनकर गरुड़ ने आभीरों को चबैने की भाँति चबाना आरम्भ किया। उस झपट्टे में उनका पुरोहित भी गरुड़ जी के मुख में चला गया। कंठ को जलता देखकर उन्होंने स्त्री बच्चों और स्त्री के परिवार वालों के सहित उस ब्राह्मण को उगल दिया। किन्तु इतना भोजन तो उन्हें चूर्ण के समान प्रतीत हुआ। इससे उनकी क्षुधा और बढ़ गई। खा पी कर उड़े। बीच में सुमेरु पर उनके पिता मिले। कुशल प्रश्न हुई। गरुड़जी ने कहा—"मर्त्यलोक में और सब तो ठीक है, किंतु वहाँ मेरा पेट नहीं भरता। अब भी मुझे बड़ी भूख लग रही है। कोई आहार मुझे बताइये। पिताने कुछ आहार बताया उसे खा पीकर वे स्वर्ग में पहुँचे।

देवता अमृत की बड़ी सावधानी से रक्षा कर रहे थे। अमृत का कलश एक अत्यन्त सुरक्षित स्थान पर रखा था। उसके ऊपर तीक्ष्ण धारवाला चक्र सदा घूम रहा था, इससे कोई उसे छू नहीं सकता था। गरुड़ जी ने अपना छोटा रूप बना लिया और

उसमें घुस गये। भीतर उसमे दो विषैले सर्प उसकी रक्षा कर रहे थे। उनको गरुड़जो ने इस प्रकार मसल दिया कि वे पके आम की तरह पिच्च हो गये। सर्पों को मारकर, उस चक्र को तोडकर, अमृत के कलश को उठाकर, गरुड़जी यह गये वह गये। सब देवता उनके मुखकी ओर ताक्ते के ताकते ही रह गये। देवताओं के समस्त अस्त्र शस्त्र धरे के धरे ही रह गये। इन्द्र का सब बल व्यर्थ हुआ। गरुड के सम्मुख किसी की कुछ भी न चली। सब हक्के वक्के से होकर गरुड़जी को देखने लगे। उनके बल पराक्रम को देखकर सभी भयभीत और चकित हो रहे थे।

गरुडजी अमृत के कलश को लिये हुए निर्भीक होकर आकाश मे उडे जा रहे थे। उनके मन में भी यह बात नहीं आई कि इसमे से थोडा सा अमृत पीकर में भी अजर अमर हो जाऊँ। कितनी निर्लोभता है, कितना सयम और साहस है। भगवान् इनकी इस निस्पृहता से अत्यन्त ही सन्तुष्ट हुए और मार्ग मे इन्हें दर्शन देकर कहने लगे—"गरुड। भैया तुमने तो ऐसा साहस किया कि दूसरा कोई कर नहीं सकता। अकेले स्वर्ग में जाकर सब देवताओं के देखते देखते बलपूर्वक अमृत को उठा लाये और उससे भी अधिक साहस तथा धैर्य का काम तुमने यह किया कि इस ऐसे अनुपम अमूल्य पदार्थ अमृत के पान करने का प्रलोभन तुम्हारे मन में भी नहीं आया। इसलिये में तुम्हारी इस निस्पृहता से सतुष्ट होकर तुम्हें कुछ वरदान देना चाहता हूँ तुम जो चाहो वही मुझसे वरदान माँग लो।"

यह सुनकर गरुडजी ने विनय के साथ निर्भय होकर कहा—"देव। यदि आप मुझे वरदान ही देना चाहते हैं, तो यह वरदान दे कि मैं सदा आपसे ऊँचा रहूँ। आपकी ध्वजा में मेरा

रास रहे। आप गरुडध्वज कहलावें और मैं बिना अमृतपानकिये ही अजर अमर तथा अपराजित हो जाऊँ।"

अविनाशी भगवान नारायण ने कहा—"तथास्तु, गरुडजी! ऐसा ही होगा। आज से आप मेरी ध्वजा में रहेंगे और सदा अजर अमर बने रहेंगे।"

यह सुनकर गरुडजी ने निडर होकर कहा—"हे मधुसूदन मैं आपको भी कुछ वरदान देना चाहता हूँ। आप भी मुझसे इच्छानुसार माग लें।"

यह सुनकर हँसते हुए श्री हरि बोले—"हे पक्षिराज! यदि आप मुझे वरदान ही देना चाहते हैं तो आप मेरे वाहन बन जायँ। आपकी पीठ पर चढ कर मैं उगा करूँ।"

गरुडजी ने कहा—"अच्छी बात है, भेड तो जहाँ जायगी मुडेगी ही। अब तक मैं इन दुष्ट नागों को ढोता था। अब आप शख चक्रधारी चतुर्भुज वनवारी को ढोया करूँगा।" इतना कहकर गरुडजी भगवान् को प्रणाम करके ज्यों ही चलने को उद्यत हुये त्यों ही भगवान् वहीं अन्तर्धान हो गये।

सूतजी कहते है—"मुनियो! आपने पूछा था की गरुडजी भगवान् के वाहन कैसे हुए सो यह वृत्तान्त मैंने आपसे कहा अब आप और क्या पूछना चाहते हैं?"

इस पर शोनकजी ने पूछा—"सूतजी! आपने तो गरुडजी की बडी ही अद्भुत कथा सुनाई। महाभाग! गरुडजी के इस बल पराक्रम को सुनकर तो हमारे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। इन्द्र भी जिनके सम्मुख थर थर काँपते थे वे साधारण पुरुष तो हो नहीं सकते। गरुडजी मे इतना बल कैसे आया? किसके वरदान से य इतने वली हुए। इस बातको आप हमें और बतावें।'

यह सुनकर सूतजी बोले—"महाभाग ! जो दूसरों की दुर्बलता पर हँसता है उसे एक दिन स्वयं भी लज्जित होना पड़ता है। मुनियो ! संसार का नियम है जो जैसा करेगा वैसा भरेगा।"

बात यह थी कि एक बार कश्यप मुनि एक यज्ञ कर रहे थे। देवता, ऋषि, असुर, पशु, पक्षी सभी उनके पुत्र हैं। पिता के यज्ञ में सभी सहयोग देने आये थे। कश्यपजी के कुछ पुत्र बालखिल्य ऋषि भी हैं। वे अँगूठे के पोर के समान आकार वाले होते हैं। पेड़ों पर उलटे लटककर तपस्या करते हैं। पिता के यज्ञ की बात सुनकर वे भी आये। कश्यपजी ने स्नेहवश देवताओं के इन्द्र को तथा इन ऋषियों को समिधालाने के लिये भेजा। इन्द्र तो लंबे तड़गे थे, बड़ा भारी काष्ठ उठा लाये। ये बिचारे एक तो वैसे ही अँगूठे के पोर के बराबर बौने थे। चींटे के समान हजारों मिल कर एक ढाक की छोटी सी लकड़ी को ला रहे थे। रास्ते में एक गौ के खुर के समान पानी का गड्ढा मिला। उसी में सब डुबकियाँ लगाने लगे, लकड़ी एक ओर बह रही है, ये मेंढक के बच्चे की भाँति इधर उधर तैर रहे हैं। यह देखकर इन्द्र को बड़ी हँसी आई। देखो, ये भी जीव हैं। गौ के खुर के बराबर गढ़े में डूब रहे हैं।

बालखिल्य शरीर में देखने से ही छोटे थे। तपस्या में तो इन्द्र से भी अत्यधिक बढ़ चढ़कर थे। अतः उन्हें इन्द्र की इस अविनय पर क्रोध आगया उन्होंने कहा—"अच्छा बच्चूजी ! देख लेना हम कैसे हैं। तुझे इन्द्र पन से न हटाया तो हमारा नाम बालखिल्य नहीं।" इतना कहकर वे एक दूसरे इन्द्र के लिये यज्ञ करने लगे।

अब तो इन्द्र की सब चौकड़ियाँ भूल गईं। दौड़े दौड़े पिता के पास पहुँचे। सब वृत्तान्त कहा, कश्यपजी बालखिल्यों के पास गये और उन्हें समझा बुझाकर कहने लगे—"अरे, भैया! क्यों झगड़ा ठंटा बढ़ाते हैं। इन्द्र को बना रहने दो इसे इन्द्रासन से उतारने में तुम्हें क्या मिल जायगा।"

भैया, ब्रह्माजी ने इसी इन्द्र को त्रिलोकी का स्वामी बनाया है, अब तुम दूसरा इन्द्र बना रहे हो। ऐसा अन्याय मत करो। ब्रह्माजी की मर्यादा को तुम लोग ही न मानोगे तो और कौन मानेगा?

बालखिल्यों ने कहा—"तब महाराज! हमने इतना यज्ञयाग किया है क्या सब व्यर्थ ही हो जायगा।"

शीघ्रता के साथ कश्यपजी ने कहा—"नहीं, नहीं यह बात नहीं भैया! मैं कब कहता हूँ तुम्हारा यज्ञ अन्यथा हो जाय या तुम्हारा सङ्कल्प व्यर्थ हो। आप के यज्ञ के फल स्वरूप इन्द्र अवश्य उत्पन्न होगा, किन्तु वह देवताओं का इन्द्र देवेन्द्र न होकर पक्षियों का इन्द्र खगेन्द्र होगा। वह बल, पराक्रम, तेज और कीर्ति में इन्द्र से भी बढ़ चढ़कर होगा। इन्द्र को भी उसके सामने लज्जित होना पड़ेगा।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! उन बालखिल्यों के ही यज्ञ के कारण गरुड़जी इतने बली हुए, जिससे इन्द्र को भी उनके सम्मुख पराजित होना पड़ा।"

यह सुनकर शौनकजी ने पूछा—"हाँ, तो सूतजी! फिर क्या हुआ? गरुड़जी अपनी माता विनता को दासत्व से मुक्ति कर सके कि नहीं। नागों ने अमृत पान किया या नहीं।"

यह सुनकर सूतजी बोले—"अजी, महाराज! यह तो बड़ी

लम्बी चौड़ी कहानी है इसे मैं कहाँ तक आपसे कहूँगा। मेरा अभिप्राय तो आपके उसी प्रश्न के उत्तर से था, कि गरुड़जी भगवान् के वाहन कैसे हुए। उसका उत्तर मैं दे ही चुका अब संक्षेप में यों समझ लीजिये, कि इन्द्र और गरुड़ की परस्पर में मैत्री हो गई। इस प्रकार की सन्धि हुई, कि गरुड़जी अमृत को लेजाकर नागों के सामने रख देंगे। नाग कहेंगे जाओ तुम माँ बेटा हमारी दासता से मुक्त हो गये। तब इन्द्र जाकर उस अमृत को उठा लावेंगे।"

ऐसा ही हुआ। गरुड़जी ने नागों से कहा—"लो, भैया! अमृत ले लो। अमृत पाकर वे फूले नहीं समाये उन्होंने कहा—"अच्छा, भैया अमृत ले आये हम स्नानादि से निवृत्त होकर पवित्र होकर इस पावन पेय का पान करेंगे।"

गरुड़जी ने कहा—"हाँ, तुम सब स्नान करो हम इसे कुशों पर रखे देते हैं। हम दासता से मुक्त हो गये न ?"

नागों ने कहा—"हाँ, भैया ! हो गये हो गये।" इतना कहकर वे शीघ्रता से नहाने चले गये। इतने में ही देवराज इन्द्र आये। एक झपट्टे मे अमृत भांड़ को उठा यह गये वह गये। नाग देखते के देखते ही रह गये। सच है जो दूसरों को ठगता है, वह भी एक दिन इसी तरह ठगा जाता है। इस प्रकार मुनियो ! विनतानन्दन श्री गरुड़जी ने अपने बल पराक्रम तथा निर्लोभिता के कारण भगवान् वासुदेव को प्रसन्न किया, इन्द्र से मैत्री की, सौत के बन्धन से अपनी माता को छुड़ाया

और दुष्ट नागों को बुरी तरह से छकाया। तार्क्ष्यकुमार गरुड़ जी ने अपने यश से सम्पूर्ण संसार को भर दिया। भगवान् उनकी पीठ पर चढ़कर जब असुरों का संहार करते हैं, तो गरुड़जी अपने पङ्खों से ही लाखों असुरोंको यमपुर पहुँचा देते हैं। जब ये उड़ते हैं, तो इनके पङ्खों से सामवेद की ऋचायें अपने आप निकलती रहती हैं। उसीका प्रतीक गरुड़घंट है। जो पूजा में घंटे को बजाते हैं उससे बिना मंत्रकी पूजा भी सफल मानी जाती है। यह मैंने अत्यन्त ही संक्षेप मे आपसे भगवान् के वाहन गरुड़जी का और भगवान् सूर्य के सारथी अरुणजी का वृत्तान्त कहा। अब आप लोग और क्या सुनना चाहते है ?"

यह सुनकर शौनकजी ने कहा—"सूतजी! गरुड़जी का चरित्र आपने बड़ा ही अद्‌भुत सुनाया। अब आप हमें दक्ष प्रजापति की अन्य कन्याओं के वंश को भी सुनाइये। आपने कहा था—"२७ कन्याये दक्ष ने चन्द्रमाको दीं। सो, उन २७ मे कितनी सन्तानें हुईं ?"

सूतजी ने हँसकर कहा—"महाराज! चन्द्रमा तो शापवश निःसन्तान हो गये। उनके उन २७ पत्नियों से एक भी सन्तान नहीं हुई।"

इस पर शौनकजी ने पूछा—"महाभाग! चन्द्रमा को किनका शाप हुआ। क्यों उनकी पत्नियों मे सन्तानें नहीं हुईं। इस वृत्तान्त को आप हमें सुनावें।"

सूतजी बोले—"अच्छी बात है, महाराज! सुनिये, अब मैं

आपको चन्द्रमा के शाप की कथा सुनाता हूँ, आप सब सावधान होकर श्रवण करें।

छप्पय

विनता कद्रू बहिन सौतिया डाह भयो मन।
उच्चैःश्रवा निमित्त दासता को कीन्हों प्रन॥
कद्रू रँगटि करी पूँछ सुत अहि लिपटाये।
दासी विनता बनी गरुड़ जनि दुःख भुलाये॥
अरुण भये आधे गरुड़, अमृत लाइ अहि पुनि हने।
बरते हरि ध्वज महँ रहँ, इहि वर दे वाहन बने॥

चन्द्रमा को दक्ष का शाप

(३८०)

कृत्तिकादीनि नक्षत्राणीन्दोः पत्न्यस्तु भारत ।
दक्षशापात्सोऽनपत्यस्तासु यक्ष्मग्रहार्दितः ॥
पुनः प्रसाद्य तं सोमः कला लेभे क्षये दिताः ।ॐ
(श्रीभा० ६ स्क० ६ अ० २३ श्लो०)

छप्पय

सत्ताइस नक्षत्र चन्द्र पत्नी सुकुमारी ।
औरनि तें नहिं नेह रोहिणी अतिशय प्यारी ॥
पितु समीप सब गईं दुःख की कथा सुनाई ।
दयो दक्ष सुनि शाप होय क्षय सोम सदाई ॥
बात शाप की सोमने, सुनी बहुत चिन्तित भये ।
अपराधी बनि ससुरके, विनयसहित पुनि ढिँग गये ॥

रूप का मद, अधिकार का मद, यौवन का मद, और ऐश्वर्य का मद ये चार मद ऐसे होते हैं, कि मनुष्य को पागल बना देते हैं। कैसा भी विवेकी हो, ज्ञानी हो, बुद्धिमान हो इन मदों में फँस अपने आपे को भूल जाता है जिन्होंने एकमात्र भगवत् चरणों

ॐ श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"हे भरतवंशावतंश राजन् ! कृत्तिका से लेकर जितने २७ नक्षत्र हैं, ये सब चन्द्रमा की पत्नी हैं, दक्ष प्रजापति के शाप से चन्द्रमा को राजयक्ष्मा रोगहोगया था,इससे इनमें से किसी के सन्तान नहीं हुई। फिर चन्द्रमा ने दक्ष का प्रसन्न किया तो उन्हें क्षीण हुई कलाओं को पूर्ण हो जाने का वरदान प्राप्त हुआ।"

की शरण ले रखी है। जो भगवान् के कृपापात्र हैं, वे ही इन मदों से बच सकते हैं। नहीं तो ये मद प्राणियो को पगला बना देते हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! यह तो मैं पहिले ही बता चुका हूँ, कि कृत्तिका से भरणी तक (पहिले अश्विनी से नक्षत्रों की गणना न होकर कृत्तिका से ही होती थी और अत मे अश्विनी भरणी जोड़कर २७ किये जाते थे। जो ये कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, अश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ़, उत्तराषाढ़, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिशाखा, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद, रेवती, अश्विनी और भरणी २७ नक्षत्र हैं, दक्ष को प्यारी पुत्रियाँ हैं। दक्ष ने इन सबका विवाह चन्द्रमा के साथ किया था।"

चन्द्रमा अत्रि के पुत्र हैं। ये जन्म से ही अत्यन्त सुन्दर थे। घोर तपस्या करके इन्होंने वनस्पति, लता गुल्मों का स्वामित्व तथा ब्राह्मणों का ईश्वरत्व प्राप्त किया। राजसूय यज्ञ करके इन्होने सभा के तेज को फीका बना दिया। एक तो ये युवा थे, ससार मे अत्यधिक सुन्दर थे, तपस्या के प्रभाव से तेजस्वी थे। ब्रह्माजी के अनुग्रह से इन्हे ऐश्वर्य भी प्राप्त हो चुका था, इसीलिये ये आपे से बाहर होकर अनाचार करने लगे। ये यहाँ तक बढ़ गये, कि इन्होने गुरुपत्नी तारा को भी बलात्कार अपने घर में रख लिया। उस तारा के पीछे तो देवता और असुरों का बड़ा घोर युद्ध हुआ पीछे ब्रह्माजी ने बीच में पड़ पड़ाकर इस मामले का जैसे तैसे तय करा दिया। प्रजापति दक्ष ने चन्द्रमा को सर्वसमर्थ, सुन्दर और

योग्य देखकर अपनी २७ कन्याओं का उनके सङ्ग विवाह कर दिया। नियमानुसार चन्द्रमा का कर्तव्य था, सभी के साथ समानता का व्यवहार करते, सभी को एक सा प्यार करते, किन्तु ऐसा न करके उन्होंने अपना समस्त प्रेम रोहिणीके ही ऊपर उड़ेल दिया। रोहिणी को छोड़कर वे अन्य किसी के घर जाते ही न थे और न किसी से बोलते चालते ही थे इस वातसे शेष छब्बोस पत्नियाँ मनही मन चन्द्रमा के व्यवहार से बहुत अधिक असन्तुष्ट हुईं। उन्होंने कई बार चन्द्रमा से प्रार्थना भी की, कि नाथ! हमारा भी तो कुछ अधिकार है किन्तु चन्द्रमा ने उनकी एक भी बात न सुनी। जब वे सब ओर से निराश हो चुकीं, तो उन्होंने जाकर अपने पिता प्रजापति दक्ष से आद्यन्त सब बातें सुनाईं। दक्ष ने भी चन्द्रमा को बहुत समझाया, किन्तु वे माने ही नहीं। अन्त में दक्ष प्रजापति ने क्रुद्ध होकर उन्हें शाप दे दिया, कि तुम मेरी पुत्रियों में भेदभाव रखते हो, अतः जाओ तुम्हें क्षयी राजयक्ष्मा—रोग हो जाय।

दक्ष प्रजापति का शाप अन्यथा तो होने का ही नहीं, अब तो चन्द्रमा को क्षयी रोग हो गया उनकी कलायें प्रतिदिन क्षीण होने लगीं। वे नित्य घटने लगे। अब तो वे घबड़ाये। राजयक्ष्मा रोग जिसे भी हो जाता है, उसके जीवन की आशा बहुत ही कम रह जाती है। चन्द्रमा ने जब देखा कि मेरा तो अब विनाश ही हो जायगा, तो उन्होंने दक्ष प्रजापति की पुनः प्रार्थना की, भगवान् शिवकी आराधना की। अन्त में उन्होंने शिवजी के प्रसाद से और दक्ष के अनुग्रह से कृष्णपक्ष में क्षीण हुई कलाओं को शुक्लपक्ष में पूर्ण हो जाने का वरदान प्राप्त किया। जो क्षयी का रोगी है, उसके सन्तान तो कैसे हो सकती हैं। अतः

कलाओं के प्राप्त हो जाने पर भी उनके सन्तानें नहीं हुईं वे सत्ताइस की सत्ताइसों ही बिना सन्तान के ही रहीं। इसीलिये चन्द्रमा के इन पत्नियों में से किसी के सन्तानें नहीं हुईं।

इसपर शोनकजी ने कहा—"सूतजी! आप तो कहते हो कि, चन्द्रवश चला ही नहीं किन्तु क्षत्रियों में तो सूर्यवश चन्द्रवश ये दो विख्यात वश हैं इसी चन्द्रवश में बुध, इला, पुरुरवा आदि बड़े-बड़े राजर्षि उत्पन्न हुए हैं। ये कैसे उत्पन्न हुए।"

इसपर सूतजी ने कहा—"महाभाग! मेरे कहने का अभिप्राय यह नहीं, कि चन्द्रमा का वश चला ही नहीं। मैं तो प्रजापति दक्ष की ६० कन्याओं के वश का वर्णन कर रहा हूँ। उन ६० में से २७ चन्द्रमा की पत्नियाँ हुईं। इन २७ को कोई सन्तानें नहीं हुईं। वैसे बुध तो चन्द्रमा के पुत्र हैं ही किन्तु वे ऐसे ही सट्ट-पट्ट हैं। उनकी कथा आगे चन्द्रवश के वर्णन में कहूँगा।"

यह सुनकर शोनकजी बोले—"हाँ, महाभाग ठीक है। आप दक्ष की ६० कन्याओं के वश का वर्णन कर रहे थे। उनमें से १० धर्म की पत्नियों का भूत, अगिरा और कृशाश्व की २-२ पत्नियों का अर्थात् ६ का ४ तार्क्ष्य की पत्नियों का तथा २७ चन्द्रमा की पत्नियों का वृत्तान्त आपने सुनाया। इस प्रकार ४७ के सम्बन्ध में तो आपने बता दिया अब जो १३ भगवान् कश्यप की पत्नियाँ शेष रहीं, उनका भी वृत्तान्त हमें सुनाइये।"

इसपर सूतजी ने कहा—"महाभाग! ये १३ लोक की माताय कहलाती हैं, इनसे ही इतनी सृष्टि बढ़ी कि इससे सम्पूर्ण चराचर विश्व भर गया। अब मैं उन्हीं के वश का वर्णन करूँगा, उसे आप दत्त चित्त होकर श्रवण करें।"

छप्पय

चन्द्र विनय बहु करी प्रजापति किरपा कीन्हीं।
कृष्ण पक्ष ई कला होयँ क्षय आज्ञा दीन्ही॥
शुक्ल पक्ष महँ पूर्ण होयँ ऐसो वर दीन्हों।
अति अनुनय करि दक्ष तुष्ट शशि ने कर लीन्हों॥
दक्ष सुता दस सत्तरह, सतति बिनु सब रहि गई।
पक्षपात पति ने कर्यो, दुखित सबहिं जाते भई॥

कश्यप पत्नियों के वंश का वर्णन

(३८१)

शृणु नामानि लोकानां मातॄणां शङ्कराणि च ।
अथ कश्यपपत्नीनां यत्प्रसूतमिदं जगत् ॥
अदितिर्दितिर्दनुः काष्ठा अरिष्टा सुरसा इला ।
मुनिः क्रोधवशा ताम्रा सुरभिः सरमा तिमिः ॥*
(श्रीभा० ६ स्क० ६ अ० २४-२५ श्लो०)

छप्पय

काष्ठा के सुत अश्व सुरभि के गौ पशुगन हैं ।
तिमि के जलचर जीव दनू के सब दानव हैं ॥
सरमाके व्याघ्रादि नाग ताम्रा की सन्तति ।
सुरललना मुनि जनीं दैत्य दितिके हिंसक अति ॥
क्रोधवशाके सर्पगन, करें क्रोध जो नित्य हैं ।
सुरसा के राक्षस भये, अदिती के आदित्य हैं ॥

हम सबके पूर्व पुरुष एक हैं, मनुष्य यदि नीचे की ओर न देखे ऊपर की ही ओर ध्यान दे, शाखाओं को महत्त्व न देकर

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! जिनके द्वारा यह सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ है, उन लोककी माता कश्यप की पत्नियों के मङ्गल-मय नामों को श्रवण कीजिये। उनके नाम ये हैं—अदिति, दिति, दनु, काष्ठा, अरिष्टा, सुरसा, इला, मुनि, क्रोधवशा, ताम्रा, सुरभि, सरमा और तिमि ।"

मूल पर ही दृष्टि रखे तो किसी से घृणा ही न हो। जिसके मन में किसी के प्रति घृणा नहीं। वही समदर्शी है और समदर्शी ही सदा सुखी है प्राचीन प्रथा ऐसी थी, कि सभी अपने-अपने पूर्वजों की कीर्ति नामावली सुना करते थे। सूत, मागध, वन्दी तथा गायक लोग वंशों का, पूर्व पुरुषों की कीर्ति का गायन करते थे। अपने पूर्वजों की बातें सुनकर हमें उत्साह बढ़ता है, अपने वंश वालों के प्रति प्रेम उत्पन्न होता है। यदि हम सब समझ लें कि पशु पक्षी, सर्प, व्याघ्र, दैत्य, दानव, देवता, तथा मनुष्य आदि हम सब एक ही पिता कश्यप की सन्तान हैं, भाई भाई हैं, तो फिर लड़ाई झगड़ा, राग द्वेष बहुत कम हो। हम अन्य समझकर ही लड़ते हैं घृणा करते हैं। अपनों से तो प्यार किया जाता है।

श्री शुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! मैंने प्रजापति दक्ष की ४७ कन्याओं के सम्बन्ध में बता दिया। अब दक्ष के शेष १३ कन्याओं के वंश को श्रवण कीजिये जो कि भगवान् कश्यप की पत्नियाँ थीं। जिनके नाम अदिति, दिति, दनु, काष्ठा, अरिष्ठा, सुरसा, इला, मुनि, क्रोधवशा, ताम्रा, सुरभि, सरमा और तिमि हैं। पहिले मैं "सूची कटाह" न्याय से दिति अदिति को छोड़कर शेष ११ के वंश का संक्षेप में वर्णन करूँगा। एक लोहार के पास एक आदमी लोहा लेकर गया, कि हमें एक बड़ी भारी कढ़ाही बना दो। ज्यों ही वह अपने शस्त्रों को ठीक ठाक करके कढ़ाही बनाने को उद्यत हुआ, त्यों ही दूसरा आदमी पहुँचा कि हमें एक सुई बना दो। नियमानुसार तो जो पहिले पहुँचा है, उसी का काम करना चाहिये, किन्तु कढ़ाही के बनाने में बहुत विस्तार करना है, सुई तो तनिक देर में बन जायगी,

छोटा काम है, अतः उसने पहिले कढ़ाही न बनाकर सूची ही बना दी इसी का नाम सूची कटाह न्याय है, पहिले संक्षिप्त में होने वाले कार्य को करके तब विस्तार के कार्य में हाथ लगाना।

कश्यप की पत्नियों की संतति

हाँ, तो राजन्! अब आप कश्यप की पत्नियों की संतति को श्रद्धा से सावधानी के सहित श्रवण कीजिए। कश्यप की तिमि नामक पत्नी ने समस्त जल में रहने वाले जीवों को जन्म दिया। अब तक भी जल में तिमि नामक एक बहुत बड़ी मछली होती है, एक प्रकार का छोटा मोटा एक टापू के समान ही होती है। उसको भी निगलने वाली तिमिङ्गिल होती है। सरमा नामक एक पत्नी ने सिंह व्याघ्रादिकों को उत्पन्न किया। सुरभि ने भैंस गाय आदि दो खुर वाले पशुओं को पैदा किया। ताम्रा ने बाज और गीधों की उत्पत्ति की। मुनि नामक कश्यप पत्नी ने स्वर्गीय अप्सराओं को जन्म दिया। क्रोधवशा ने दन्दशूक आदि बड़े बड़े विषधर सर्पों को उत्पन्न किया। इला ने समस्त वृक्षों की सृष्टि की। जितने ये रक्तमांश भोगी क्रूरकर्मा राक्षस हैं ये सब सुरसा की सन्तानें हैं। अरिष्टा ने गाने वाले सुन्दर गन्धर्वों को उत्पन्न किया। तथा काष्ठा के घोड़े गधे, खच्चर आदि एक खुर वाले पशु उत्पन्न हुए। दनुके ६१ दानव उत्पन्न हुए। पहिले पहिले ६१ दानव हुए थे। उन्हीं से फिर असंख्यों दानव हुए। इन ६१ में जो सबसे प्रसिद्ध पराक्रमी और बलशाली हुए उनमें से कुछ के नाम ये हैं। द्विमूर्धा, शम्बर, अरिष्ट, हयग्रीव, विभावसु, अयोमुख, शङ्कु शिरा, स्वर्भानु, कपिल, अरुण, पुलोम, वृषपर्वा, एकचक्र, अनुतापन, धूम्रकेश, विरूपाक्ष विप्रचित्ति, दुर्जय आदि-आदि। इनमें नमुचि दैत्य ने स्वर्भानु दानव की सुप्रभा नामक पुत्री से विवाह किया। वृषपर्वा जो

दानवों का राजा था उसकी पुत्री शर्मिष्ठा से भरत वंशी नहुष नन्दन महाराज ययाति ने विवाह किया। राजन्! इसकी बड़ी अद्भुत कथा है, इसका मैं आगे, सूर्य वंश चंद्र वंश के प्रसंग मे वर्णन करूँगा। वैश्वानर की उपदानवी, हयशिरा पुलोमा और कालका ये चार परम सुन्दरी कन्यायें थीं। उनमे से उपदानवी का हिरण्याक्ष के साथ, हयशिरा का क्रतु के साथ, तथा पुलोमा और कालकेय का विवाह कश्यप जी के साथ हुआ' जिनसे पौलोम और कालकेय नामक साठ हजार दानव हुए, जो धनुर्धर अर्जुन के हाथ से मारे गये। विप्रचित्ति दानवने सिंहका नामक पत्नी से एक सौ पुत्र उत्पन्न किये, जिनमें राहु सब से बड़ा था, जिसका सिर अमृतपान के समय काट लिया गया, इस सुन्दर रोचक कथा को समुद्र मन्थन के प्रसंग में कहेंगे। बड़ा राहु कहलाता था, शेष सबको केतु संज्ञा है ये सभी ग्रह हो गये।

अब आप परम पावन देव माता अदिति के पुण्यवर्धक चरित्र को श्रवण करें। इन्हीं भाग्यवती अदिति के गर्भ से सर्वव्यापक स्वयं साक्षात् श्रीमन्नारायणने वामनावतार लिया था। अदिति के गर्भ से १२ आदित्य उत्पन्न हुए। जो बारह महीनों में एक एक सूर्य मंडल में रह कर तपते हैं। उनके नाम विवस्वान्, अर्यमा, पूषा, त्वष्टा, सविता, भग, धाता, विधाता, वरुण, मित्र, शक्र और उरुक्रम हैं। भगवान् विवस्वान् के वीर्य से उनकी पत्नी संज्ञा में श्राद्धदेव मनु यमराज और यमी नामक एक कन्या ये तीन सन्तानें हुईं। उसी ने घोड़ी का रूप रखकर अश्विनीकुमारों को उत्पन्न किया, यह बड़ी लम्बी और अत्यन्त ही रोचक कथा है, इसका प्रसंगानुसार वर्णन किया

जायगा। विवस्वान् की दूसरी पत्नी छाया ने भी सावर्णिमनु शनैश्चर और तपती कन्या इन तीन सन्तानों को उत्पन्न किया। तपती का विवाह संवरण के साथ हुआ। विवस्वान् के पश्चात् दूसरे आदित्य अर्यमा हैं, इनका विवाह मातृका नाम की स्त्री के साथ हुआ। जिनसे चर्षणी नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ।' चर्षणी—कृत और अकृत के ज्ञानवाली—ऐसी मनुष्य जातिकी उत्पत्ति इन्हीं से हुई। जिनमे ब्राह्मणादि की कल्पना हुई। पूषा निस्सन्तान और पोंपले मुखवाले हुए। दक्ष प्रजापति के यज्ञ मे जैसे इनकी बत्तीसी भाड़ी गई थी, इसका वर्णन तो हम दक्षयज्ञ के प्रसङ्गमे पूर्व ही कर आये हैं। श्राद्धादि मे इन पूषादेव को पिसा हुआ सत्तू आदि अन्न दिया जाता है, इसीलिये ये पिष्टभुक् कहलाते हैं। तीसरे आदित्य हैं त्वष्टा इन्होंने दैत्यवंश मे विवाह कर लिया। दैत्यो की सबसे छोटी बहिन रचना इनकी धर्मपत्नी थी। राजन्! आप जानते ही हैं। देवताओं मे और दैत्यो मे स्वाभाविक वैर भाव है। इतना सब होते हुए भी इनमे परस्पर मे वैवाहिक सम्बन्ध तो होता ही था। इन्द्र की पत्नी शची भी पुलोमा दैत्य की पुत्री हैं, इसीलिये वे पौलोमी कहलाती हैं।

भगवान त्वष्टा ने अपनी पत्नी रचना मे दो पुत्र उत्पन्न किये। जिनमे सन्निवेश बड़े थे और विश्वरूप छोटे थे। ये ही विश्वरूप आगे चलके देवताओं के पुरोहित हुए।

इस पर राजा परीक्षित् ने पूछा—"प्रभो! देवताओं के पुरोहित तो परमज्ञानी, नीतिविशारद वृहस्पति हमने सुने हैं। अब आप कहते हैं कि उन्होंने विश्वरूप को भी अपना पुरोहित बनाया। यह क्या बात है? देवताओं ने दो पुरोहित क्यों बनाये?"

यह सुनकर श्रीशुकदेवजी कहने लगे—"राजन्! यह सत्य है, देवताओं के पुरोहित भगवान् बृहस्पति ही हैं, किन्तु जब इन्द्र ने उनका अपमान किया, तो वे देवताओं को छोडकर चले गये। बिना पुरोहित के काम कैसे चले, तब देवताओं ने बृहस्पति जी के स्थान पर इन विश्वरूप को देवगुरु बनाया था।"

इस पर राजा ने पूछा—"महाराज,पुरोहित गुरु तो देवताओं की सदा दैत्यों से रक्षा करते रहते थे। दैत्य छिद्र पाकर चढ़ाई न करदे, इसीलिये मन्त्र देने के आचार्य रहते थे। विश्वरूप जी की माता तो स्वय दैत्यवश की थीं, वे मातृवश के कारण असुरों का कुछ पक्ष अवश्य लेते होंगे। ऐसे सन्देहास्पद व्यक्ति को देवताओं ने पुरोहित क्यों बनाया ?"

इस पर हँसते हुए श्रीशुकदेवजी बोले—"महाराज! स्वार्थ बडी बुरी वस्तु है। स्वार्थ के वशीभूत होकर मनुष्य सब कुछ कर सकता है। स्वार्थ के कारण इन्द्र ने कितने भारी भारी अपराध किये! महाराज! यह बडी लम्बी चोडी कथा है। इन्द्र ने अपने गुरु का अपमान किया, इससे उन्हे कितनी भारी भारी विपत्तियों का सामना करना पडा, इसे सभी जानते हैं। इसके पीछे उसे ब्रह्महत्या तक करनी पडी।"

इस पर उत्सुकता प्रकट करते हुए महाराज परीक्षित् ने पूछा—"प्रभो! मुझे इस परम पवित्र आख्यान को पूर्ण रूप से सुनाइये। इसे सुनने के लिये मेरे मनमें बडा कुतूहल हो रहा है।"

यह सुनकर श्रीशुकदेवजी बोले—"अच्छी बात है राजन्! मैं आपको इस पवित्र चरित्र को सुनाता हूँ, आप सावधान होकर श्रवण करें।

छप्पय

इला जने सब वृक्ष जगत् के जे सुख दायक।
जने पुत्र गन्धर्व अरिष्टा सुन्दर गायक॥
जो बारह आदित्य बड़े तिनि विवस्वान् रवि।
हैं अर्यमा द्वितीय भये तिनतें मानुस कवि॥
दक्ष यज्ञ में पिष्टभुक्, दन्तहीन पूषा भये।
विश्व रूप त्वष्टा तनय, सुरगुरु कछु दिन वनि गये॥

देवेन्द्र द्वारा देवगुरु वृहस्पति का आगमन

[३८२]

वचस्पतिं मुनिवरं सुरासुरनमस्कृतम् ।
नोच्चचालासनादिन्द्रः पश्यन्नपि सभागतम् ॥
ततोनिर्गत्य सहसा कविराङ्गिरसः प्रभुः ।
आययौ स्वगृहं तूष्णीं विद्वाञ्छ्रीमदविक्रियाम् ॥*

(श्रीभा० ६ स्क० ७ अ० ८-९ श्लो०)

छप्पय

हम सबतें हैं ऊँच भयो अभिमान देवपति ।
क्यों देवें सम्मान वृहस्पतिकूँ हम नितप्रति ॥
ऐसो निश्चय करयो सभामहँ जब गुरु आये ।
नहिँ आसन तें उठे वचन नहिँ मधुर सुनाये ॥
समुझि गये गुरु इन्द्रकूँ, अहङ्कार अतिशय भयो ।
तुरत लौटि आये भवन, भलो बुरो नहिँ कछु कह्यो ॥

कलह की जड़ है अहङ्कार। जब मनुष्य समझता है मैं सबसे बड़ा हूँ, मैं सबसे उत्तम हूँ, मैं ही पूजनीय सम्माननीय हूँ, मेरे अतिरिक्त सब तुच्छ हैं, हेय है, गर्ह्य हैं, निन्दनीय हैं

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! जिन्हें देवता असुर सभी नमस्कार करते हैं, जो समस्त मुनियों मे श्रेष्ठ हैं वाणी के पति हैं ऐसे अपने गुरु भगवान् वृहस्पति को सभा मे आये हुए देखकर भी इन्द्र

तभी वह दूसरों का तिरस्कार करता है, गुरुजनो का अपमान करता है। जीवो का अपमान करना सर्वान्तर्यामी घट घट व्यापी प्रभु का ही अपमान करना है। जो दूसरो का अपमान करता है उसे स्वय भी अपमानित होना पड़ता है। अत. भूल कर भी कभी किसी प्राणी को छोटा हेय समझ कर उसका अपमान न करना चाहिये। सम्पूर्ण चराचर भूतो म उसी अपने इष्ट देव के दर्शन करने चाहिये।

जब राजा परीक्षित ने यह प्रश्न किया कि वृहस्पति जी ने अपने प्रिय शिष्य देवताओ का परित्याग किस अपराध के कारण किया तो इसका उत्तर देते हुए श्री शुकदेवजी कहने लगे—"राजन्! यह ऐश्वर का मद बहुत बुरी वस्तु है। जिसके पास ऐश्वर्य बढ जाता है और साथ ही अविवेक भी उसके हृदय में अड्डा जमा लेता है, तो मनुष्य के भीतर और बाहर दोनों ओर की आँखे फूट जाती हैं, वह मदान्ध हो जाता है। राजन्! धन और ऐश्वर्य के मद मे पुरुष अपने सम्मुख सभी को तुच्छ समझने लगता है। वह अपने विवेक को खो बैठता है, क्या करना चाहिये क्या न करना चाहिये इसका भी उसे ध्यान नहीं रहता। कुबेर के पुत्र नलकूबर मणिग्रीव ने ऐश्वर के मद में ही मत्त हो कर तो देवर्षि नारद का अपमान किया था। ऐश्वर्य के मद मे अधे हुए पुरुषा की आँखो को खोलने के लिये दरिद्रता ही एक प्रकार

अपने आसन से टस से मस भी नहीं हुआ, उसने देखकर भी गुरु को नहीं देखा। सर्वसमर्थ वृहस्पतिजी उसी समय सहसा इन्द्र सभा से बाहर आगये। वे समझ गये यह ऐश्वर्यमद का दोष है, इसीलिये वे बिना कुछ बोले चाल अपने घर आगये।"

का श्रंजन है दरिद्रता आजाने से जहाँ ऐश्वर्यमद उतरा कि बुद्धि ठिकाने आजाती है।

एक दिन इन्द्र ने अपना वैभव देखा। दिव्य सुधर्मा सभा में दिव्य मणिमय सिंहासन पर त्रैलोक्य में सर्व सुन्दरी शची देवी के साथ वे वैठे हुए हैं। अनुपम रूप लावण्यवती स्वर्गीय ललना-दिव्य अप्सरायें हाव भाव कटाक्षों के साथ सम्मुख नृत्य कर रहे हैं। गन्धर्व तान. मूर्छा और लय के साथ दिव्य गायन गा रहे हैं। हाथों में अनेक प्रकार की सेवा सामग्रियों को लिये हुए सहस्रों सुराङ्गनायें सावधानी के सहित सेवा में समुपस्थित हैं। बड़े-बड़े ऋषि, महर्षि खड़े होकर देवराज की स्तुति कर रहे हैं। देवता हाथ जोड़े हुए, आज्ञा की प्रतिक्षा में खड़े हैं सिद्ध, चारण, गन्धर्व, उरग, राक्षस, गुह्यक, भूत, प्रेत, पिशाच, नद, नदी, वन, समुद्र, पर्वत सभी मूर्तिमान् होकर शतक्रतु उपासना कर रहे हैं। इस इतने स्वर्गीय वैभव और ऐश्वर्य को देखकर इन्द्र को अभिमान हो गया। वे सोचने लगे तीनों लोकों में मुझसे बढ़कर कौन है। मनुष्यों की बात तो पृथक् रही समस्त देव, उपदेव मेरी पूजा प्रतिष्ठा करते हैं, सब मेरे सम्मुख हाथ जोड़े हुए खड़े रहते है। बड़े-बड़े ऋषि मुनि खड़े रहते हैं। मैं सिंहासन पर वैठा रहता हूँ वे खड़े होकर मेरी स्तुति करते रहते हैं। मैं इतना ऐश्वर्यशाली होकर भी वृहस्पति के सम्मुख क्यों नमूँ। क्यों उन्हें देखकर आसन से उठूँ। ये भी तो एक साधारण ब्राह्मण ही हैं। जब सब ऋषि मुनि मेरी स्तुति करते हैं, तो इन्हें भी करनी चाहिये। मैं नित्य प्रति इन्हें आते देखकर हड़बड़ा कर क्यों उठ पड़ता हूँ। क्यों इनके सम्मानार्थ इनका इतना आदर करता हूँ।

इस प्रकार के अभिमान में तल्लीन हुए, इन्द्र अभिमान में

अंधे हो गये उन्हें अहंकार ने घेर लिया उसी समय सभा मे आचार्य वृहस्पति जी पधारे। नित्य तो देवेन्द्र उनका बडा स्वागत सत्कार करते। देखते ही अपने सिंहासन से खडे हो जाते प्रत्युत्थान देते, बडे मधुर वचनों मे उनसे कुशल प्रश्न करते, अपने से उच्चासन पर उन्हें बिठाते, जब वे सुखपूर्वक बैठ जाते तब उनकी आज्ञा पाकर वे भी अपने सिंहासन पर बैठते। किन्तु आज तो वे ऐश्वर्य के मद मे उन्मत्त होगये थे। देवेन्द्रपने के उन्माद मे बेसुधि बने हुए थे, इसीलिये सम्मुख आये हुए गुरु को देखकर वे अपने आसन से न तनिक भी हिले न डुले। सूखे वृक्ष के ठूँठ की भांति अकड़ कर ज्यो के त्यो सिंहासन पर डटे रहे। उन्होंने आचार्य की ओर ध्यान ही नहीं दिया। अब तक तो उनके प्रति गौरव बुद्धि थी, देखते ही उठ खडे होते किन्तु अब तो उनकी दृष्टि मे वे साधारण ब्राह्मण रह गये थे। आधे आसन पर इन्द्राणी बैठी हुई थी, उसके कन्धे पर इन्द्र का एक हाथ रखा था। मरुत, वसु, रुद्र, आदित्य, ऋभु, विश्वदेव, साध्यगण तथा अश्विनी कुमार उनकी सेवा मे समुपस्थित थे। सिद्ध, चारण, गधर्व,ब्रह्मवादी मुनिगण, विद्याधर, अप्सरा,किन्नर, पक्षी,नागतथा अन्य भी उपदेव उनकी स्तुति कर रहे थे, उनकी त्रैलोक्य व्याप्त कमनीया कीर्ति का बखान हो रहा था। उनके ऊपर सहस्रो कमानो वाला, अत्यंत उज्ज्वल, चन्द्र मण्डल के समान शुभ्र सुन्दर श्वेत छत्र सुशोभित था। दाये बाये अत्यंत सुन्दरी अप्सराये हाथ मे चामर व्यजन आदि महाराजोचित चिन्हो को लिये खड़ी थीं, दोनो ओर चँवर ढुल रहे थे। इन्द्र ने गुरु वृहस्पति को देख कर भी नहीं देखा, वे सम्मुख नाचती हुई उर्वशी अप्सरा की ओर अनुराग सहित देखते रहे।

आज अपने शिष्य का अभूतपूर्व व्यवहार देख कर

देवगुरु को बड़ा आश्चर्य हुआ। वे कुछ देर खड़े होकर देवेन्द्र के मुख की ओर देखते रहे। वे तो त्रिकालज्ञ थे, समझ गये। उच्चाजी को ऐश्वर्य का मद हो गया। शरीर मे अभिमान का भूत सवार होगया है। यह देख कर वे आगे सभा मे नहीं वढ़े,उलटे ही पैरों लौट आये। श्री सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! पुरुषों को चित्त की वृत्तियाँ सदा बदलती रहती है। कभी सत्व गुण वढ़ जाता है, कभी रजो गुण का प्रावल्य होता है, कभी तमोगुण आकर हृदय पर छा जाता है। जैसा गुण जिस समय उदय होता है, वैसी ही बुद्धि वन जाती है। सत्वगुण उदयहोता है, तो चित्त मे शांति होती है, दान देने, धर्म करने आदि की प्रवल इच्छा होती है। रजो गुण की वृद्धि होने पर अभिमान वढ़ता है, कर्म करने मे अत्यधिक रुचि होती है और जब तमोगुण वढ़ जाता है तो निद्रा आलस्य, प्रमाद का प्रावल्य हो जाता है, महापुरुषों के सम्बन्ध से उत्पन्न हुआ ज्ञान ढक जाता है।"

इस पर शौनकजी ने पूछा—"सूतजी ! किन लक्षणों से यह बात जानी जाय, कि अमुक गुण की वृद्धि हो गई है ?"

इस पर सूतजी वोले—"भगवन् ! जब हृदय मे जिस गुण की अधिकता हो जाती है, उस समय बुद्धि वैसी ही वन जाती है। उस समय विवेक रहता ही नहीं। जिस समय सब ओर से, सब इन्द्रिय द्वारों से ज्ञानात्मक प्रकाश उत्पन्न हो जाय, चित्त अत्यन्त प्रसन्न सात्विक हो जाय, सबके प्रति मित्रता, अद्रोह के भाव उठें समझना चाहिये अब सत्वगुण का हृदय मे प्रावल्य होगया। जिस समय सासारिक कार्यों मे अत्यधिक प्रवृत्ति, लोभ, विषय भोगों की लालसा, चित्त मे उद्वेग दूसरों के प्रति डाह आदि भाव उत्पन्न हो तो समझना चाहिये रजोगुण ने हमें धर

दवाया। जिस समय विवेकहीनता, कार्य करने की अनिच्छा, असावधानता मोह तथा उद्यम रहित होकर पड़े रहने की इच्छा उत्पन्न हो तो समझना चाहिये हम महापापी तमोगुण के अधीन हो गये। ये गुण सदा एक से नहीं रहते। घटते बढ़ते रहते हैं। कभी सत्व का उदय हो जाता है, कभी रजोगुण सत्व को दबाकर बढ़ जाता है, फिर कभी तमोगुण सब से ऊँचा उठ जाता है। उस समय इन्द्र तमोगुण में भरे हुए थे। जब देव गुरु लौट गये, तब इन्द्र को चेत हुआ। उनके मन मे सत्वोगुण उत्पन्न हुआ। उन्होंने सोचा—"अरे! यह मैंने क्या किया? आज तो मैंने अपने परम पूजनीय गुरु का अपमान किया। मुझे और मेरे इन इतने बडे ऐश्वर्य को धिक्कार है।" इस प्रकार वे अनेकों बार अपने को धिक्कारते रहे।

इसपर शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! इन्द्र को तो अभिमान हो ही गया था। देवगुरु उसे इस दशा में देखकर लौट क्यो आये। कैसा भी सही इन्द्र था, तो उनका शिष्य ही। उस समय अपमान को सहकर भी उन्हें समझाते। उनके समझाने पर इन्द्र को अपना दोष प्रतीत हो जाता, वे गुरुदेव से क्षमा याचना कर लेते। आगे ववंडर न बढ़ता। ऐसा न करके बृहस्पतिजी लौट क्यों गये। उन्होने अपने अपमान का इतना ध्यान क्यों किया?"

इसपर सूतजी बोले—"भगवन्! आप सत्य कहते हैं देवगुरु बृहस्पति के लिये तो मानापमान की कोई बात ही नहीं थी। अपना बच्चा अपराध भी करता है, तो बड़े लोग उसे क्षमा कर देते हैं। माता के पेट मे बच्चा लात मारता है, तो माँ उसपर क्रुद्ध नहीं होती, अज्ञानी समझकर उसके अपराधों की ओर ध्यान नहीं देती, किन्तु महाराज! यह ऐश्वर्य का मद ऐसा प्रबल होता है, कि जिसके हृदय में अहंकार व्याप्त हो जाता है, वह फिर विवेक को

खो बैठता है। बड़े-बड़े लोगों का यों ही अपमान कर बैठता है। जब तक उसका ऐश्वर्य मद उतरे नहीं तब तक उसे उपदेश देना व्यर्थ है। उपदेश का उसके मन पर कोई प्रभाव ही न पड़ेगा, उलटा और भी अपराध करेगा। जहाँ वह मद उतरा कि उसे अपना दोष अपने आप ही भासने लगेगा। जहाँ पश्चात्ताप हृदय में हुआ नहीं कि पाप का प्रायश्चित होना आरम्भ हो जाता है। इस विषय में एक दृष्टांत सुनिये।

एक सुरापी मनुष्य था। नित्य मदिरा पान करता था। एक दिन उसने आवश्यकता से अधिक मात्रा में सुरा का सेवन कर लिया अब तो वह मदिरा के मद में मदान्ध हो गया। उसी समय उस नगर का नगरपाल रथ में चढकर नगर निरीक्षण के निमित्त जा रहा था। उस मदोन्मत्त ने उसे डाँटकर कहा—"ओ, नगरपाल! तू कहाँ घूम रहा है। रथ को खड़ाकर हम इसमें बैठेंगे। और तेरी मरम्मत करेंगे।"

नगरपाल को यह बात बहुत बुरी लगी। उसने अपने नगर रक्षक सेवकों से कहा—"इस दुष्ट को बाँधकर कारावास में ले जाओ। कल इसकी अविनय के लिये इसके कोड़े लगेंगे।" नौकरों ने उसे बाँधकर कारावास की कोठरी में बन्द कर दिया। रात्रि भर में मद उतर गया। जब नगरपाल ने प्रातः उसे बुलाया, तब उसने बड़ी दीनता के साथ कहा—"अन्नदाता! मुझे क्यों बाँध रक्खा है? मुझे छोड़ दिया जाय।"

यह सुनकर क्रोध में भरकर नगरपाल ने कहा—अरे, निर्लज्ज! कल तो तू कह रहा था, मैं तुम्हारी मरम्मत करूँगा। कर अब मरम्मत।

उसने अत्यन्त ही विनय और दीनता के साथ कहा—दीन-बन्धो! मैंने तो यह बात कही नहीं थी। यदि कही होगी, तो

मदिरा के मद में कही होगी, वह तो उतर गया, मेरे शरीर से निकल कर भाग गया। कल कहने वाला आज नहीं रहा। मैं तो अब आप से वार-वार क्षमा याचना करता हूँ।"

सो, सूतजी ! वृहस्पतिजी ने सोचा—'अब इसके अन्त:करण में ऐश्वर्यजनित मद ने डेरा डाल रखा है। अब यह मेरे उपदेशों को सुनेगा नहीं। इस समय इसे समझाने की चेष्टा करना व्यर्थ है। इस समय तो इसी में कल्याण है, कि इसके सम्मुख न जाना चाहिये। इससे दूर ही हट जाना श्रेयस्कर है। इसी लिये वे चले गये। उनके जाते ही इन्द्र का मद उतर गया। उन्हे अपनी भूल मालूम पड़ी। वे अत्यन्त दुखी होकर भरी सभा में ही पश्चात्ताप करते हुए कहने लगे—हाय ! मुझ मन्द-मति ने यह कैसा घोर पाप किया मुझसे आज यह कैसा भारी अपराध बन गया। मैंने ऐश्वर्य के मद में उन्मत्त होकर त्रैलोक्य पूजित, सुरासुर सभी से वन्दित अपने परम पूजनीय गुरु का भरी सभा में अनादर किया। यह सब हुआ इन्द्रत्व के विभव के कारण ऐश्वर्य के अभिमान में। जिस ऐश्वर्य के कारण मोह मस्त हो जाने से परम सत्व सम्पन्न देवताओं के अधिपति होने पर भी मुझे ऐसा मिथ्याभिमान हो गया आसुरी भाव आगया, उस राजलक्ष्मी को वार-वार धिक्कार है।"

सभाओं मे प्रायः अधिकाश लोग चापलूस ही होते हैं, जो राजा की व्यर्थ की प्रशसा कर करके उसे भ्रम में डाले रहते हैं, उसके अनुचित कार्यों का भी शास्त्र वचनों से, भाँति-भाँति के तर्कों द्वारा समर्थन किया करते हैं। राजा को येन केन प्रकारेण प्रसन्न रखना ही उनका ध्येय होता है। ऐसे ही कोई एक चाप-लूस विद्वान् बोले—"अजी महाराज ! आपसे क्या अपराध बना। आपने तो उचित ही किया। देखिये, शास्त्र का वचन है कि

"सार्वभौम सिंहासन पर बैठा हुआ सम्राट् किसी के भी आने पर न उठे। ऐसे बार-बार सबके लिये उठता रहेगा, तो उसका प्रभाव नष्ट हो जायगा। जब वह सिंहासन पर बैठा है, तो आठों लोकपालों का प्रतिनिधित्व कर रहा है। आप नहीं उठे तो इसमें कोई अनुचित बात नहीं हुई। उठते थे यही अब तक अनुचित होता था।"

उनकी ऐसी बात सुनकर इन्द्र ने उन्हें घुड़कते हुए कहा—"नहीं, ऐसी बात नहीं है। यह उत्तम धर्म नहीं कहा जा सकता। ऐसे भी वाक्य मिलते हैं, किन्तु गुरुदेव तो सब मनुष्यों से उत्तम हैं, वे तो साक्षात् भगवत् स्वरूप हैं। उनके लिये तो सर्वथा अभ्युत्थान देना चाहिये। उन्हें प्रणाम न करना ही अपराध है। शिष्य किसी भी दशा मे हो, कितना भी बड़ा हो गया हो शिष्य ही है।

उन चापलूस महोदय ने अपनी बात को पुष्ट करते हुए और इन्द्र को प्रसन्न करने के निमित्त फिर कहा—"हाँ, महाराज! आप जो कह रहे हैं, सब सत्य है, किन्तु सिंहासनस्थ राजा, राजा ही है। उस समय वह सबका पूजनीय है, सभी को उसका सम्मान करना चाहिये जो उसके राज्य में बसते हैं। आप त्रैलोक्य के स्वामी है। तीनों लोकों में जो भी बसते हैं वे सब आ की प्रजा हैं, प्रजा को राजा का सम्मान करना ही चाहिये।"

यह सुनकर देवेन्द्र अत्यधिक क्रुद्ध हुए और बोले—"तुम पक्षपातपूर्ण अधर्म की बातें कर रहे हो ब्राह्मण जगत् के गुरु हैं। गुरुदेव के ही शासन में सब रहते हैं। वे न किसी के शासन मे हैं, न वे किसी की प्रजा ही हैं। तुम जैसे पण्डित मूर्ख कुमार्ग का उपदेश देने वाले हो। मनुष्य तुम्हारे जैसे चापलूसों के

उपदेश के अनुसार व्यवहार करे, तो उसे अवश्य ही नरको की भयंकर यातनायें सहनी पड़ेगी सहस्रों वर्षों तक कुंभी पाक रौरव आदि नरकों की अग्नियों मे उसे पचना पड़ेगा। तुम जैसे मूर्खों के वचनों पर विश्वास करके जो इस संसार सागर को पार करने का विचार करते हैं उनका विचार उसी प्रकार का है जैसे कोई पत्थर की नौका पर चढ़कर नदी पार करना चाहे। मैं तुम लोगो की चिकनी चुपड़ी बातों मे नही आऊँगा। आज-तक मैंने अपने गुरुदेव का कभी अपमान नहीं किया था, सदा उनके अनुकूल आचरण करके उनकी सभी आज्ञाओं को तत्परता और सावधानी के साथ पालन करता रहा। आज मुझसे घोर अपराध बन गया। अब मैं अधिक अपने को भ्रम मे नहीं रख सकता। अब मैं शठता को छोड़कर अपने उन गुरुदेव के समीप जाऊँगा, अपने सिर को उनके चरणों मे रखकर उन्हें अनुनय विनय करके मनाऊँगा, उनसे अपने अपराधों को क्षमा कराऊँगा, उन्हे अपना सब वृत्त सत्य-सत्य बताऊँगा।"

सूतजी कहते है—"मुनियों! इतना कहकर इन्द्र सहसा अपने सिंहासन से उठ खड़े हुए और नगे पैरो ही बृहस्पतिजी के घर दौडे। किन्तु बृहस्पतिजी अब घर कहाँ? बृहस्पतिजी की यहाँ वहाँ सर्वत्र खोज कराई, किन्तु अब क्या होना था बाण तो धनुष से छूट गया। वह तो लक्ष्य को भेद कर ही छूटेगा। इन्द्र को बड़ा पश्चात्ताप हुआ, वे दुखी मन से आगे के लिये सोचने लगे।"

छप्पय

तुरत इन्द्र कूँ चेत भयो मन कूँ धिकारें।
कैसो कीयो काम दुरित अति होहि विचारें॥
हाय ! बुद्धि मम नसी अनादर गुरु को कीन्हों॥
सम्मुख आये देव नहीं उठि आसन दीन्हों।
श्री चरननि महँ शीश धरि, रोउङ्गो पछितांउँगो।
बार बार बहु विनय करि, गुरु कूँ जाइ मनाउँगो॥

इससे आगे की कथा १७ वें खण्ड में पढ़िये